

ऋग्वेद अङ्क २३-२४ शुद्धयशुद्धिपत्रम्

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
८४६	२	कीळं	कीळम्	८५०	८	यासेपु	यासेपु
"	"	शीलं	शीलम्	"	११	क्यसु	कसुः
"	५	सम्बन्धिगम्	सम्बन्धि	"	१४	असुधम	असुधम्
"	६	व्युद्ध	व्युद्ध	८६३	१८	सुच्युवो	सुच्युवो
८४८	८	इस्तेपु	इस्तेपु	८६४	८	अच्युच्यु	अच्युच्यु
"	१४	इस्तेपु	इस्तेपु	८६५	१४	सम+	सम+
८५०	१६	प्रवः	प्रवः	८६६	०	द्वितियार्थे	द्वितियार्थे
८५१	८	यमोनाम	यमोनाम	"	"	पण्टी	पण्टी
८५२	२६	मावतम्	मावतम्	८६७	४	शीघ्रम	शीघ्रम्
"	"	सम्बन्धी	सम्बन्धि	"	१६	मुष्ट	मुष्ट
"	"	सम्बन्धि	सम्बन्धी	८६८	१५	सारा	सारी
८५३	४	शोभतु	शोभतु	"	१८	मृग	मृगम्
"	१८	देखा	देखाजाता	८७०	१४	धारयथ	धारयिष्यथ
८५४	२	वावा	वावा	८७१	०	"	"
"	४	धुनुय	धुनुय	८७२	५	दिवः	दिवः
"	८	वे नरा	वे नरो	"	१३	श्यन्	श्यन्
८५५	६	धुनुय	धुनुय	"	२०	सम्ना	सम्ना
८५६	५	मनुष्य	मनुष्यः	८७३	११	अमृतः	अमृतः

ऋ०मं० १ सू०४२ मं० १

पूषा देवता घोरपुत्रः कण्व ऋषिर्गायत्रीच्छन्दः८।८।८

संपूषन्नध्वनस्तिर व्यंहोविमुचो

नपात् । सद्वादेवप्रणस्पुरः ॥१॥

सम्	सम्+	-
पूषन्	हे पूषन्	हे पूषादेव
अध्वनः	मार्गात्	रस्ते से
तिर	सम्+तिर, पारंकुरु (अन्तर्मावितण्यर्थः)	पार कर
वि	वि+तिर, अपनय (अन्तर्मावितण्यर्थः)	दूर कर
अंहः	पाप्मानम्	पाप को
विमुचः	विमुञ्चतिष्टुष्टि कालेस्वसकाशात् सर्वाः प्रजाइति विमुक् तस्य प्र जापतेः (क्र०६१२५।१)	प्रजापति का

नपात्	पुत्र	पुत्र
सद्व	प्र+सद्व प्रगच्छ (सद्वतिर्गतिप्रदानिद्यं २।१४)	आगे चल
देव	हे देव	हे देव
प्र	+ प्र	—
नः	अस्माकम्	हमारे
पुरः	अग्रे	आगे

संस्कृतार्थः ।

हे पूषन् (अस्मान्) मार्गात्पारं करु हे प्रजापतेः
पुत्र पाप्मानमपनय, हे देव ! अस्माकमग्रेऽग्रेगच्छ ॥
मायार्थः ।

हे पूषा देव हमको रस्ते से पार लंघाओ हे प्रजा
पति के पुत्र पाप को दूर करो हे देव हमारे आगे
आगे चलो ॥ १ ॥

वित्तियोग—कठिन दूर के रस्ते में या नय के रस्ते में चलता
हुमा इस सूक्तको जपे या इस से होप करे । (आ०शु० सू०१।१००)
पूषा पृथिवी को अन्न से पोषण करने और भपनी क्रियाओं
से भधरे को दूर करने से सूर्य्य दधता का हो भामान्तर है (दृष्टी
बृह० दधता २।६३, पुष्पन्क्षितिपोषयति प्रणुवन् इयिमिस्त्वम,)
यह पथिका को मार्ग दिखाने वाले ऋषि धन की प्राप्ति करानेवाले
पशुओं के रक्षक और मनुष्य के परम हितकारी हैं । इस सूक्त
को नय युक्त मार्ग में जपने से नय दूर हो जाता है ।

पपादेवता गायत्रीच्छन्द ॥ ८८८८

यो॒नः॑ पू॒षन् न॒घो॒वृ॒को॒ दुः॒शे॒व॒ आ॒दि

दे॒श॒ति॑ । अ॒प॒स्म॒तं॒ प॒थो॒ ज॒हि ॥२॥

यः	यः	जो
नः	अस्मान्	हमको
पूषन्	हे पूषन्	हे पूषादेव
अघः	घातकः	मारने वाला
वृकः	स्तेन (निघ० ३२४)	चोर
दुःशेवः	दुर्वृत्तः (घर्षाव्यत्ययेनशकारः)	दुराचारी
{ आदिदे- शति	आज्ञापयति	आज्ञा करता है
अप	अप +	-
स्म	(परणः)	-

तम्	नम्	उसको
पथः	मार्गात्	रस्ते से
जहि	अप जहि अपाकुरु	हटाओ

संस्कृतार्थः ।

हे पृषत् यो घातकः स्तेनो दुर्वृत्तः (वा) अमाना
ज्ञापयति तं मार्गादिपाकुरु ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

हे पूषा देव जो घातक (वा) चोर दुराचारी हमको
आज्ञा करना है उसको रस्ते से हटाओ ॥ २ ॥

पूषा देवता गायत्रीच्छन्दः । ८।८ ८।।

अपत्यं परिपन्थिनं मुषीवाणां चुर

श्चितम् । दूरमधिस्तृते रज ॥ ३ ॥

अप	आ +	-
त्यम्	तम्	उसका

परिऽपन्थि	मार्गप्रतिवन्धकम् (निघं० ३।२४)	रस्ता रोकने वाले को
नम्		
मुषीवागम्	तस्करम् (निघं० ३।२४)	डाकू को
हुरऽचि-	कौटिल्यस्य सञ्चेतारम् (हुर्या-कौटिल्यैचिष् चयने)	कुटिलता इकट्ट करने वाले को
तम्		
दूरम्	दूरम्	दूर
अधि	अधि+	-
स्ततेः	अधि+स्ततेः मार्गात् (आ.को०)	मार्ग से
अज	अप+अज, अपनय	हटाओ

संस्कृतार्थः ।

तंमार्गप्रतिवन्धकं कौटिल्यस्यसञ्चेतारं तस्करं
मार्गाद्दूरमपनय ॥३॥

भाषार्थः

रस्ता रोकने वाले कुटिलता को इकट्टे करने
वाले उस डाकू को (हमारे) रस्ते से दूर हटाओ ॥३॥

पूषा देवता गायत्रीछन्दः ।।।।।।

त्व॑न्तस्य॑ द्वया॑ वि॒नो ऽघ॑शं॑सस्य॑

कस्य॑चित् । प॒दाभि॑ति॒ष्ठ॒तपु॑षिम् ।४।

त्वम्

त्वम्

तू

तस्य

तस्य

उसकी

द्वया॑ वि॒नः

अनृतवादिनः

(द्वय विनिप्रत्यय)

झूठे की

{ अघ॑ऽशं-

पाप प्रशंसकस्य

पाप की प्रशंसा करने वाले के

सस्य

कस्य

कस्य+चित्

किसी के

चित्

+चित्

पदा

पादेन

पैर से

अभि

अभि+

तिष्ठ

अभि+तिष्ठ,सर्दय

कुचलो

तपुषिम्

क्रोधम्(निघ०२।१३)

क्रोध को

संस्कृतार्थः ।

(हे पूषन्) त्वं तस्य कस्यचिदनृतवादिनः पाप प्रशंसकस्य क्रोधं पादेन मर्दय ॥४॥

भाषार्थः ।

(हे पूषा देव) आप उस झूठे पापकी प्रशंसा करने वाले के क्रोधको पैरोंसे कुचलो चाहे वह कोई हो ॥४॥

पूषा देवता गायत्रीछन्दः ।८।८।८।

आतत्तदस्रमन्तुसः पूषन्नवीवृणी

महे । येनपितृनचोदयः ॥५॥

आ	आ+	-
तत्	तत्	उसको
ते	त्वदीयम्	आपकी
दस्र	हेउग्र (भा०को०)	हे भयानक
मन्तुसः	हे ज्ञानवान् (मन जाने-तुप्रत्य योमतुपच)	हे ज्ञानवान
पूषन्	हे पूषन्	हे पूषादेव

अवः	रक्षणम्	रक्षा को
वृणीमहे	आ+वृणीमहे	सब ओर से
येन	सर्वतःप्रार्थयामहे	प्रार्थना करते हैं
पितृन्	येन	जिस से
अचोदयः	पितृन्	पितरों को
	प्रेरितवानसि	आपने प्रेरण किया

संस्कृतार्थः ।

हे उग्र ! ज्ञानवान् पूषन् स्वदीय तद् रक्षणं सर्वतः प्रार्थयामहे येन (रक्षणेन त्वमस्मन्—) पितृन्प्रेरितवानसि ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

हे ज्ञानवाले भयानक पूषादेव (हम) आपकी उस रक्षाको सब ओर से प्रार्थना करते हैं जिस(रक्षा) से आपने हमारे बड़ों को प्रेरित किया था ॥५॥

ऋषियों की प्रार्थनाएं ऐसी हैं जो इस काल में भी हमारे लिए ऐसी ही उपयुक्त हैं जैसे पूर्वकाल में थीं इसीलिए ऋषि मंत्रों को द्रष्टा कहे गए हैं उन्होंने मृत और भविष्यत् सब अवस्थाओं को परमात्मा के प्रेरण से देख कर मंत्रों का उच्चारण किया है ॥

वाच्यं ज्ञातिषी इस पतित अवस्था में यह प्रार्थना अत्यन्त उपयोगी है ॥

पूषा देवता गायत्रीच्छन्दः । ८। ८। ८।

अधानो विप्रवसौ भग हिरण्यवा-

शीमत्तमं । धनानि सुषणा कृधि ॥ ६ ॥

अध	अनन्तरम् (घरघं-यस्य)	फिर
नः	अस्मभ्यम्	हमारे लिये
विप्रवसौ- भग	हे कृत्स्नसौभाग्य युक्त	हे पूर्णसौभाग्य से युक्त
हिरण्यवा- शीमत्तम	हे अतिशयेन सुव- र्णायुधवन्	हे सब से अधिक सुवर्ण के शस्त्र- वाले
धनानि	धनानि	धनों को
सुसना	सुप्रापानि (पण-सम्मको- खलु प्रत्यया)	सुख से प्राप्त होने वाले
कृधि	कुरु	करो

संस्कृतार्थः ।

हे कृत्स्नसौभाग्ययुक्त अतिशयेन सुवर्णायुधवन्
(पूषन्) अनन्तरं धनान्यस्मभ्यं सुप्रापानि कुरु ॥६॥

नापार्थः ।

हे सम्पूर्ण सौभाग्य से युक्त, सब से अधिक
सोने के शस्त्र वाले (पूषादेव) फिर हमारे लिये धनों
को सुख से प्राप्त होने योग्य करो ॥६॥

पूषा देवता गायत्रीछन्दः ॥६॥

अति॑नः॑ संप्र॑चतो॑ नय॑ सु॒गानः॑ सु॒-

पथा॑ कृणु । पूष॑न्नि॒हक्र॑तुं विदः ॥७॥

अति	अति +	-
नः	अस्मान्	हमको
संप्रचतः	प्राप्नुवतः (पस्य-गती)	पहुंचते वालों को
नय	अति+नय,	परे लेजाओ
सुगानः	सुखेन-गन्तुं श- क्येन	सुख से गमन योग्य से
नः	अस्मान्	हमको

सुपथा	शोभन मार्गेण	सुन्दर मार्ग से
कुरु	कुरु- (करि करणे)	करो
पूषन्	हे पूषन्	हे पूषा देव
इह	इह	यहां
क्रतुम्	चलम्	चलको
विदः	लभस्व	प्राप्त करो

सस्कृतार्थः।

(बाधनाय) प्राप्नुवतः (शत्रून्) अतिक्रम्यास्मान् नय,
अस्मान्सुखेन गन्तुशक्येन शोभन मार्गेण (गन्तून्)
कुरु हे पूषन् इह। (अस्मद्रक्षणाय) चलं लभस्व ॥७॥

भाषार्थः।

(केश देने के लिए) प्राप्न होते हुए (शत्रुओं के)
पार हमको ले जाओ, हमको सुख से जाने योग्य
सुन्दर मार्ग से (चलनेवाले) करो हे पूषादेव यहां पर
(हमारी रक्षा के लिये) चल को प्राप्त करो ॥७॥

देवता भद्रपुत्री की स्तुति और पूजा से चल को प्राप्त करते
हैं। और उस चल द्वारा उस के शत्रुओं का नाश और उसकी
रक्षा करते हैं।

पूपादेवता गायत्रीछन्दः । ८।८।८।

अभि॒सू॒यव॑सं॒नय॑ न॒नव॑ज्व॒रारो॑

अ॒ध॒व॒ने॑ । पू॒ष॒न्नि॒ह॒क्रा॒तुं॑ वि॒दः॑ । ८।

अभि	अभि+	
सु॒यव॑सम्	सुशस्यम् (वेशम्)	सुन्दर खेती वाले (वेश) को
न॒य	अभि+नय	की ओर लेजाओ
न	न	नहीं
न॒व॒ज्व॒रः	नूतनः सन्तापः (उमर रोगे-यम्)	नवीन सन्ताप
अ॒ध॒व॒ने॑	मार्गाय	मार्ग के लिए
पू॒ष॒न्	हे पूषन्	हे पूषा देव
इ॒ह	इह	यहां पर
क्रा॒तुम्	बलम्	बल को
वि॒दः॑	लभस्व	प्राप्त करो

संस्कृतार्थः ।

अस्मान् सुशस्यम् (देशम्) प्रति नय मार्गाय
नूतनःसन्तापो न भवतु हे पूषन्निह (अस्मद्रक्षणाय)
बलं लभस्व ॥ ८ ॥

भाषार्थः

हमें सुन्दर खेती से युक्त (देश) की ओर ले
जाओ (हमें) मार्ग के लिये नवीन सन्ताप न हो
हे पूषादेव यहां पर (हमारी रक्षा के लिए) बल को
प्राप्त करो ॥ ८ ॥

वृत्ति के लिए दूसरे देश में जाने वाला इस मंत्रसे प्रार्थना कर
सकता है । ऐसा करने से उस को मार्ग में जाने के लिये क्लेश नहीं
होता और पूषा देव उसको ऐसे देश की ओर प्रेरण करते हैं, जो
सुन्दर खेती से युक्त हो ॥

पूषा देवता गायत्रीच्छन्दः ॥८॥८॥८॥

शुग्धि॑पू॒र्धि॑प्रय॑सिच शु॒शीहि॑प्रा-

स्य॑दर॑म् । पू॒षन्नि॑ह॒क्रतु॑विदः । ९।

शुग्धि	शक्तोभव	समर्थ हो
पू॒र्धि	पूरय	भरो

प्र.	प्र+	-
यंसि	प्र+यंसि प्रयच्छ (यम्-लोडर्थे-लट)	दो
च	च	और
शिशीहि	तीक्ष्णी कुरु (अर्थात्तेजस्विनः कुरु शी-तनूकरणे)	तेजस्वी बनाओ
प्रासि	पूरय (प्रा-पूरणे)	भरो
उदरम्	उदरम्	उदरको
पूषन्	हे पूषन्	हे पूषा देव
इह	इह	यहां पर
क्रातुम्	वलम्	वल को
विदः	लभस्व	प्राप्त करो

संस्कृतार्थः ।

शक्तोभव (अस्मान् धनादिभिः) पूरय (अभीष्टम्)
च प्रयच्छ अस्मान् तेजस्विनः कुरु (अस्मदीयम्)
उदरं पूरय हे पूषन्निह (वलम्) लभस्व ॥ ९ ॥

भाषार्थः ।

आप समर्थ हों (हम को धनादि से) पूर्ण करें और (अभीष्ट) दें हम को तेजस्वी बनावें (हमारे) उदर को भरें हे पूषादेव आप यहां पर बल को प्राप्त करें ॥ ९ ॥

पूषा देवता गायत्रीच्छन्दः।८।८।८॥

न॒पू॒षण॑मि॒थाम॑सि॒ सू॒क्तै॒रभि॑गृ॒-
णी॒मसि॑ । वसू॑नि॒दस्म॑मी॒महे ॥१०॥

न	न	नहीं
पू॒षण॑म्	पूषणम्	पूषा को
१ मि॒थाम॑सि	निन्दासः	निन्दा करते हैं
२ सु॒उ॒क्तैः	सूक्तैः	सूक्तों से
अभि	अभि +	-
गु॒णी॒मसि॑	अभि+गुणीमसि गु शब्देत्तरूपमिकार.	सर्वत्रस्तुति करते
वसू॑नि	धनानि	धनों को

द॒स्मम्	अद्भु॒तम्	अद्भु॒त से
इ॒म॒हे	या॒चाम॒हे	मा॒ंगते॒ हैं

संस्कृतार्थः ।

पूषणम् (देवम्) ननिन्दामः (किन्तु) सूक्तैरभि
स्तुमः, तमद्भुतम् (देवम्) धनानि याचामहे ॥१०॥

भाषार्थः ।

हम पूषादेव की निन्दा नहीं करते (किन्तु) सूक्तों
से सर्वत्र स्तुति करते हैं हम अद्भुत (देव से) धन
मांगते हैं ॥ १० ॥

(१) यदि हम किसी विपत्ति में ग्रस्त हैं तो उसके लिए हम
पूषा देव को नहीं कोसते किन्तु सब अवस्थाओं में उनकी स्तुति
ही करते हैं । विपत्ति का कारण हमारी असावधानी या किसी
नियम को भङ्ग करना है पूषादेव तो सदा कृपा ही करते हैं और
हमारी स्तुति के योग्य हैं ॥

(२) सूक्त का अर्थ सुन्दर वाणी है और हिन्दी में इसका
पर्याय भजन है ॥

॥ इति द्वाचत्वारिंशं सूक्तम् ॥

ऋ० मं०१ सू० ४३ मं०२ (१०६६)

संस्कृतार्थः ।

प्रकृष्टज्ञानयुक्ताय (अभीष्टानाम्) सेकृतमायाऽति
शयेन बलवते रुद्राय हृदयाय शान्तमं किम् (वचनम्)
कथयाम ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

हम बडे बुद्धिमान् (अभीष्टों के) अत्यन्त
वरसाने वाले महा बली रुद्रके लिये हृदय को अत्यन्त
सुख देने वाले किस (वचन) को कहें ॥१॥

त्रिनियोग - सब रुद्र यहाँ में इस सूक्त और ऋ० १।११४,
२।३३, ७।४६ से चारों दिशाओं का उपस्थान किया जात है
(आ०गृ० सू०४।८।२३)

रुद्र परमात्मा की वह शक्ति है जिस का विकास विजली
की गज्ज के रूप में होता है (देखो बृह० देवता० २।३४ "अरोदी
दन्तरिक्षेयद् विद्युद्वृष्टिं ददन्नुणाम्") यह मनुष्यों के लिए सर्पा
को और रोग के नाश करने वाली औषधियों को देने वाले हैं और
मयंकट होनेपर भी अपने आर्य उपासकों के लिये अत्यन्त मृदु हैं ।

रुद्रो देवता गायत्रीच्छन्दः ८।८।८॥

यथा॑नो॒अ॒दि॒तिः॑ क॒र॒ त्प॒रु॒वे॒नु॒भ्यो॑
यथा॑ग॒र्वे । यथा॑तो॒काय॑रु॒द्रिय॑म् ।२।

यथा	यथा	जिससे
नः	अस्माकम्	हमारे
अदितिः	अदितिः	अदिति
करत्	कुट्यात्	करे
पशवे	पशवे (पशु-शुणामात्रेण्)	पशुके लिये
पुरुषेभ्यः	पुरुषेभ्यः	पुरुषों के लिये
यथा	यथा	जिससे
गवे	गवे	गो के लिये
यथा	यथा	जिससे
पुत्राय	पुत्राय	पुत्र के लिये
रुद्रियम्	रुद्रसम्बन्धि (भेषजम्) संस्कारार्थः ।	रुद्र वाले(भेषज) को

यथाऽदितिरस्माकं पशवे पुरुषेभ्यः (च) यथा
(अस्माकम्) गवे यथा (अस्माकम्) पुत्राय (च) रुद्र
सम्बन्धि (भेषजम्) कुट्यात् ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

जिस से अदिति हमारे पशुओं के लिए (और) पुरुषों के लिए जिससे (हमारी) गौओं के लिए (और) जिस से (हमारे) पुत्रों के लिए रुद्र सम्बन्धि (भेषज को) करे ॥२॥

इस मंत्र को पिछले के साथ मिला कर पढ़ने से अर्थ पूरा होता है ।

यहां पर अदिति पँटिल्ल शब्द है और सब प्रकार से अदीन होकर अन्तरिक्ष को घेर कर ठहरने से देखो । बृह० वेषत० २ । ४६) रुद्र का ही नामान्तर है ।

मित्रावरुणौ देवते गायत्रीच्छन्दः ८।८।८।

यथानोमित्रोवरुणौ यथारुद्रश्चि
कतति । यथाविश्वसजोषसः ॥३॥

यथा	यथा	जिस से
नः	अस्मान्	हमको
मित्रः	मित्रः	मित्र
वरुणः	वरुणः	वरुण

यथा	यथा	जिससे
रुद्रः	रुद्रः	रुद्र
चिकेतति	जानीयात् (कित-ज्ञानेलेटिरूपम्)	जाने
यथा	यथा	जिससे
विप्रवे	सर्वे	सब
सऽजोषसः	समानप्रीतयः (जुषी-भसुन्)	समान प्रीति वाले

संस्कृतार्थः ।

यथाऽस्मान् मित्रोवरुणो यथा (अस्मान्) रुद्रो-
जानीयात् यथा (अस्मान्) समानप्रीतयस्तसर्वेदेवाः
(जानीयुः) ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

जिस से हम को मित्र (और) वरुण जिस से
(हम को) रुद्र देवता जानें जिस से (हम को) समान
प्रीति वाले सब देवता (जानें) ॥ ३ ॥

इस का अर्थ भी प्रथम मन्त्र के साथ मिलकर पूरा होता है
"समान प्रीति वाले" अर्थात् सब देवता एक मन होकर हमें अपना
जानें ॥

रुद्रो देवता गायत्रीचन्द्रः । ८ । ८ । ८ ।

गाय॑पति॑मे॒धपति॑ रु॒द्रंजला॑प

भेष॑जम् । तच्छं॒योःसु॒म्नमी॑महे॒ऽः ।

{ गाय॑प॒- तिम्	स्तुतिपालकम्	स्तुति के पाल- क को
मे॒धऽपति॑म्	यज्ञपतिम्	यज्ञ के स्वामी को
रु॒द्रम्	रुद्रम्	रुद्र को
{ जला॑प॒ऽभे॒- पजम्	सुम्नरूपोपधो- पेनम्	सुम्न रूपोपधिसे युक्तको
तत्	तत्	उस को
श॒म्ऽयोः	शंयज्ञपतनम् (द्विती यौग्यं) (नि००४१)	शंयज्ञपतन को
सु॒म्नम्	सुम्नम् (नि००३१)	सुम्न को

ई॒म॒हे | या॒चाम॒हे | हम॒ मा॒ंगते॑ हैं ।

संस्कृतार्थः ।

(वयम्) स्तुति पालकं यज्ञपतिं सुखरूपौषधोपेतं
रुद्रं तद्रोगशमनं सुखम् (च) याचामहे ॥४॥

माथार्थः ।

(हम) स्तुति के पालक यज्ञ के स्वामी सुख रूप
औषधि से युक्त रुद्र से उस रोगशान्ति (और) सुख
को मांगते हैं ॥४॥

“उस रोग शान्ति को” जिस का हमने पहले भी अनुभव
किया हुआ है ॥

रुद्रो देवता गायत्रीछन्दः ।८।८।८।

यःशु॒क्र॒इ॒व॒सू॒र्यो॑ हि॒र॒ण्य॒मि॒व॒-

रो॒च॒ते । श्रे॒ष्ठी॑दे॒वाना॑व॒सुः ।५।

यः	यः	जो
शु॒क्रःऽइ॒व	शु॒क्र इ॒व	शु॒क्रकी॑ न्याई
सू॒र्यः	सू॒र्यः (इ॒व)	सू॒र्य (की॑ न्याई)

हिरण्यम्	सुवर्णमिव	सुवर्ण की न्याई
इव		
रोचते	दीप्यते	दीप्तिमान है
श्रेष्ठः	प्रशस्यतरः	श्रेष्ठ
देवानाम्	देवानाम् [मध्ये]	देवताओंके(बीचमें)
वसुः	धनवान् (आ० को०)	धनवन्

सस्कृतार्थः ।

यः शुक इव सूर्यः (इव) हिरण्यमिव दीप्यते देवानाम् (मध्ये) प्रशस्यतरो धनवान् (चाऽस्ति) ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

जो शुक की न्याई सूर्य (की न्याई) सुवर्ण की न्याई दीप्तिमान है (और) देवताओं के (बीचमें) श्रेष्ठ (और) धनवान् है ॥ ५ ॥

“शुक” शुक तारे से तात्पर्य हो सकता है । क्योंकि वह सब तारों में अधिक प्रकाशवाला है ॥

रुद्रो देवता गायत्रीच्छन्दः ।८।८।८।

शंनः करत्यर्वते स मेषाय मेष्ये ।

नभ्यो नारिभ्यो गवे ॥६॥

शम्-	सान्त्वनम्	शान्ति को
नः	अस्माकम्	हमारे
करति	कुर्यात् (इहम्-भ्यत् येनश्प् लिङ्घे लट्)	करे
अवत	अश्वाय	घोड़े के ताई
सुऽगम्	कुशलम्	कल्याण को
मेषाय	मेषाय	मेंढे के ताई
मेऽप्यै	मेऽप्यै	भेड़ के ताई
नृऽभ्यः	पुरुषेभ्यः	पुरुषों के ताई
नारिऽभ्यः	स्त्रीभ्यः	स्त्रियों के ताई
गवे	गवे	गौ के ताई

संस्कृतार्थः ।

(रुद्रः) अस्माकमश्वाय सान्त्वनं कुर्यात् मेषाय
मेऽप्यै नृभ्योनारीभ्यो गवे (च) कुशलम् कुर्यात् ॥६॥

भाषार्थः।

(रुद्र) हमारे घोड़े के लिये शान्ति करें (हमारे) भेड़ों भेड़ पुरुष स्त्रियों (और) गौ के लिये कल्याण को करें ॥ ६ ॥

वित्तियोग—सोमयाग के अग्नि मातृत शस्त्र में यह मन्त्र पढ़ा जाता है (भा०श्रौ० सू० ५१२०१६१)

भेड़ों और भेड़ों को घर में रख कर उनसे लाभ उठाना आर्य के लिए निन्दनीय नहीं समझा जाना चाहिये जैसे भाज कल समझा जाता है

सोमो देवना गायत्रीच्छन्दः ।८।८।८।

अस्मेसोमश्रियमधि निधेहिशतं

स्यनृणाम् । सहिश्रवस्तुविनुम्याम् । ७।

अस्मे०	अस्मासु	हम में
सोम	हे सोम	हे सोम
श्रियम्	श्रियम्	ऐन्द्र्य को
अधि	अधि+	-
नि	नि+	-
धेहि	अधि+नि+धेहि (स्थापय)	स्थापन करो

शतस्य	शतस्य	सौ के
नृणाम्	नृणाम्	मनुष्यों के
महि	महत्	बहुत
श्रवः	यशः	यश को
{ तुविऽनु रुणाम्	प्रभूतबल युक्तम्	बहुत बल से युक्त को

सङ्घर्षार्थः ।

हे सोम मनुष्याणां शतस्य श्रियमस्मासु स्थापय
(तथाच) प्रभूतबलयुक्तं महद्यशः (अस्मासु स्थापय) ॥७॥

भाषार्थः ।

हे सोम सौ मनुष्यों के ऐश्वर्य को हम में
स्थापन करो (और) बहुत बल से युक्त बड़े यश को
(हम में स्थापन करो) ॥७॥

सोम देवता के वर्णन के लिये देखो पृष्ठ ३१२ ।

सोमो देवता गायत्रीछन्दः ॥८॥८॥

मानः सोमपरिबाधो माऽरातयो-
जुहुरन्त । धानद्वन्द्वोवाजेभज ॥८॥

मा	मा	मत्
नः	अस्मान्	हमको
{ सोमऽपरि व्राधः	सोमयागस्य प्रति बन्धकाः	सोम यज्ञ के रोकने वाले
मा	मा	मत्
अरातयः जुहुरन्त आ	शत्रवः हिंसन्तु (छ मसख कण्णे-लोडये-लङ्) आ+	शत्रु पीड़ा दें -
नः	अस्मान्	हमको
इन्द्रो	हे सोम	हे सोम
वाजे भज	बले आ+भज (भागितःकुरु)	बल मैं भागी बनाओ

सोमयागस्य प्रतिबन्धका अस्मान्माहिंसन्तु,
शत्रुसोमा (हिंसन्तु) हे सोम! बलेऽस्मान् भागितः
कुरु ॥८॥

सोम याग के रोकने वाले हम को पीड़ा न दें शत्रु
हम को पीड़ा न दें हे सोम बलमें हमको भागी
घनाओ ॥ ८ ॥

सोमो देवता अनुष्टुप्छन्दः । ८। ८। ८। ८।

यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन्धा-
मन्नतस्य । मूर्धानाभासोमवेन आ-
भूयन्तीः सोमवेदः ॥ ९ ॥

याः	याः	जो
ते	तव	तेरी
प्रजाः	प्रजाः	प्रजा
अमृतस्य	मरण रहितस्य	मृत्यु रहित की
परस्मिन्	उत्तमे	उत्तम में
धामन्	स्थाने (सप्तम्यालुक्)	स्थान में

ऋतस्य	ऋतस्य	ऋत कै
मूर्धा	शिरस्थानीयः	(सृष्टि का) मस्तक
नाभा	नाभि स्थानीयः	(सृष्टि की) नाभि
सोम	हेसोम	हे सोम
वेनः	कामयस्व वेन-जान्ती-लेटिरूपम्	प्यार करो
{ आऽभूष- न्तीः	आभूषन्तीः (भूष-अलङ्कारेकस्मिन्नि शतृ प्रत्ययः)	सब ओर सजानी हुई को
सोम	हे सोम	हे सोम
वेदः	जानीहि (विद्-मानेलेटिरूपम्)	जानो

संस्कृतार्थः ।

हेसोम ! ऋतस्योत्तमेस्थाने (वर्तमानस्य) मरण
रहितस्य तव याः प्रजाः (सन्ति) (जगतः) शिरः-
स्थानीयो नाभिस्थानीयः (च त्वम्) (ताः प्रजाः)
कामयस्व, हेसोम ! आभूषन्तीः (नाः प्रजाः) जानीहि १।

मापार्थः ।

हे सोम ! ऋत के उत्तम स्थान में (रहने वाले)
मरण रहित आपकी जो प्रजा (ह) उनको (जगत्)
के मस्तक और (जगत्) के केन्द्र आप प्यार करें, हे
सोम, सब ओर सजाती हुई (उन प्रजाओं को आप)
जानें ॥ ९ ॥

(१) सोम की आर्य प्रजा सब ओर अर्थात् पूजा के स्थान को,
घर को गलियों को, नगर को सजाती हुई देखी जाएं उनके किसी
काम में फूहड़पन न प्रतीत हो ॥

इति त्रयश्चत्वारिंशंसूक्तम् ।

ऋ० मं० १ सू० ४४ मं० १

अग्न्यश्विना उपोदेवताः कण्व पुत्रः प्रस्कण्वश्छपि
वृहतीच्छन्दः । ८। ८। १२। ८॥

अग्ने॒विव॑स्वद॒षस॑ शि॒चः॑ रा॒धो-
अम॑त्य॒ आदा॑शु॒षे॑ जा॒तवे॑दीव॒हा॒त्व
म॒द्यादे॒वाँ उ॒य॒दु॒धः॑ । ११

अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि
विवस्वत्	तेजो युक्तम् (विवस्तेजः)	तेज युक्त को
उपसः	उपसः	उपा से
चित्रम्	नानाविधम्	अनेक प्रकार वाले को
राधः	धनम्	धन को
अमर्त्य	हे मरण रहित	हे मरण रहित
आ	आ+	—
दाशुषे	(हविः) दत्तवते	(हवि) देने वाले के लिये
जातवेदः	हेजातानां वेदितः (विद् दानेअसुन्प्रत्ययः)	हे उत्पन्नो के जानने वाले
वह	आ+वह	ले आओ
त्वम्	त्वम्	आप
अद्य	अस्मान्दने	आज
देवान्	देवान्	देवताओं को

उषःऽबुधः | उपःकालेप्रबुद्धान् | प्रातःकाल में
जागने वालों को

संस्कृतार्थः ।

हे मरणरहित जातवेदोऽग्ने त्वमद्य(हविः)दत्तवते
(यजमानाय) उपसः (सकाशात्) तेजोयुक्तं नाना
विधं धनमुपःकालेप्रबुद्धान् देवान् (च) आवह ॥१॥

भाषार्थः ।

हे मरणरहित, उत्पन्न हुआओंको जाननेवाले आग्ने
(देव) आप आज (हवि) देने वाले (यजमान) के
लिए उषा देवता से तेज युक्त नाना प्रकार के धन
को (और) प्रातःकाल में जागने वाले देवताओंको
ले आओ ॥ १ ॥

वित्तियोग—प्रातरनुवाक के आग्नेय क्रतु में यह सूक्त पढ़ा
जाता है (भा०धौ० सू०४।११।७)

व्योतिष्टोम में यदि उपःकाल तक पर्याय पूरे न हों तो
भादिवन शस्त्र के स्थान में यह प्रगाथ (अर्थात् यह और भगला
मंत्र) पढ़ा जाता है (भा० औ० सू०६।६।८)

यह मंत्र पांजपेय यज्ञ में भी पढ़ा जाता है यदि ब्रह्म साम
गान न करे (भा० औ० सू०३०।३।१९)

अग्न्यश्विना उपोदेवताः सतोवृहतीच्छन्दः१२।८।१२।८।

जुष्टोहिदूतोअसिहव्यवाहनो

ऽग्नेरधीरध्वराणाम्। सजरश्विभ्या

मुषसासुवीर्यं मस्मेधेहिश्रवोवृहत्।२।

जुष्टः	प्रियः	प्यारा
हि	खलु	सचमुच
दतः	दूतः	दूत
असि	असि	तू हे
{ हव्यऽवाह नः	हविषोत्रढा	हवि को ले जाने वाला
अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि
रधीः	रथस्थानीयः	रथ रूप

अध्वरा-	यज्ञानाम्	यज्ञों का
गाम्		
सऽजुः	सहितः	साथ
अश्विऽ-	अश्विभ्याम्	अश्वि देताओंसे
भ्याम्		
उपसा	उपसा	उपा से
सुऽवीर्यम्	अतिवीर्योपेतम्	बहुत पराक्रम से युक्त को
अस्मे०	अस्मासु (सप्तम्याःशोभादेशः)	हम में
धेहि	धारय	धारण कर
श्रवः	यशः	यशको
बृहत्	महत्	महान् को

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने (त्वम्) खलु (देवानाम्) प्रियो दूतो

ऋ० मं०१ सू०४४ मं०३ (१०८४)

इविपोत्रोढा यज्ञानां रथस्थानीयः (च)असि(स स्वम्)
अश्विभ्यामुपसा (च) सहितः-(भूत्वा) अतिवीर्योपेतं
महद्यशो ऽस्मासु धारय ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि आप सचमुच (देवताओं के) प्रिय
दूत हवि के लेजाने वाले (और) यज्ञों के रथ रूपहें
(ऐसे आप) अश्वि (देव और) उपा के साथ बहुत
पराक्रम से युक्त बड़े यश को हम में धारण करें ॥२॥

अग्निर्देवता बृहतीच्छन्दः ।८।८।१२।८॥

अद्यादूतं वृणीमहे वसुमग्निं पुंसु-
प्रियम् । धूमकेतुं भाञ्जतीकं व्युष्टिषु
यज्ञानामध्वरश्रियम् ।३।

अद्य	अस्मिन्दिने	आज
दूतम्	दूतम्	दूत को
वृणीमहे	धरणं कर्मः	हम धरते हैं

वसुम्	धनवन्तम् (आ०को०)	धनवान् को
अग्निम्	अग्निम्	अग्निकों
परुऽप्रियम्	बहूनां प्रियम्	बहुतों के प्यारे को
धूमऽकेतुम्	धूमरूपध्वजयुक्तम्	धूम रूप ध्वजा वाले को
{ भाऽऽवृजि कम्	प्रकाशस्यप्रापकम् (मासःप्रकाशस्य ऋजि कः प्रापकस्तम्)	प्रकाशके प्राप्त कराने वाले को
विऽउष्टिषु	उपःकालेषु	प्रातःकालों में
यज्ञानाम्	यज्ञानाम्(मध्ये)	यज्ञों के [बीचमें]
{ अध्वरऽश्रि यम्	यज्ञशोभारूपम्	यज्ञ के शोभा रूपको

संस्कृतार्थः ।

अस्मिन्दिने धनवन्तं बहूनां प्रियं धूमरूपध्वज
युक्तमुपः कालेषु प्रकाशस्य प्रापकं यज्ञानां (मध्ये)
यज्ञशोभारूपमग्नि दूत कर्मणे वृणीमहे ॥३॥

भाषार्थः ।

आज हम धनवान्, बहुतों के प्यारे, धूसरूप-
ध्वजा से युक्त, प्रातःकालों में प्रकाश के प्राप्त कराने
वाले, यज्ञों के (बीच में) यज्ञ के शोभारूप अग्निदेव
को दूत कर्म के लिए बरते हैं ॥ ३ ॥

(१) दूत कर्म के लिए बरते हैं । जिससे अग्निदेव हमारी
स्तुति और पूजा की घांटा देवताओं को सुनावें और उनकी प्रस-
न्नता का हमारे हृदय में भान करावे ।

अग्निदेवता सतोवृहतीच्छन्दः । १२।८।१२।८॥

श्रेष्ठं यविष्ठमतिथिं स्वाहुतं जु-

ष्ठं जनायदाशुपे । देवाञ्चच्छाया-
तवेजातवेदस मग्निमीळे व्युष्टिषु । ४।

श्रेष्ठम्	प्रशस्यतमम्	सबसे अच्छे को
यविष्ठम्	युवतमम्	अत्यन्तजवानको
अतिथिम्	अतिथि रूपम्	अतिथि रूपको
सुऽद्वाहुतम्	यः सुखेनाऽऽहूयते तम्	बुलाने पर सहज से आनेवालेको

जुष्टम्	प्रीतम्	प्रसन्न को
जनाय	मनुष्याय	मनुष्य के लिये
दाशुषे	(हविः)दत्तवते	(हविः)देने वाले वं
देवान्	देवान्	लिये देवताओं को
अच्छ	आभिमुख्येन	सामने
यातवे	प्रापयितुम्	प्राप्तकराने को
जातऽवेद-	जातानांवेदितारम	उत्पन्नों को
सम्		जानने वाले को
अग्निम्	अग्निम्	अग्नि को
इळ	स्तौमि	स्तुति करता हूँ
विऽउष्टिषु	उपः कालेषु	प्रातःकालों में

संस्कृतार्थः ।

(अहम्) श्रेष्ठं युवतमं स्वाहुत मतिथिरूपं (हविः)
दत्तवते मनुष्याय प्रीतं जातानांवेदितारमग्निं दे-
वानाभिमुख्येन प्रापयितुमुपःकालेषु स्तौमि ॥ ४ ॥

नापार्थः ।

मैं सब से अच्छे अत्यन्त जवान, वुलाने पर सहज से आने वाले, अतिथिरूप, (हवि) देने वाले (भक्त) के लिये प्रसन्नात्मा, उत्पन्न हुआँ को जानने वाले अग्नि की, देवताओं को सामने लाने के लिए, प्रातःकालों में स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥

अग्निदेवता वृहतीच्छन्दः । ८।८।१२।८॥

स्तविष्यामि त्वामहं विप्रवस्या-
ऽमृतभोजन । अग्नेचातारममृतमिये
धय यजिष्ठं हव्यवाहन ॥ ५ ॥

स्तविष्या- मि	स्तोप्यामि	स्तुति करूंगा
त्वाम्	त्वाम्	आपको
अहम्	अहम्	मैं

विश्वस्य	सर्वस्य	सब के
अमृत	हे मरण रहित	हे मरण रहित
भोजन	हेपोषक	हे पोषण करने वाले
अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि
चातारम्	रक्षकम्	रक्षा करने वाले को
अमृतम्	मरण रहितम्	मरण रहित को
मियेध्य	हे यज्ञार्ह	हे पूजने योग्य
यजिष्ठम्	यष्टृतमम्	सब से उत्तम पूजने वालेको
{ हव्यऽवा- हन	हे हविषोवोडः	हे हवि के पहुचाने वाले

संस्कृतार्थः ।

हे मरण रहित ! विश्वस्यपोषक ! हविषोवोडः !
यज्ञार्ह ! अग्ने ! रक्षकं मरणरहितम् (देवानाम्)
यष्टृतम्, त्वामहंस्तोष्यामि ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

हे मरणरहित सत्र के पोषण करने वाले हवि के पहुँचाने वाले पूजने योग्य अग्नि (देव) में रक्षा करने वाले मरणरहित (ओर देवताओं के) सत्र से उत्तम पूजने वाले आपकी स्तुति करूँगा ॥५॥

अग्निदेवता सतोवृहतीच्छन्दः । १२।८।१२।८।

सुशंसो बोधिगुणतेयविष्टयं मधु-
जिह्वः स्वाहुतः । प्रस्करवस्यप्रतिर-
न्नायुर्जीवसे नमस्यादैव्यं जनम् । ६।

सुशंसः

बोधि

गुणते

यविष्टयं

सुष्ठुशंसनीयः

(शसु-स्तुती भाषेयम्)

मनोदेहि (भा०को०)

(यध्-लोटि-विकरणस्य लुक्)

स्तुवते

हे युवतम्

सुन्दर स्तुति

योग्य

ध्यान करो

स्तुति करने

वाले के लिये

हे अत्यन्त ज-

धान

मधुऽजिह्वः	मधुराजिह्वायस्य सः	मीठी जिह्वा- वाला
सुऽआहुतः	यः सुखेनाऽऽहूयते सः	सुखसे बुलाने योग्य
{ प्रस्कणव- स्य	प्रस्कणवस्य	प्रस्कणव के
प्रऽतिरन्	प्रवर्धयन् (प्रतिरतिवर्धनार्थः)	वढ़ाता हुआ
आयुः	आयुः	आयु के
जीवसे	जीवनार्थम्	जीने के लिये
नमस्य	पूजय (नियं०।३।५)	पूजो
दैव्यम्	दैव्यम् +	-
जनम्	दैव्यम् + जनम्	देव समूह को

संस्कृतार्थः ।

हे युवतम (अग्ने)! सुशंसनीयो मधुजिह्वस्त्वाहुतः
(त्वम्) स्तुवते (यजमानाय) मनोदेहि (अपिच) प्रस्क-
णवस्य जीवनार्थमायुः प्रवर्धयन् देवसमूहम्पूजय ॥६॥

ऋ० मं० १ सू० ४४ मं० ७ (१०९२)

भाषार्थः ।

हे अत्यन्त जवान (अग्निदेव, सुन्दर स्तुतियोग्य, मीठी जिह्वा वाले (ओर) सुख से बुलाने योग्य (आप) स्तुति करने वाले (भक्त के लिये) ध्यान दें (ओर मुझ) प्रसङ्ग के जीवन निमित्त आयु को बढ़ाते हुए देव समूह को पूजे ॥ ६ ॥

(१) प्ररषण्व, षण्वक्रपि के पुत्र और इस सूक्त के द्रष्टा है । वृतीय पाद में ऋषि अपने लिये प्रार्थना करते हुए प्रनीत होते हैं परन्तु यह उपलक्षण निमित्त है—प्रत्येक मनुष्य इस मंत्र में अपना नाम डाल कर उपासना कर सकता है ॥

अग्निदेवता बृहतीच्छन्दः ८।८।१२।८ ॥

होतारं विप्रवदसं संहित्वा विश
इन्धत । सत्रावहपुरुहूतप्रचेतसो
ऽग्ने देवा इह द्रवत् । ७।

होतारम् | होतारम् . . . | होता को ३

विश्ववे-	विश्वानि वेदांसि	सम्पूर्ण धनों के
दसम्	धनानियस्यनम् (वेदशतिधननाम तिघं०२।१०)	स्वामी को
सम्	सम्यक्	भली प्रकार
हि	खलु	सचमुच
त्वां	त्वाम्	तुझ को
विशः	प्रजाः	प्रजा
इधते	दीपयन्ति	प्रदीप्त करते हैं
सः	सः	वह
धा	आ+	--
बह	आ+बह	लाओ
परुहृत	हे बहुभिराहृत	हे बहुतों से बु- लाए गए
प्रचेतसः	प्रकृष्टज्ञानयु- क्तान्	बहुत ज्ञान वालों को
अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि

देवान्	देवान्	देवताओं को
इह	अत्र	यहां
द्रवत्	क्षिप्रम् (निर्वन्तर, १५)	शीघ्र

संस्कृतार्थः ।

सम्पूर्ण धनस्वामिनं होतारं त्वां प्रजाससम्यग्दीपयन्ति खलु, हे बहुभिराहूताग्ने सः(त्वम्) प्रकृष्टज्ञान युक्तान्देवान् क्षिप्रमत्राऽऽवह ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

सम्पूर्ण धनों के स्वामी और (होता) आप को सब मुच प्रजा अच्छे प्रकार से प्रदीपन करती हैं हे-वहूतों से बुलाए गए अग्नि (देव) वह आप बहुत ज्ञान वाले देवताओं को यहां पर शीघ्र लावें ॥

यह देवता कौन हैं । इस के लिये देखो भगला मन्त्र ।

अग्निदेवता सतोवृहतीच्छन्दः १२।८।१२।८।

स॒वि॒ता॒र॒मु॒ष॒स॒म॒श्रि॒व॒ना॒भ॒ग॒ म॒ग्निं
व्यु॒ष्टि॒षु॒क्ष॒पः । क॒र॒वा॒स॒स्त्वा॒सु॒त-

सोमासद्बन्धते हव्यवाहंस्वध्वरात्।

सवितारम्	सवितारम्	सविताको
उपसम्	उपसम्	उपाको
अश्विना	अश्विनौ (सुपासुद गितिचिमक्केडी)	अश्विदेवताओं को
भगम्	भगम्	भग को
अग्निम्	अग्निम्	अग्नि को
विऽउष्टिषु	उपःकालेषु	प्रातःकालों में
क्षपः	रात्रिषु (सप्तम्यर्थे द्वितीया)	रात्रियों में
कण्वासः	कण्वाः	कण्व वंशी
त्वा	त्वाम्	आप को
सतऽसो- मासः	सुतः सोमोयैस्ते (पूर्व निपातः)	सोम निचोड़ा है जिन्होंने ऐसे

दून्धते	दीपयन्ति	प्रदीप्त करते हैं
हव्यऽवा- हम्	हव्यं वहतीतिह- व्यवाट् तम्	हवि के पहुंचाने वाले को
सुऽअध्वर	हेशोभनयागयुक्त	हे सुन्दर यज्ञ से युक्त

संस्कृतार्थः ।

हे शोभनयागयुक्त [अग्ने] उपःकालेषु रात्रिषु
[च] सवितारमुपसमश्चिनौ भगमग्निम् (चाऽऽवह)
अभिषुतसोमाः कण्वा हविषः प्रापकं त्वां दीपयन्ति ॥८॥

भाषार्थः

हे सुन्दर यज्ञ से युक्त (अग्निदेव) प्रातःकालों
में और रात्रियों में सविता को उषा को अश्वि
(देवों) को भग को (और) अग्नि को लाओ, सोम
निचोड़े हुए कण्ववंशी हवि के पहुंचाने वाले आप
को प्रदीप्त करते हैं ॥ ८ ॥

(१) जैसा छोटे मंत्र की व्याख्या में लिखा है । वैसे ही यहां
भी समझना चाहिये । प्रत्येक मनुष्य कण्व के स्थान में अपने कुल
के प्रवर्तक का नाम डाल कर उपासना कर सकता है ॥

अग्निर्देवतावृहतीच्छन्दः । ८ । ८ । १२ । ८ ।

पति॑ ह्य॑ध्व॒राणा॑ म॒ग्ने॑ दू॒तो॒ विशा॑म-

सि॑ । उ॒ष्व॑ ध॒त्राव॑ ह॒सोम॑ पी॒तये॑ दे॒वा

अ॒द्य॒ स्व॒हृ॑शः । ९ ।

पतिः	पति.	स्वामी
हि	खलु	सचमुच
अध्वराणाम्	यज्ञानाम्	यज्ञों का
अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि
दूतः	दूत.	दूत
विशाम्	प्रजानाम्	प्रजाओं का
असि	असि	तू है
उषःऽवुधः	उष.कालेप्रयुञ्जान्	प्रातःकाल में जा- गने वालों को

आ	आ +	
वह	आ + वह	लाओ
सोमऽपीतये	सोमपानार्थम्	सोम पीने के लिये
देवान्	देवान्	देवताओं को
अद्य	अस्मिन्दिने	आज
स्वऽदृशः	ज्योतिर्दर्शिनः	प्रकाश के देखने वालों को

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! (त्वम्) ग्वलु यज्ञानांपतिः प्रजानांदूतः
(च) असि उपःकाले प्रबुद्धान्ज्योतिर्दर्शिनो देवानद्य
सोमपानार्थमावह ॥ ९ ॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि(देव) आप सचमुच यज्ञोंके स्वामी(और)
प्रजाओं के दूत हैं प्रातःकाल में जागने वाले प्रकाश
को देखने वाले देवताओं को आज सोम पीने के लिये
लावे ॥ ९ ॥

अग्निदेवता सतोवृहतीच्छन्दः । १२।८।१२।८।

अग्ने॑र्पूर्वा॑ अनु॒षसो॑ वि॒भावसो॑ दी॒दे

थ॑ वि॒श्वदर्श॑तः । असि॒ग्रामे॑ ष्ववि॒ता-

पुरो॑ हितो ऽसि॒यज्ञे॑ ष॒मानु॑षः । १०।

अग्नेः	हे अग्ने	हे अग्नि,
पूर्वाः	अग्नीनाः	गत
अनु	अनु (सृत्य)	पीछे पीछे
उषसः	उषसः	उषसों को
विभाऽवसो	विभा ज्योतिस्त्र देव धनं यस्य तरसम्बद्धौ	हे ज्योतिरूप धन वाले
दीदेथ	दीप्तवानसि (दीदेतिच्छान्दसोदीप्ति कर्मांलिटियल्)	प्रदीप्त हुए हो

विप्रवऽद- शतः	सर्वेदर्शनीयः	सबके दर्शन योग्य
असि	असि	तू है
ग्रामेषु	ग्रामेषु	ग्रामों में
अविता	रक्षकः	रक्षा करने वाला
पुरःऽहितः	पुरोहितः	पुरोहित
असि	असि	है
यज्ञेषु	यज्ञेषु	यज्ञों में
मानुषः	मनुष्यस्य हित- कारी (हिताऽर्थं वाप्)	मनुष्य का हित- कारी

संस्कृतार्थः ।

हे ज्योतीरूप धनवन्नग्ने ! सर्वेदर्शनीयः (त्वम्)
अतीता उपतोऽनु (सृत्य) दीप्तवानसि मनुष्यस्य
हितकारी (त्वम्) ग्रामेषु रक्षकोऽसि यज्ञेषु पुरोहितः
(व) असि ॥ १० ॥

(११०१) ऋ० मं०१ सू०४४ मं०११

भाषार्थः ।

हे प्रकाशरूप धन वाले अग्नि(देव) सबके दर्शन योग्य आप गत उपाओं के साथ साथ प्रदीप्त हुए हो, मनुष्य के हितकारी आप ग्रामोंमें रक्षा करने वाले हो (और) यज्ञों में पुरोहित हो ॥ १० ॥

४ (१) आर्य्य जाति सदा से प्रातः कालों में अग्निदेव को प्रदीप्त करती चली आई है ॥

अग्निदेवता बृहतीच्छन्दः ८।८।१२।८।

नि॒त्वा॒य॒ज्ञ॒स्य॒सा॒ध॒न॒म॒ग्ने॒ही॒ता॑
 र॒मृ॒त्वि॒ज॒म्।म॒नु॒ष्व॒द्दे॒व॒धी॒म॒हि॒प्र॒चे॒त॑
 सं॒ जी॒रं॒द॒त्त॒म॒स॒त्य॒म् ।११।

नि	नि+	-
त्वा	त्वाम्	तुझ को
यज्ञस्य	यज्ञस्य	यज्ञ के
साधनम्	साधनम्	साधन को

अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि
होतारम्	होतारम्	होता को
मृत्विजम्	मृत्विजम्	मृत्विज् को
मनुष्वत्	मनुर्यथा	जैसे मनु ने
देव	हे देव	हे देव
धीमहि	नि+धीमहि (स्थापयाम्)	हम स्थापन करते हैं
प्रचेतसम्	प्रकृष्टज्ञानयुक्तम्	बहुत ज्ञानवाले को
जीरम्	वेगवन्तम् (आ०षो०)	वेगवान् को
दूतम्	दूतम्	दूत को
अमर्त्यम्	मरण रहितम्	मरण रहित को

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने हे देव ! यज्ञस्यसाधनं होतारमृत्विजं प्रकृष्टज्ञानयुक्तं वेगवन्तं, दूतं मरण रहितं त्वां (निज-

ग्रहेषु) स्थापयामः यथा मनुः (पूर्वकाले स्थापितवान्)
॥ ११ ॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि हे देव यज्ञ के साधन, होता, ऋत्विज्, बहुत ज्ञान वाले, वेगवान्, द्रुत, और मरण रहित आपको हम (अपने घरों में) स्थापन करते हैं जैसे (पूर्वकाल में) मनु ने (किया था) ॥ ११ ॥

मनु, मादि काल के अग्नि स्थापन करने वालों में से हैं। उस समय से अब तक आर्य्य जाति में अग्नि का स्थापन और पूर्व की रीति से पूजन नष्ट नहीं हुआ है।

अग्निर्देवतासतो बृहतीच्छन्दः । १२ । ८ । १२ । ८ ।

ग्रहेषु) स्थापयामः यथा मनुः (पूर्वकाले स्थापितवान्)
॥ ११ ॥

यत्

देवानाम्

यदा

देवानाम्

जय

देवताओं के

मि॒त्रऽम॒हः	हे मित्र नन्दन (महदतिहर्षे आ०को)	हे मित्रों को प्रसन्न करने वाले
पु॒रऽहि॒तः	पुरोहितः	पुरोहित
अ॒न्तरः	आत्मीयः (आ०को)	आत्मीय(जन)
या॒सि	प्राप्नोषि	तू प्राप्त होता है
दू॒त्यम्	दूतकर्म (कर्मणियत)	दूत कर्म के लिये
{ सिन्धोऽ- इव	समुद्रस्येव	समुद्र की न्याई
{ प्रऽस्वनि- तासः	प्रकृष्टध्वनियुक्ताः (स्वन शब्देभावेक्त, असुगागमश्च)	बड़ी ध्वनि से युक्त
ज॒र्मयः	तरङ्गाः	लहरें
अ॒ग्नेः	अग्नेः	अग्नि की
भ्रा॒जन्ते	दीप्पन्ते	चमकती हैं
अ॒र्चयः	ज्वालाः	ज्वालाएं

(११०५) ऋ० मं० १ सू० ४४ मं० १३

संस्कृतार्थः ।

हे मित्र नन्दन ! यदा देवानां पुरोहित आत्मीयः
(च त्वं तेषाम्) दूतकर्म प्राप्तोपि (तदा) अग्नेर्ज्वालाः
समुद्रस्य तरङ्गाइव प्रकृष्ट ध्वनियुक्ताः (सरयः)
दीप्यन्ते ॥ १२ ॥

स.पार्थ ।

हे मित्रों को प्रसन्न करने वाले, जब देव-
ताओं के पुरोहित और आत्मीय आप (उनके) दूत
कर्म को प्राप्त होते हैं (तब) अग्नि की ज्वालाएं
समुद्र की लहरों की न्याईं बड़ी ध्वनिसे युक्त होकर)
चमकती हैं ॥ १२ ॥

अग्निर्देवता बृहतीछन्दः । ८।८।१२।८॥

श्रुधि॑श्रु॒त्कर्ण॑व॒ह्निभि॑ ट॒वैर॑ग्ने-
स॒याव॑भिः । आसी॑दन्तुव॒र्हिर्पि॑मि-
चो॑अ॒र्य॒मा प्रा॑त॒र्यावा॑णोअ॒ध्वर॑म् ॥ १३ ॥

श्रुधि
श्रुणु
(विष्णुस्यलक्ष्मणः)
सुनो

अत्स्र्कार्णा	हे श्रवणसमर्थ कर्णयुक्त	हे मुनने वाले कानों से युक्त
वह्निभिः	बोहृभिः (सह)	ढोने वालोंके (साथ)
देवैः	देवैः (सह)	देवनाओंके (साथ)
अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि
सयावभिः	समानगतिभिः (समानयान्तीति सया वान ,याप्रापणे)	समान गति वालों के (साथ)
आ	आ +	--
सीदन्तु	आ+सीदन्तु- उपविशन्तु	बैठें
वर्हिषि	दर्भे	कुशा पर
मित्रः	मित्रः	मित्र
अर्यमा	अर्यमा	अर्यमा
{ प्रातःस्या-	प्रातःकाले	प्रातःकाल में
{ वानः	गच्छन्तः (या-प्रापणे घनिष्प्रत्ययः)	जाने वाले

ः अष्टवरम् | यज्ञं | यज्ञ को

संस्कृतार्थः ।

हे श्रवणसमर्थकर्णयुक्ताऽग्ने ! समानगतिभिः
(धनानाम्)बोद्धृभिः(च) देवैः(सह, अस्मद्वचनम्)शृणु,
मित्रोऽर्यमा प्रातःकाले यज्ञम्(प्रति)गच्छन्तः(देवाश्च)
वर्हिष्युपविशन्तु ॥१३॥

भाषार्थः ।

हे सुनने वाले कानों से युक्त अग्नि(देव) एक
जैसी गतिवाले (और धनों के) ढोनेवाले देवताओं के
(साथ) हमारे वचन को सुनो, मित्र अर्यमा (और)
प्रातःकाल में यज्ञ की ओर जाने वाले देवता कुशा
पर बैठें ॥१३॥

अग्नि के उपासक को यह निश्चय रखना चाहिये कि जो कुछ
स्तुति प्रार्थना यह अग्नि के सामने करता है उसको अग्निदेव ऐसे
ही सुनते हैं जैसे मनुष्य कानों द्वारा सुनता है ।

अग्निर्देवता सतोवृहतीच्छन्दः ॥१२।८।१२।८।

शृणुवन्तु स्तोमं सरतः सुदानवो
ऽग्निजिह्वाऋतावधः । पिवतु-

सोमं वरुणो धतव्रतो ऽश्विभ्यामुषसा

सजः ।१४।

शृण्वन्तु	शृण्वन्तु	सुनें
स्तोमम्	स्तोत्रम्	स्तोत्र को
मरुतः	मरुतः	मरुत् देव
सऽदानवः	कल्याणदानाः (यास्कः)	कल्याण देने वाले
{ अग्निऽजिह्वाः	अग्नेर्जिह्वया हवि- रास्वादयन्तीति	अग्नि की जिह्वा से हवि का स्वाद लेने वाले
ऋतऽवृधः	ऋतस्य वर्धकाः अन्तर्भावितण्यर्थाद्बृ- धेः क्तिप्)	ऋत के बढ़ाने वाले
पिवतु	पिवतु	पीवे
सोमम्	सोमम्	सोम को
वरुणः	वरुणः	वरुण

धृतऽव्रतः	दृढनियमः	दृढ नियम वाला
{ अश्विऽ भ्याम्	अश्विभ्याम्	अश्वि देवों से
उपसा	उपसा	उपा से
सऽजुः	सहितः	साथ

संस्कृतार्थः ।

कल्याणदाना अग्नेर्जिह्वयाहविरास्वादयन्त-
ऋतस्यवर्धका मरुतः(देवाअस्मदीयम्) स्तोत्रं शृण्वन्तु
दृढनियमो वरुणोऽश्विभ्यामुपसा(च)सहितः सोमंपि-
वतु ॥ १४ ॥

भाषार्थः ।

कल्याण के देने वाले अग्नि की जिह्वा से हवि
का स्वाद लेने वाले ऋत के बढ़ाने वाले मरुत् देवता
हमारे स्तोत्र को सुनें दृढ नियम वाले वरुणदेव
अश्वि(देव)ओर उपा के साथ सोम को पीवें ॥ १४ ॥

॥ इतिचतुश्चत्वारिंशं सूक्तम् ॥

ऋ० मं० १ सू० ४५ मं० १

अग्निर्देवता प्रस्कण्वक्त्रपिरनुष्टुप्छन्दः।।।।।।।।

॥ त्वमग्नेवसरिह रुद्रा आदित्या
उत । यजास्वध्वरंजनं मनुजातं घृत
प्रुषम् । १ ।

त्वम्	त्वम्	तू
हे अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि
वसून्	वसून्	वसुओं को
इह	इह	यहां
रुद्रान्	रुद्रान्	रुद्रों को
आदित्यान्	आदित्यान्	आदित्यों को
उत	अपिच	और भी
यज	पूजय	पूजो

सु० अध्वरम्	शोभनयागयुतम्	सुन्दर याग से युक्त को
जनम्	(देव) समूहम्	(देव) समूह को
मनु० जातम्	मनोरुत्पन्नम्	मनुसे उत्पन्न को
घृत० प्रुषम्	घृतस्यसेकारम् (घृष सेचने)	घी बरसाने वाले को

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! त्वमिह वसून् रुद्रानादित्यान् अपि च
शोभनयाग युतं मनोजातं घृतस्य सेकारं (देव) समूहं
पूजय ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि आप यहां वसु, रुद्र, आदित्य और
सुन्दर याग से युक्त, मनु से उत्पन्न, घी के बरसाने
वाले देव समूह को भी पूजिये ॥१॥

यह सूक्त प्रातरनुवाक में आग्नेय ऋतु के आश्विन शस्त्र में
पढ़ा जाता है (भा० श्रौ० सू०४।१३।७)

गर्गश्रिराध्र नामी अहीन यज्ञके अग्निम दिनमें यह सूक्त आज्य
शस्त्र है (भा० श्रौ० सू० उ०४।२।९)

(१) "यदि दणु सर्वमास्यन्त तस्माद्धस्वन्" (श० भा० ११।६।३६)

परमात्मा को वह शक्तियां या स्वरूप जो, इस सृष्टि को मनु-
ष्यादि प्रजा से बरसाने वाले हैं वसु कहलाते हैं जैसे पृथिवी अग्नि,

अन्तर्दिक्ष, वायु, घौ, सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र क्योंकि इन्हीं के आश्रय से ये जीव यस्तते हैं ॥

(२) मनु यहां पर प्रजापति से तात्पर्य है जिस से देव और मनुष्य सब उत्पन्न हुए हैं ॥

(३) घो घरसाने वाले अर्थात् घृत उपलक्षित अग्नादि पदार्थों के देने वाले ॥

ऐसे कल्याण करने वाले देव समूह को भी अग्नि हमारे लिये पूजें ।

अग्निदेवता अनुष्टुप्छन्दः । ८। ८। ८। ८।

श्रु॒ष्टी॒वा॒नो॒हि॒दा॒शु॒षे॑ दे॒वा॒अ॒ग्ने॒

वि॒चे॒त॒सः॑ । ता॒नो॒हि॒द॒शु॒व॒गि॒र्व॒ण॒

स्त्र॒य॒स्त्रिं॒श॒त॒मा॒व॒ह॑ ॥२॥

३ { श्रु॒ष्टी॒वा॒नः	श्रु॒ष्टी॒सु॒खं॑ तद् व॒न॒न्ति॑ का॒म॒य॒न्त॒इति॑ (श्रु॒ष्टी॒ति॒सु॒ख॒ना॒म) (निघं०४।३।)	सु॒ख की॑ इ॒च्छा॒ करने॑ वाला
३ हि	खलु	स॒च च
३ दा॒शु॒षे॑	दत्त॑व॒ते	दे॒ने॒वा॒ले॒के॒ लि॒ए
दे॒वाः	दे॒वाः	दे॒वता

अग्ने	हे अग्ने	हे अग्नि
विऽचेतसः	विशिष्ट प्रज्ञानाः	विशेष ज्ञान वाले
तान्	तान्	उनको
{ रोहित्- अप्रव	हे रोहिन्नामकै रश्मै रूपेत (निघ० १।१३)	हे रोहितनामी घोड़ों वाले
गिर्वणः	हे स्तुतिसंसेव्य (गीमिं. स्तुतिभिर्वन्व्यते संसेव्यत इति)	हे स्तुतियों से सेवन करने योग्य
{ त्रयःऽचिं- शतम्	त्रयस्त्रिंशत्सङ् ख्याकान्	तेतीस संख्या वालोंको
आ	आ +	—
वह	आ+वह	लाओ

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! देवा विशिष्ट प्रज्ञाना (हविः) दत्तवते
सुखं कामयमानाः (च) खलु (सन्ति) हे रोहिदश्व हे
स्तुति संसेव्य त्रयस्त्रिंशत्संख्याकान् (देवान्)
आवह ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि, देवता विशेष ज्ञान वाले (और हवि) देने वाले के लिए सब सुख सुख की इच्छा करने वाले हैं, हे रोहित्नामी घोड़ों वाले हे स्तुति से सेवन करने योग्य उन तेतीस (देवताओं) को लाओ ॥ २ ॥

(१) परमात्मा को नाना शक्ति और स्वरूपों को वेद में कई प्रकार से वर्णन किया गया है । एक प्रकार से ३३ देवता वर्णन किए गए हैं, दूसरे प्रकार से ३०१, एक और प्रकार से ३००३ इत्यादि (श० ब्रा० ११ । ६ । ३ । ४) परन्तु वास्तव में देवता एकही शक्ति के नाना रूप और नाम होने से असंख्य हैं हम तो इतना ही कह सकते हैं ॥

(२) कि सब देवता विज्ञान वाले हैं, जड़ (Blind Forces) नहीं हैं ॥

(३) और जो अनुग्रह को चाँछा से लौकिक राजा आदि की अनुचित सेवा न करता हुआ इन को पूज्य बनकर हवि आदि देने का परिश्रम उठाता है, उस के लिए ये देवता सदा सुख की कामना करते हैं ॥

अग्निदेवता, अनुष्टुप्छन्दः । ८।८।८।८।

प्रियमधवदन्त्रिवज्जातवेदोविरूप-

वत् । अङ्गिरस्वन्महिब्रतप्रस्कृष्ट-

स्यश्रुधीहवम् । ३।

प्रियमेधऽवत्	प्रियमेधस्येव	प्रियमेध की न्याई
अत्रिऽवत्	अत्रेरिव	आत्र की न्याई
जातऽवेदः	हे जातानां ज्ञातः	हे उत्पन्न हुआ के जानने वाले
विरूपऽवत्	विरूपस्येव	विरूप की न्याई
अङ्गिरऽवत्	अङ्गिरसइव	अङ्गिरा की न्याई
महिऽवत्	हे महाकर्मन्	हे बड़े कर्म वाले
प्रस्कणवस्य	प्रस्कण्वस्य	प्रस्कण्व की
श्रुधी	शृणु	सुनो
हवम्	आह्वानम्	पुकार को

संस्कृतार्थः

हे महाकर्मन् जातानां ज्ञातः (अग्ने !) प्रियमेधाऽत्रि
विरूपाऽङ्गिरस इव (मम) प्रस्कण्वस्याऽऽह्वानं शृणु ॥३॥

भाषार्थः ।

हे उत्पन्न हुआओं के जानने वाले बड़े कर्म वाले (अग्नि, जिस प्रकार आपने) प्रियमेध, अत्रि, विरूप, (और) अङ्गिरा की (पुकार को सुना था) उसी प्रकार (मुझ) प्रस्कण्व की पुकार को सुनो ॥ ३ ॥

प्रियमेध, अत्रि, विरूप और अङ्गिरा भार्यजति के पूर्व पुत्र-पामों में से हैं जैसे उन की पुकार को सुनकर अग्निदेवने उनकी रक्षा की थी, वैसे हमारे भी करें ॥

अग्निर्देवता, अनुष्टुप्छन्दः । ८।८।८।८।

महि॑के॒रव॒ज्ज॒तये॑ प्रि॒यमे॑धाअ॒हू-

ष॒त । रा॒ज॒न्त॒मध॒वरा॑णा॒ म॒ग्निं॑शु॒क्रे-

गा॒शो॒चि॒षा॑ । ४ ।

<p>{ महिऽ- केरवऽ ज्जतये</p>	<p>प्रौढकर्मणिः (महयोमहान्तःकारवः कर्मणिष्येपातेतथोक्ताः (आकारस्यैकारश्छान्द सः) रक्षाऽर्थम्</p>	<p>बड़े कर्मों वाले रक्षा के लिये</p>
-------------------------------------	--	---

प्रियमेधाः	प्रियमेधाः	प्रियमेधवंशियोंने
अहूषत	आहूतवन्तः	बुलाया है
राजन्तम्	दीप्यमानम्	चमकते हुए को
अध्वराणाम्	यज्ञानाम् (मध्ये)	यज्ञों के (बीच में)
अग्निम्	अग्निम्	अग्नि को
शुभ्रेण	शुभ्रेण	उज्ज्वल से
शीचिषा	प्रकाशेन	प्रकाश से

संस्कृतार्थः ।

प्रोढकर्मणः प्रियमेधा यज्ञानाम् (मध्ये) शुभ्र-
प्रकाशेन दीप्यमानमग्निं रक्षार्थमाहूतवन्तः ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

बड़े कर्मों वाले प्रियमेध वंशियों ने यज्ञों
के (बीच में) उज्ज्वल प्रकाशसे चमकते हुए अग्नि को
रक्षा के लिये बुलाया है ॥ ४ ॥

ऋ०मं०१ सू०४५ मं०५ (१११८)

(१) प्रियमेध घंशियों ने बड़े २ कर्म किये हैं जो प्राचीन इतिहास के लुप्त होजाने से हमें विदित नहीं हैं ये सब अग्नि के उपासक थे ॥

अग्निदेवता, अनुष्टुप्छन्दः ।८।८।८।८।

घृ॒ता॑ह॒वन॑स॒न्त्ये॒ मा॒उ॒ष॒श्रु॒धी-

गि॒रः॑ । या॒भिः॑ क॒ण॒व॒स्य॑सु॒न॒वो॒ ह॒व॒न्ते॑

ऽव॑से॒त्वा ।५।

{ घृ॒तऽआ- ह॒वन	हे घृतेनहूयमान !	हे घृत से हवन करने योग्य
स॒न्त्ये॒	हे दानसाधो (सन् दाने)	हे दानी
इ॒माः	इमाः	ये
ऊ॒म्	(पूरणः)	-
सु	सु+	-
श्रु॒धि	सु+श्रुधि सृष्टु शृणु	खूब सुन
गि॒रः॑	स्तुतीः	स्तुतिओं को

याभिः	याभिः	जिनसे
कण्वस्य	कण्वस्य	कण्व के
सनवः	पुत्राः	पुत्र
हवन्ते	आह्वयन्ति	बुलाते हैं
अवसे	रक्षार्थम्	रक्षा के लिये
त्वा	त्वाम्	तुझ को

संस्कृतार्थः ।

हे घृतेनहूयमान ! दानसाधो (अग्ने) याभिः
(स्तुतिभिः) कण्वस्यपुत्रा रक्षार्थं त्वामाह्वयन्ति (ताः)
इमाः स्तुतीः सुष्टुश्रृणु ॥५॥

भाषार्थः ।

हे घृत से हवन करने योग्य दानी (अग्निदेव)
जिन (स्तुतियों से) कण्वकेपुत्र रक्षा के लिये आप
को बुलाते हैं (उन) इन स्तुतियों को खूब सुनियो ॥५॥

(१) कण्व के पुत्र अर्थात् मैं प्रस्कण्व और दूसरे मेरे यन्धु वर्ग ।

अग्निदेवता, अनुष्टुप्छन्दः । ७।७।७।७।

त्वा॑चि॒त्रश्र॑वस्त॒म ह॒वन्ते॑वि॒क्षु-
ज॒न्तवः॑ । शो॒चिः॑ केशं॒ पुरु॑प्रि॒या । ऽग्ने-
ह॒व्याय॑वो॒ह्लवे॑ । ६।

त्वाम्	त्वाम्	तुझ को
चि॒त्रश्र॑वः॒ऽ त॒म	हे अतिशयेन चित्रकीर्तियुक्त	हे बड़ीविचित्र कीर्ति वाले
ह॒वन्ते॑	आह्वयन्ति	बुलाते हैं
१ वि॒क्षु	प्रजासु	प्रजाओं में
ज॒न्तवः॑	मनुष्याः (निचं० २।३)	मनुष्य
{ शो॒चिः॑ऽ- केशम्	दीप्तिरूपकेशो- पेतम्	प्रकाश रूप वाली वाले को

प्रसुप्रियहे बहुप्रिय
('पुरु' इति बहुनाम)
(निघं० ११३)

हे बहुतों के प्यारे

अग्ने

हे अग्ने !

हे अग्नि

हव्याय

हव्याय

हवि के लिये

वोह्वेवोढुम्
(पठतेः 'तुमर्थे' त्वेन्
प्रत्ययः)

ले जाने के लिये

संस्कृतार्थः ।

हे अतिशयेन चित्रकीर्तियुक्तबहुप्रियाग्ने ! प्रकाशरूपकेशयुक्तं त्वां हविषो वहनार्थं मनुष्याः प्रजानां मध्यमाह्वयन्ति ॥ ६ ॥

भाषार्थः ।

हे बड़ीविचित्र कीर्तिसे युक्तबहुतोंके प्यारे अग्नि (देव) प्रकाश रूप वालों वाले आपको हवि लेजाने के लिए मनुष्य प्रजाओं के बीच में बुलाते हैं ॥ ६ ॥

(१) अग्निदेव को मनुष्य अपने २ घरों में प्रजाओं के बीच में बुलाते हैं—कि यह देवताओं के लिए हवि को ले जायें ॥

अग्निदेवता, अनुष्टुप्छन्दः ॥ ११२१ ॥

नितंवाहीतारमृत्विजं, दधिरेव-

सुवित्तमम् । श्रुत्कर्णसप्रथस्तमं वि-
प्राग्गनेदिविष्टिष ॥७॥

नि	नि +	-
त्वा	त्वाम्	तुझ को
होतारम्	होतारम्	होता को
ऋत्विजम्	ऋत्विजम्	ऋत्विज् को
जम्		
दधिरे	नि + दधिरे	स्थापन किया है
वसवित्-	स्थापितयन्तः	
ऽतमम्	अतिशयेन धनस्य	धनके बहुत ज्ञान
	ज्ञातारम्	वाले को
श्रुत्कर्णम्	श्रवणार्थकर्णोपे-	सुनने के लिये
	तम्	कानों से युक्त को
सप्रथऽ-	अतिप्रसिद्धम्	अति प्रसिद्धको
तमम्		

विप्राः

अग्ने

{ दिवि

{ ष्टिषु

मेधाविनः

हे अग्ने !

दिवः स्वर्गस्य,
इष्टय इच्छायेषु
(यज्ञेषु)

बुद्धिमानों ने

हे अग्नि

स्वर्ग की इच्छामें
युक्त (यज्ञों) में

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! मेधाविना होतारमृत्विजमतिशयेन-
धनस्य ज्ञातारमतिप्रसिद्ध श्रवणार्थं कर्णोपेतं त्वां स्वर्ग-
च्छायुक्तेषु (यज्ञेषु) स्थापितवन्तः ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि, होता ऋत्विज् धनके बहुत ज्ञानवाले;
अतिप्रसिद्ध, सुनने के लिए कानों से युक्त आपको
बुद्धिमानों ने स्वर्ग की इच्छामें युक्त (यज्ञों) में स्थापन
किया है ॥ ७ ॥

(१) यज्ञ में मनुष्य होता का काम हवि ग्रहण करने के लिए
देवताओं को बुलाने और हवि स्वीकार करने के लिए उन से
प्रार्थना करने का है यही कर्म देवहोता अग्नि का है ॥

(२) यद्यपि हम अग्नि के कानों को नहीं देखते। परन्तु
जानते हैं कि यह सुनने के लिए कानों से युक्त है और हमारी स्तुति
और प्रार्थना को सुनते हैं ॥

(३) बुद्धिमान् परलोक के सुख के साधन निमित्त अग्नि को

श्र० मं०२ सू०४५ मं०८ (११२४)

स्थापन करके यज्ञ करते हैं जिससे वे दिनों दिन पाप को छोड़कर सुकर्म में प्रवृत्त होते जाते हैं और शरीर को त्यागने पर स्वर्गादि देवलोकों को प्राप्त करते हैं ॥

अग्निदेवता, अनुष्टुप्छन्दः । ८।८।८।८।

आ॒त्वा॒वि॒प्रा॒ञ्च॒च्य॒वुः॒ सु॒त॒सो॒मा

अ॒भि॒प्र॒यः॑ । वृ॒ह॒द्भा॒वि॒भ्र॒तो॒ह॒वि॒ र॒ग्ने-

म॒ता॒य॒दा॒शु॒ष ॥८॥

आ	आ+	-
त्वा	त्वाम्	तुझ को
विप्राः	सेधाविनः	धुद्धिमानों ने
अचच्यवुः	आ+अचुच्यवुः प्रापितवन्तः (अन्तर्मा- वितपर्यः)	प्राप्त कराया है
सुतऽसोमाः	अभिपुर्तसोम	जिन्होंने सोम
अभि	प्रति	निचोड़ा है
	युक्ताः	प्रति

प्रयः	अन्नम्	अन्न को
वृहत्	महान्तम् (सुपा'मिति विभक्तैर्लुक्)	बड़े को
भाः	भासमानम् (सुपासुलुगिति विभक्त र्लुक्)	प्रकाशमान को
विभ्रतः	धारयन्त.	धारते हुए
हविः	हविः	हवि को
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
मर्ताय	मरणधर्माय	मरण धर्मोंके लिये
दाशुषे	यजमानाय	यजमान के लिये

सस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! अभिषुतसोमयुक्ता हविर्धारयन्तो मेधा
विन (हविर्लक्षणम्) अन्न प्रति महान्तं भासमान त्वां
मरणधर्माय यजमानाय प्रापितवन्तः ॥८॥

मापार्थः ।

हे अग्नि, सोम निचोड़े हुए (और) हवि को
धारते हुए बुद्धिमानों ने (हविरूप) अन्न के प्रति

वड़े (और) प्रकाशमान आपको मरणधर्मा यजमान के लिए प्राप्त कराया है ॥ ८ ॥

मेधावी सुत सोम ऋत्विजों का मरणधर्मा यजमान पर यह बड़ा अनुग्रह है कि महान् प्रकाश युक्त अग्निदेव आफर उसका अन्त रूपं ग्रहण करें और अन्य देवताओं को पहुंचावें।

अग्निर्देवता, अनुष्टुप्छन्दः। ८। ८। ८। ८।

प्रातर्याणः सहस्रत सोमपेयाय
सन्त्य। इहाऽद्यदैव्यं जनं वहिरासाद
यावसो। ९।

प्रातः-	प्रातरागच्छतः	प्रातःकाल में
।	(देवान्)	आने वाले
।	(आकारलोपः)	(देवताओं को)
।	हे बलेनोत्पादित	हे बल से उत्पन्न
।	(सह इतिषलनाम)	किए गए
।	(निघं० १।१२।)	सोमपान के लिए
।	सोमपानार्थम्	हे दानी
।	हे दानसाधो !	यहां
।	इह	

अद्य	अद्य	आज
दैव्यम्	दैव्यम्+	-
जनम्	दैव्यम्+जनम्, देव समूहम्	देव समूह को
वर्हिः	दर्भे (सप्तम्यर्थं द्वितीयाः)	कुशापर
आ	आ+	-
सादय	आ + सादय उपवेशण	बिठाओ
वसो	हे धनाधिप (आ०को०)	हे धन के स्वामी

संस्कृतार्थः ।

हे बलेनोत्पादित दानसाधो धनाऽधिप (अग्ने!)
अद्याऽस्मिन्स्थाने प्रातरागच्छतो देवान् (अन्यमपि)
देव समूहं सोमपानार्थं दर्भ उपवेशय ॥ ९ ॥

भाषार्थः ।

हे बल से उत्पन्न किए गए, दानी, धन के
स्वामी (अग्निदेव) आज यहां पर प्रातःकाल में आने
वाले देवताओं को (और अन्य) देव समूह को सोम
पीने के लिए कुशा पर बिठाओ ॥ ९ ॥

(१) प्रातःकाल में आने वाले देवता अग्नि, उषा और अश्वि हैं ।

सुऽदानवः	हे कल्याणदानाः (दास्का)	हे कल्याणके देने वाले
तम्	तम्	उसको
पात	पिवत् (शपोलक)	पीओ
तिरऽअ- ज्ञाम्	ह्यस्तनम् (अहोऽतीत्यवर्तत इति तम्)	कल के (निचोड़े हुए) को

ससृत्तार्थः ।

हे अग्ने । अभिमुखमागतं देवसमूहं समानाः -
हानैर्यज, हे कल्याणदानाः (देवाः ।) अयंसोमः (वर्तते)
तं ह्यस्तनं - (सुतंसोमम्) पिवत् ॥ १० ॥

मापार्थः ।

हे अग्नि सम्मुख हुए देव समूह को इकट्ठे-
वुला कर पूजिए, हे कल्याण के देनेवाले (देवताओ)।
यह सोम (वर्तमान है) इस कल के (निचोड़े हुए
सोम) को आप पीवें ॥१०॥

(१) एक दिन पहले निचोड़कर रखने से सोम में विद्रोप गुण
होजाते हैं ॥

इति पञ्चचत्वारिंशं सूक्तम्

अ० मं०१ सू० ४६ मं०१

अश्विनो देवते प्रस्कण्वरुपिर्गायत्री छन्दः । ७।८।९।

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया

दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् । १।

एषो०	एषा	यह
उषाः	उषाः	उषा
अपूर्व्या	पूर्वमविद्यामाना	जो पहिले नहीं दीखती थी
वि	वि +	—
उच्छति	वि + उच्छति आविर्भवति	प्रकट होती है
प्रिया	प्रिया	प्यारी
दिवः	द्युलोकात्	आकाश से
स्तुषे	स्तौमि,	स्तुति करता हूँ
वाम	युवाम्	तुम दोनों को,

अश्विनो वृहत्	हे अश्विनो ! अतिशयेन	हे अश्विन देवताओ अनिशय करके
------------------	-------------------------	--------------------------------

संस्कृतार्थः ।

एषा पूर्वमविद्यमाना प्रिया उषा द्यलोकाना-
विर्भवति हे अश्विनो ! (अस्मिन्काले) युवामनिशयेन
स्तोमि ॥१॥

भाषार्थः ।

जो पहले नहीं दीखती थी ऐसी प्यारी उषा द्युलोक
से प्रकट होती है, हे अश्विन देवताओ (ऐसे काल में)
मैं आप की अतिशय करके स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

विनियोग—यह सूक्त प्रातःनुषाक में आश्विन क्रतु के आश्विन
शस्त्र में पढ़ा जाता है (भा० धी० सू० ४ । १५ । १)

(१) "अपूर्वा" कहने से प्रतीत होता है कि ऋषि को बहुत
समय के पीछे उषा का दर्शन हुआ है, ऐसा मेघ के समीप देशों में
होता है, यहाँ कई महीनों की रात्रिके अन्तमें उषा प्रकटहोकर बहुत
दिनों तक विद्यमान रहती है। फिर सूर्य के उदय होने से उसके
प्रकाश में लय होजाती है।

अश्विनो देवते निचूद्गायत्री छन्दः । ८। ७। ८।

यादस्रासिन्धुमातरा मनोतरारं-

यीणाम् । धियादवावसुविदा । २। ;

या	यो	जो
दस्त्रा	उद्यो	भयानक
सिन्धुऽ- सातरा	समुद्र मातृकौ	समुद्र से उत्पन्न
मनोतरा	मनसोत्पादकौ (पा०शो०)	मनसे उत्पन्न करने वाले
रथीणाम्	धनानाम्	धनों के
धिया	ध्यानेन	ध्यान से
देवा	देवो	देवता
वसुऽविदा	धनस्यज्ञातारौ	धन के जानने वाले

सस्यतार्थः ।

यो देवो समुद्रोत्पन्नो, मनसा धनानामुत्पादकौ
ध्यानेन धनस्य ज्ञातारो, (च स्तः) ॥ २ ॥

भाषार्थ ।

जो देवता समुद्र से उत्पन्न, मन से धनों के

उत्पादक, (और) ध्यान द्वारा धन के जानने वाले (हैं) ॥ २ ॥ -

(१) इस सूक्त में समुद्र से सर्वत्र अन्तरिक्ष के जल समझने चाहिये, इन्होंने से अद्वि देव और उषा की भी उत्पत्ति होती है यदि अन्तरिक्ष में जल और वायु (atmosphere) न होते, तो सूर्य उदय तक आकाश अत्यन्त काला दिखाई देता जिस में नक्षत्रों से भिन्न और किसी प्रकार की ज्योति नहीं दिखाई देती, और सूर्य उदय होने पर धूप और प्रकाश एक दम प्रकट होजाते ॥

अश्विनो देवते गायत्री छन्दः । ८ । ८ । ८ ।

वच्यन्ते वाक्कहासो जूर्णायाम्-
धिविष्टपि । यद्धारथो विभिष्टप-

तात् । ३ ।

वच्यन्ते

प्रापयन्ति
(ऋ० ११९७।२)

पहुँचाते ह

वाम्

युवाम्

तुम दोनों को

ककुहासः

महान्तः
(निघ० ३।१)

महान्

जूर्णायाम्

पुरातन्याम्

प्राचीन में

अधि	अधि+	-
१ विष्टपि	अधि+विष्टपि लोके (पा०को०)	लोक में
यत्	यदा	जब
वाम्	युवयोः	तुम दोनों का
रथः	रथः	रथ
२ विडभिः	उड्डीयमानैः (मदरैः)	उडने वाले(घोड़ों) से
पतात्	गच्छति (पल्लगती) (मस्माल्लेटघाडागमः)	जाता है

सस्यतार्थः ।

(हे अश्विनो !) यदा युवयो रथउड्डीयमानैः
(अश्वैः) गच्छति (तदा) महान्तः (अश्वाः) युवां पुरा-
तनेलोके प्रापयन्ति ॥ ३ ॥

मापार्थः ।

(हे अश्विदेवताओ) जब आप का रथ उडने
वाले घोड़ों से चलता है, (नय)महान् (अश्व) आपको
प्राचीन लोक में ले जाते हैं ॥ ३ ॥

विषय सूची ।

ऋग्वेद संहिता अङ्क १३ से २४ तक ।

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
अङ्गिरा	६८१	विश्वमानु	६०८
अजीगर्त	४८८	तनुज्ञत्	७१६
अदिति	५१०	तुर्वथ	८४०
अधिपवण्या	६२७	तुर्वीति	८४०
अर्च्यमा	५८७	तेतीस देवता	८५३
अरावा	८५३	त्रिकटुक	७५३
असुर	५४३	दयद्यु	८२६
अहि	७४७	दानुः	७६८
आयु	७४०	नदियों की उत्पत्ति	५४५
आहाव	८५४	नर	५५५
इळा	७२२ १०२४	नवग्वा	८०२
इक्षीविष्य	८२०	नव नवति रजांसि	७८२-७८३
उग्रदेव	८४०	निर्ऋति	५३०
उषा	६८४	पुरुखा	७०१
ऋक्ष	५३२	पृथिवी का पूर्वइतिहास	७४७
काण्व	८२०	सहस्रय	८४०
कुत्स	८२६	ब्रह्मणस्पति	१०१७
कोहिर की उत्पत्ति	८०८	मरुद्गण	६८१
चन्द्रमाके प्रकाशका कारण	८२६		

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
मनु	००१	वृच, धूलि का नाम	०४०
मातरिश्वा	६६०	वृषा	८२१
मेघपातियि	८३८	शिरी	६४२
यदु	८४०	शुनःशेष	४६६
ययाति	८४१	शिवचा	८२८
यातुधान	८६३	पर्दह	०५४
यपस्तुति	८२०	सप्तसिन्धवः	०७०
रात्रिदेवता	८६८	सूर्य की महिमा	८०८
रुद्रः	६१४	सोम	०५३
रोहित	४८६	सौर मन्त्राण्ड की उत्पत्ति	६६८
वर्षा का कारण	०५१	हरिश्चन्द्र	४६६

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
८०६	१८	भूत्	भूत्	१०००	८	भूम्याम	भूम्याम्
८००	१६	मह	सह	१००१	१४	ह्रस्वा	ह्रस्वो
९८०	२	चित्	चित्	१००२	१०	सुड	सुड्
"	०	क्षपवन्ति	कुर्वन्ति	१००३	५	सर्वया	सर्वया
८८१	४	यटपा	यटेषा	"	१४	शीघ्रा	शीघ्रो
"	१०	शब्दच	शब्देषु	१००४	८	उपा+	उपो+
"	१६	यत्	यत्	१००५	५	पृथिवी	पृथिवी
८८२	१२	(लङ्घ्येसुड्)	(लङ्घ्येसुड्)	"	८	प्रताचां	प्रतीचां
"	१८	पृथिवी	पृथिवी	"	१४	यज्य	युज्य
८८०	४	सस	सुस	"	१८	विन्दु	विन्दु
"	०	सन्त	सन्तु	१००७	१५	कसु)	कसुः)
"	१२	अच्छा	अच्छो	१००८	८	पूर्वकाल	पूर्वकाल
८८०	१४	विस्तृततो	विस्तृतो	"	१५	युष्मे	युष्मे
८८२	१४	मरुद्	मरुद्	"	१८	धात्व)	धात्वम्)
"	१६	सप्तम्	सप्तम्	१०११	११	प्रचेतसः	प्रचेतसः
८८४	२	कस्य	कस्य	१०१२	१८	विभया	विभूया
"	५	किस	किसञ्जे	१०१३	४	अखिलिम	अखिलम्
८८६	१६	सन्त	सन्तु	१०१४	८	काप	कोप
८८८	६	विद्युज्य	विद्युज्य	१०१५	१५	प्रथना	प्रार्थना
८८८	१४	देवता	देवताः	१०१८	५	उपव्रते	उपव्रते
					११	सुः	सुः
				१०२०	५	नयन्तु	नयन्तु

पृ०	पं०	अगुहम्	गुहम्	पृ०	पं०	अगुहम्	गुहम्
१०२०	८	पति	पति.	१०३१	६	त्यन्तर	त्यन्तर्
१०२१	६	पङ्क्तिराध		"	१८	आधीन	अधीन
"	१०	अनयन्त	प्रापयन्त	१०३२	१२	राजाभिः	राजभिः
१००२	६	णस्ते"	णस्पते"	१०३३	८	तकता	तकता
१०२३	८	राहतम्	रहितम्	"	२१	मनिवास	मनिवासं
१०२३	१२	दळाम्	दळाम्	१०३५	७	यम्	यम्
"	१३	सुवीराम	सुवीराम्	"	१६	ते	ते
"	१३	वीरोपताम	वीरोपताम्	"	"	हिंयते	हिंयते
"	१३	वीरसे	वीरो मे	१०३६	१२	यं वाह	यं वाहु
"	१५	यजामह	यजामहे	"	१५	परयन्ति	पूरयन्ति
"	१५	प्रयाग	प्रयोग	१०३७	१८	घनन्ति	घनन्ति
१०२७	१७	वाचेम	वोचेम	१०४०	१६	आदित्या	आदित्यो
"	१८	लिडि	लिडि	"	१८	दृष्टः	दृष्टः(दृष्टि
१०२८	५	पदं)	पदम्)	१०४२	"	वस	वस
१०३०	८	आधीन	अधीन	"	"	कमत	कमत
१०३१	२	तिष्ठत	तिष्ठति	१०४३	१४	स्तुन्	स्तुञ्
१०३१	३	वर्ति	वर्न्ति	१०४४	६	म्या	मयो
"	४	तीत्य	न्तीत्य	१०४५	७	(द्विरूपम्)	(द्विरूपम्)
"	४	तीत्य	न्तीत्य	"	१६	म्यो	मयो
"	४	तीत्य	न्तीत्य	१०४६	१४	"	"

अंक २७ २८] [मार्गशीर्ष-पौष १९३४] LIBRARY

ऋग्वेद संहिता

(वैदिकजीवनभाष्ययुता)

पदपाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और भाषा अनुवाद
टिप्पणी और मन्त्रों के आशय पर
व्याख्यान से युक्त

जिसको पण्डितगणेशदत्त व्यास और मुल्ताननियासी
प०शङ्करदत्त शास्त्री की सहायता से शिष्यनाथ
आहिताग्नि ने सम्पादन किया

लाहौर

पञ्जाब एकादमीकल यन्त्रालय में प्रिण्टर छासा
छासमग के अधिकार से छपा ।

१२ अकों का मूल्य २)

पिछले २४ अकों का मूल्य ५॥)

ऋग्वेद संहिता अङ्क २५, २६ शुद्धाशुद्धि पत्रम् ।

पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	
१०५०	१०	कह	कह	१०६३	१६	करते	करते ई
"	१४	हमा	हमारे	१०६५	४	चेतसे	चेतसे
"	१८	देखी	देखी	"	७	रुपे	रुद्राय
"	२०	देवता	देवता	"	८	बुद्धिमान	बुद्धिमान
१०५१	१५	(परणः)	(परणः)	१०७६	१८	वन्धकाः	वन्धकाः
१०५२	१४	अ +	अप +	१०७८	१५	दपस	दपस
१०५३	६	रकट	रकटे	"	"	श्चिर्ष	श्चिर्ष
"	८	तः	तम्	१०८०	१५	गन्दने	गन्दने
"	११	सुतेः	सुतेः	१०८२	८	दतः	दतः
१०५५	१५	ज्ञानवान	ज्ञानवान्	"	"	"	"
"	१०	मतुपच)	मतुप च)	"	१०	षडा	षोडा
१०५८	११	पपन्	पपन्	१०८७	८	तारम्	तारम्
१०६१	१६	ध	शुद्धि	१०८०	१०	जनम्	जनम्
"	१०	स्पदरम्	स्पदरम्	१०८१	१०	करतेई	करतीई
१०६२	४	सट)	सट)				

(१) प्राचीन लोक यौ है जिसमें उत्तर मेरु के समीपस्थ देशों में भद्रिष देवताओं का रथ बहुत दिनों तक चारों ओर घूमता हुआ दिखाई देता है ॥

(२) भद्रिष देवताओं के घोड़े आकाश में बहुत शीघ्र उड़ते हैं तभी तो सहस्रों कोस की परिक्रमा २४ घण्टे में करलेंते हैं ॥

अश्विनौ, देवते निचृद् गायत्री छन्दः । ७। ८।

ह॒विषा॑जा॒रोअ॒पां पि॑प॒र्तिप॑पु॒रि-
न॒रा । पि॒ताकु॑ट॒स्यच॑र्ष॒णिः । ४।

ह॒विषा॑	हविषा	हवि से
१ जा॒रः	कामुकः	अनुराग करने वाला
१ अ॒पाम्	उदकानाम्	जलों के
पि॑प॒र्ति	पूरयति	पूर्ण करता है
प॑पु॒रिः	(धनधान्येन) पूरयिता	(धनधान्य से) पूर्ण करनेवाला
न॒रा	हे नरो	हे नरो

पिता	पालकः	पालने वाला
कुटस्य	गृहस्य (भा०को०)	घरके
चर्षणिः	द्रष्टा	देखने वाला

संस्कृतार्थः ।

हे नरो, अरांजारः (धनधान्येन) पूरयिता गृहस्य
पालकः (कर्मणः) द्रष्टा (अग्निः) (अस्मदत्तेन)
हविषा (युवाम्) पूरयति ॥४॥

मापार्थः ।

हे नरो जलों से अनुराग करनेवाले (धनधान्य
से) पूर्ण करने वाले घर के पालक (और कर्म के)
द्रष्टा (अग्नि) (हम से दी हुई) हवि से (आप को)
पूर्ण करते हैं ॥ ४ ॥

(१) "जलों के जार" अग्निदेव हैं (देवों तै० ब्रा० १।१।३।८)
जो हवि से देवताओं को पूर्ण करते हैं, और यज्ञमान के घर को
धन धान्य से पूर्ण करते हैं ॥

अश्विनो देवते, निचृद्गायत्री छन्दः ७।८।९॥

आ॒दा॒रो॒वा॒म॒ती॒नां॑ ना॒स॒त्या॑म॒त-

व॒च॒सा॑ । पा॒त॒सो॒म॒स्य॑ धृ॒ष्णु॒या ॥५॥

१ आऽद्वारः	प्रेरकः (आ०फो०)	प्रेरण करने वाला
१ वाम्	युवयोः	तुम दोनों की
१ मतीनाम्	स्तुतीनाम्	स्तुतियों का
नासत्या	हे अनृत रहितौ	हे झूठ से रहित
{ २ मतऽव- चसा	मतं स्तुतिरूपं वचो याभ्यां तौ, तत्सम्बुद्धौ	हे स्तुति रूपवचन के आदर करने वालों
पातम्	पिबतम (शपोलुक्पियादेशा- नाबश्च)	पान करो
सोमस्य	सोमम् (द्वितीयाऽर्थेपठ्ठी)	सोम को
धृष्णाऽया	धृष्टतया (सुषांसुलुगितियाडा- देशः)	बेधड़क हो कर

सस्त्वितार्थः ।

हे अनृत रहितौ (स्तुतिरूपे) वचस्यादरयुक्तौ (अ-

१. अश्विनो) युवयोः स्तुतीनां प्रेरकः (यःसोमोऽस्ति)
(तम्) सोमं धृष्टतया पिवतम् ॥५॥

अश्विनो

भाषार्थः ।

हे झूठ से रहित (स्तुतिरूप) वचन में आदर करने वाले (अश्विनदेवो) आपकी स्तुतियों का प्रेरण करने वाला जो सोम है उसको वेधड़क होकर पाओ ॥५॥

(१) सोम स्तुतियों का प्रेरक है। सोमपान से विश्व की चञ्चलता मिट कर मनुष्य स्तुति शील होजाता है।

अश्विनो देवते गायत्रीछन्दः ८।८।८ ॥

यानः पीपरदश्विना ज्योतिष्म-
तीतमस्तिरः । तामस्मेरासाथामि-
षम् ॥६॥

या

नः

पीपरत्

अश्विना

या

अस्मान्

पालयेत्

हे अश्विनो

जो

हम को

पाले

हे अश्विनदेवताओ

ज्योति- ष्मती	ज्योतिर्युक्ता	प्रकाश से युक्त
तमः	तमः+तिरः अन्ध- कारात्तरः(भूतम्)	अन्धकारसे रहित
तिरः	+ तिरः	--
ताम्	ताम्	उसको
अस्मे०	अस्मभ्यम्	हमारे लिये
रासाधाम्	दत्तम् (रा-दाने लोडयें लुङ्)	दो
दूषम्	अन्नम्	अन्न को

संस्कृतार्थः ।

हे अश्विनौ! ज्योतिपायुक्तमन्धकारात्तिरः(भूतम्)
यदन्नमस्मान्पालयेत्तदस्मभ्यंदत्तम् ॥६॥

भाषार्थः ।

हे अश्विदेवताओ प्रकाशसे युक्त (और) अन्धकार
से रहित जो अन्न हमारी पालना करे उसको हमारे
ताई दो ॥ ६ ॥

अश्विदेव हमें देना अन्न दें जो हमारी बुद्धि में प्रकाश को
उत्पन्न करे और भगवान् रूपी अन्धकार को हटावे ।

अश्विनी देवते, निचृद्गायत्री छन्दः । ८। ७। ८

आ॒नी॒ना॒वा॒म॒ती॒नां॑ या॒तं॒पा॒रा॒य॒ग॒न्त॒वे॑ ।

यु॒ञ्जा॒था॒म॒श्वि॒व॒ना॒र॒थ॒म् ॥७॥

आ	आ+	--
नः	अस्मान् (प्रति)	हमारे (प्रति)
नावा	नावा	वेड़ी से
मतीनाम्	स्तृतीनाम्	स्तुतियों की
यातम्	आ+यातम्	आइये
पाराय	पाराय+	--
गन्तवे	पाराय+गन्तवे पारं प्राप्तुम् (तुमर्हेतवे न्प्रत्ययः)	जाने के लिए
युञ्जाथाम्	युञ्जाथाम्	जोड़ो
अश्विना	हे अश्विनो	हे अश्विदेवताओ
रथम्	रथम्	रथ को

संस्कृतार्थः ।

हे अश्विनो ! (समुद्रात्) अस्मान् (प्रति) पारम्
प्राप्तुं स्तुतीनां नावाऽऽगच्छतम्, (ततोऽवतीर्य) रथं
युञ्जाथाम् ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

हे अश्विनदेवो (समुद्र से) हमारे प्रति पार होने
के लिए स्तुतियों की घेड़ी से आओ. (उस से उतर
कर) रथ को जोड़ो ॥ ७ ॥

अश्विनदेव अन्तरिक्षके जलोंसे पार धूलोकमेंहूँ हमारी स्तुतियों
की घेड़ी उन को जलों के इस किनारे ले भावे और वहाँ से उनका
रथ उन्हें हमारे पास ले आवे ।

अश्विनोदेवते, निचृद्गायत्रीछन्दः । ७। ८। ८

अ॒रि॒त्र॒वा॒न्दि॒व॒स्पृथु॒ ती॒र्थ॒सिन्धू॒नां

रथः । धि॒यायु॒य॒ज॒इन्द्र॒वः । ८।

अ॒रि॒त्र॒म्
वा॒म्
दि॒वः

समुद्रयानम्
(मा०को०)
युवयोः
शुक्लोक्तम्

जहाज
तुम दोनों का
आकाशसे

पृथु ८७	विस्तीर्णम्	चौड़ा
तीर्थे	अवनरण प्रदेशे	किनारे पर
सिन्धूनाम्	समुद्राणाम्	समुद्रों के
रथः	रथः	रथ
धिया	कर्मणा (निघ०२११)	कर्म से
युयुजे	युक्तावभूवः	युक्त हुए हैं
इन्द्रवः	सोमाः	सोम

संस्कृतार्थः ।

(हे अश्विनो) युवयोःसमुद्रयानमाकाशात् (अपि) विस्तीर्णम् (अस्ति) समुद्राणामवनरणे प्रदेशे रथः (विद्यते) सोमाः (च,अभिपवादि) कर्मणायुक्ताः वभूवुः ॥ ८ ॥

भाषार्थः ।

(हे अश्विदेवताओ) आप का जहाज आकाश से (भी) चौड़ा (है) समुद्रों के किनारे पर रथ (विद्यमान है)(और)सोम (भी निचोड़ने आदि) कर्म से युक्त हुए हुए हैं ॥ ८ ॥

हमारी स्तुति रूप जहाज जिस पर चढ़ कर भदिरदेव भक्ति-
रिक्ष के पार आते हैं दुलोक से भी चौड़ा है, वहाँ से हमारे घर
तक आनेके लिए तीर्थ (port) पर रथ उपस्थित है, सोम भी निचोड़े,
हुए हैं। (पाक्य प्रति के लिये देखो भगला मन्त्र)

अश्विनो देवते निचृद्गायत्री छन्दः। ७। ७। ७।

दिव॑स्क॒रवा॑स॒ इन्द्र॑वो॒ वसु॑सिन्धू

नां॒ प॒दे । स्व॒व॒त्रिं॒कु॒ह॒धित्स॑थः । ६।

दिवः	दुलोक (सप्तम्यर्थे पच्छी)	आकाश में
करवासः	हे कणवाः	हे कणवाः
इन्द्रवः	सोमाः	सोम
वसु	धनम्	धन
सिन्धूनाम्	समुद्राणाम्	समुद्रों के
पदे	स्थाने	स्थान में
स्वम्	स्वम्	अपने

वत्रिम्	रूपम् (निघं० ३।७)	रूपको
कुह	कुत्र	कहाँ
धित्सथः	धारयितुमिच्छथः	धारण करना चाहते हो

संस्कृतार्थः ।

हे कण्वाः! सोमा धुलोके (प्राप्ताः) धनं समुद्राणाम्
(अवतरण-)स्थाने (विद्यते) (हे अश्विनौ) निजस्वरूपं
कुत्र धारयितुमिच्छथः ॥ ९ ॥

भाषार्थः ।

हे कण्वो ! सोम धुलोक में (पहुँच गए) धन
समुद्रों के किनारे पर (है) हे अश्विदेवो आप अपना
स्वरूप कहां धारण करना चाहते हो ॥९॥

ऋषि कहते हैं कि हे कण्वो हम अश्विदेवों को सोम निचोड़
कर अर्पण कर चुके हैं । जो अग्निद्वारा धुलोक में पहुँच गया, धन
जो अश्विदेवोंके रथ में मरा है समुद्रों के तीर पर विद्यमान है । हे
अश्विदेवो अब आप कहां जाना चाहते हो । धुलोक में या किसी
अन्य यज्ञमान के घर ।

अश्विनौदेवते गायत्रीछन्दः । ८।८।८।

अ॒भू॒दु॒भा॒उ॒श्र॒ग॒वे॒ हिर॒ण्यं॒प्रति॒-
सू॒र्यः॑ । व्य॒ख्य॒जि॒ज्ज्ञया॑ऽसितः । १०।

अभूत्	अभूत्	हुआ
ऊम्०	खलु	सच मुच
भाः -	छाया (पा०को०)	छाया
ऊम्०	(पूरणः)	-
अंशवे	ज्योतिषे	प्रकाशके लिये
हिरण्यम्	हिरण्यम्+	-
प्रति	हिरण्यम्+प्रति स्वर्ण लक्षण	स्वर्ण के सदृश
सूर्यः	सूर्य.	सूर्य
वि	वि +	--
अख्यत्	वि+अख्यत् प्रकटोऽभवत्	प्रकट हुआ
जिह्वया	जिह्वया	जिह्वा से
असितः	कृष्णवर्णः	काले रङ्ग वाला

संस्कृतार्थः ।

ज्योतिषे खलु छायाऽभवत् सूर्यो हिरण्यसदृशः
(संवृत्तः) (अग्निरपि) कृष्णवर्णः (मन्) ज्वाला रूपया
जिह्वया प्रकटोऽभवत् ॥१०॥

भाषार्थः ।

प्रकाश के लिये सचमुच छाया होने लगी, सूर्य
सोने की न्याईं (होगया) (अग्नि भी) कल्ला (होकर)
अपनी (लाट रूपी) जिह्वा से प्रकट होने लगा ॥१०

कई दिनों के मन्द प्रकाश के पीछे आज ऐसा प्रकाश होगया
है कि उस की छाया भी पड़ने लगी है, सूर्य भी जो भयतक लाल
रंग के दीखते थे आज सुवर्ण की न्याईं पोले रंग के होगये हैं।
अग्नि जो घेड़े प्रकाश में खूब चमकती थी अब सूर्य के प्रकाश की
भयंकर काली पड़ गई और केवल लाट से प्रकाशित होती है। यह
दृश्य उत्तर मेघ के समीपस्थ देशों का है। जहां प्रस्कण्य प्रापि ने
इस सूक्त को देखा प्रतीत होता है।

अश्विनो देवते, गायत्री छन्दः । ८ । ८ । ८ ।

अभूद्पारमेतवे पन्था चतस्यसा

६ या । अदर्शिविस्रतिर्दिवः । ११ ।

अभूत्	अभूत्	हृआ
ऊम्०	(पूरण)	-
पारम्	पारम	पार
एतवे	गन्तुम् (तुमधे तेने)	जाने के लिए
पन्थाः	मार्गः	मार्ग
यज्ञस्य	यज्ञस्य	यज्ञ का
साधऽया	साधु. (सुपांसुलुगि तियाडादेशः)	अच्छा
अदर्शि	वि + अदर्शि	स्पष्ट दिखाई दी
वि	वि +	-
सुतिः	वीथिका	पगडंडी
द्विवः	द्विलोकस्य (आ०को०)	द्विलोक की

संस्कृतार्थः ।

पा० गन्तुं यज्ञस्य मार्गो साधुरभूत् (तेन निश्चिता)

द्विलोकस्य वीथिका सुस्पष्ट दृष्टाऽभवत् ॥११॥

मापार्थः ।

पार जाने के लिए यज्ञका अचछारस्ता बन गया, (ओर) उसमें से निकली हुई दुलोक की पगडंडी दीखने लगी । ११

यहां पर 'यज्ञ वा सृष्टि नियम को एक विशाल राजमार्ग से उपमा दी है, जिल में से स्वर्गादि लोका की पगडंडियां निकलती हैं जो सूर्य के उदय होने से अब स्पष्ट दीखने लगीं ॥

अश्विनोदेवते, गायत्रीछन्दः ८।८।८॥

तत्तद्दिविदश्विनोर्वो जरिताप्रति

भूषति मदेसोमस्यपिप्रतोः । १२ ।

तत्तत्	तत्तत्	उस उस को
इत्	अपि	भी
अश्विनोः	अश्विनोः	अश्विदेवताओं के
अवः	रक्षणम्	रक्षा को
जरिता	स्तोता	स्तुति करने वाला
प्रति	प्रति+	

भूषति

मदे

सोमस्य

पिप्रतोः

प्रति+भूषति पुनः

पुनरलङ्करोति

मदे

सोमस्य

पूरयतोः

(पृ पूरये)

संस्कृतार्थः ।

बार बार

अलङ्कृत करता है

मद में

सोम के

पूर्ण करने वालों के

स्तोता सोमस्य मदे पूरयतोरश्विनोस्तत्तद्रक्षणं
पुनःपुनरलङ्करोति ॥१२॥

भाषार्थः ।

स्तुति करने वाला सोम के मद में पूर्ण करने
वाले अश्विदेवताओं की उस उस रक्षा को बारबार
अलङ्कृत करता है ॥ १२ ॥

जैसे किसी मित्र को प्रदान की हुई यह मुख्य वस्तु को म-
नुष्य बारबार दूसरों के सामने सजाकर रखता है, इसी प्रकार
स्तोता सोम के आनन्द में अश्विदेवताओं की प्रदान की हुई प्रत्येक
रक्षा को बार बार मित्रों के सामने वर्णन करता है ॥

अश्विनौ देवते, गायत्रीछन्दः । ७।७।७ ॥

वावसानाविवस्वति सोमस्यपी-

त्यागिरा । मनुष्वच्छम्भूआगतम् ॥१३॥

वावसाना	निवासशीलौ (विभक्तोराकारः)	निवास करने वाले
विवस्वति	दीप्तिमति (आकाशे)	दीप्तिमान (आकाश) में
सोमस्य	सोमस्य	सोमके
पीत्या	पानार्थम्	पीने के लिए
गिरा	स्तुत्या	स्तुति से
मनुष्वत्	मनाविव (सप्तम्यर्थे वतिः)	जैसे मनु के पास
शम्भु०	हे सुखस्यभावयितारौ (पन्तर्भावितपर्याङ्ङुः)	हे सुखके देनेवालो
आ	आ +	-
गतम्	आ + गतम् आगच्छतम्	आओ

संस्कृतार्थः

हे दीप्तिमति (आकाशे) निवास शीलौ सुखस्यभावयितारौ (अश्विनौ!) (युवाम्) सोमं पातुं स्तुत्या मनाविव (अत्र) आगच्छतम् ॥ १३ ॥

भाषार्थः ।

हे दीप्तिमान आकाश में रहने वाले, सुख के

देने वाले (अश्विदेवताओ) (आप दोनों) सोम पीने
के लिए स्तुति करने से (यहां) आओ जैसे (पूर्व
काल में), मनु के पास (आते थे) ॥१३॥

अश्विनौ देवते गायत्रीछन्दः ८।८।८।

युवोरुषाअनुश्रियं परिज्मनोरुषा

चरत् । ऋतावनथो अक्तुभिः ।१४।

युवोः	युवयोः	तुम दोनों के
उषाः	उषाः	उषा
अनु	अनु	पीछे
श्रियम्	शोभाम्	शोभा को
परिज्म- नोः	परितोगन्त्रोः (अन्तर् मन्निनिपात्यते।	चारों ओर चलने वालों के
उपश्रि- चरत्	समीप अगच्छत	समीप आर्ड हें

ऋता	यज्ञान् (शेछोंपः)	यज्ञों को
वनथः	कामयेथे	आप दोनों
२ अक्तुऽभिः	रात्रिषु (सप्तम्यर्थे तृतीया) ससृष्टतार्थः ।	कामना करते हैं रात्रियों में

(हे अश्विनौ) परितो गन्त्रोर्युवयोः शोभामनु
(सृत्य)उपा अगच्छत् युवांरात्रिषु यज्ञान्कामये॥४॥
मापार्थः ।

(हे अश्विदेवताओ) चारों ओर चलने वाले आप
की शोभा के पीछे पीछे उपा आई है आप रात्रियों
में यज्ञों की कामना करते हो ॥ १४ ॥

(१) उत्तर मेरु समीपस्थ देशों में लम्बी रात्रि के अन्त में
पहले प्रकाशसे मिले हुए तम रूपी अदियदेवताः कईदिन तक भाषाश
में चारों ओर घूमते प्रतीत होते हैं फिर पीछे उपा की लाली प्रकट
होकर कई दिन तक घूमती दिखाई देती है ॥

(२) रात्रि के देवता होने से अदियदेव रात्रि में यज्ञ की का-
मना करते हैं ॥

अश्विनौ देवते गायत्रीछन्दः ८।८।८।

उभापिवतमश्विनो भानःशर्म

यच्छतम् । अविद्रियाभिरुतिभिः॥१५॥

उभा	उभौ	आप दोनो
पिवतम्	पिवतम्	पीओ
अप्रिवना	हे अश्विनौ	हे अश्विदेवताओ
उभा	उभौ	आप दोनों
नः	अस्मभ्यम्	हमारे लिए
शर्म	शरणम्	शरण को
यच्छतम्	दत्तम् (दानदाने, यच्छादेशः)	दो
{ अविद्रि- याभिः	विद्रः छिद्रः, तद्रहिताभिः	छिद्र रहितों से
ऊतिऽभिः	रक्षाभिः	रक्षाओं से

संस्कृतार्थः ।

हे अश्विनो ! उभौ (युवां सोमम्) पिवतम्,

उभौ (युवाम्) छिद्र रहिताभीरक्षाभिरस्मभ्यं शरणं
दत्तम् ॥ १५ ॥

भावार्थः ।

हे अश्विदेवताओ आप दोनों (सोम कों) पीवें
आप दोनों छिद्ररहित रक्षाओं से हमें शरण दें ॥ १५ ॥

इति षट् चत्वारिंशं सूक्तम् ।

ऋ० मं० १ सू० ४७ ।

अश्विनो देवते, कण्वपुत्रः प्रस्कण्व ऋषिर्वृहती
छन्दः । ८।८।१२।८।

अयं वांमधुमत्तमः सुतः सोमऋता
वृधा । तमश्विनापिवतंतिरो अङ्ग्य
धत्तरतनानिटाशुपे । १।

अयम्

अयम्

यह

वाम्

युवाभ्याम्

तुम दोनोंके लिये

मधुमत्सु तमः	अतिशयेनमाधु- र्यवान्	बहुत मिठास वाला
सुतः	निष्पीडितः	निचोड़ा हुआ
सोमः	सोमः	सोम
ऋतसुवधा तम्	हे ऋतस्यवर्धयि- तारौ ! (भन्तर्भावितण्यर्थः तम्	हे ऋत के बढ़ाने वालो उसको
अश्विना पिवतम्	हे अश्विनौ ! पिवतम्	हे अश्वि देवताओ पीओ
तिरः सु- क्लमम्	ह्यस्तनम्	कल वाले को
धत्तम्	धारतयम्	धारण करो
रत्नानि दाशुषे	रत्नानि दत्तवते	रत्नों को देने वालेके ताई

संस्कृतार्थः ।

हे ऋतस्य वर्धयिताराश्विनो ! अतिमाधुर्यवानय सोमो युष्मदर्थं निष्पीडितः, ह्यस्तनं (सुतम्) तम् (सोमम्) पिबतम् (हविः) दत्तवते रत्नानि (श्व) धारयतम् ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

हे ऋत के बढ़ाने वाले अश्विदेवताओ बहुत मिठास वाला यह सोम आप के लिए निचोड़ा गया है उस कलके (निचोड़े हुए सोम) को आप पीवें और (हवि) देने वाले के लिए रत्नों को धारण करें ॥१॥

यह सूक्त प्रातरनुष्ठाक में आग्नेय ऋतु के सार्हत छन्द में पढ़ा जाता है (आ० धौ० सू० ४।१५।२)

अश्विनो देवते, सतोवृहतीछन्दः । १२।८।१२।८

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुपिशसा रथे-

नायातमश्विना । कण्वासीवां ब्रह्म-

क्षणवन्त्यध्वरे तेषां सुशृणुतं हवम् । २।

त्रिऽवन्ध रेण	बन्धुराः नीडव न्धनाऽऽधारभूता. काण्ठविशेषाः, त्रयोबन्धुरायस्य तेन, त्रिरावृष्टितेन	पीढी वांधने के तीन डंडों से युक्त से
त्रिऽवृता		तीन लपेटे वालेसे
सुऽपेशसा रथेन	सुरूपेण(निघ०१७) रथेन	सुन्दर से रथ से
आ यातम्	आ+ आ+यातम्	- आओ
अश्रिवना	हे अश्रिवनौ !	हे अश्रिवदेवताओ
कणवासः	कणवाः	कणव वंशी
वाम्	युवाभ्याम्	तुम दोनोंके लिए
ब्रह्म	मन्त्ररूपस्तुनिम्	मन्त्ररूप स्तुति को

कृ॒ण्व॒न्ति	कु॒र्व॒न्ति (कविकारण)	करते हैं
अ॒ध्व॒रे	यज्ञे	यज्ञ में,
तेषा॑म्	तेषाम्	उनकी
सु	सु॒ष्टु	भली प्रकार
शृ॒णु॑न्तम्	शृ॒णु॑न्तम्	सुनो
हव॑म्	आ॒ह्वान॑म्	पुकार को

संस्कृतार्थः ।

हे अश्विनो! त्रिवन्धुरं त्रिरात्रेष्टितेन सुरूपेण रथेनाऽऽगच्छतम, कण्वा युवाभ्यां यज्ञे मन्त्ररूप स्तुतिं कुर्वन्ति, तेषामाह्वानं सुष्टु शृणुन्तम् । २ ।

भावार्थः ।

हे अश्विदेवताओपीदी बांधनेके तीन डडों से युक्त, तीन लपेटे वाले सुन्दर रथ से आओ, कण्व वंशी आप के लिए यज्ञ में मन्त्र रूप स्तुति को करते हैं उनका पुकार को भली रीति से सुनो ॥२॥

(१) त्रिवन्धुर और त्रिवृत की व्याख्या के लिए देखो पृ० ८५८ ।

अश्विनौदेवते, वृहती छन्दः ।८।८।१२।८।

अश्वि॑व॒ना॒मधु॑मत्त॒मं पा॒तं॑सीम॒मृता

वृ॒धा । अथा॒द्य॒द॒स्त्राव॑सु॒विभ्र॑तारथे

दा॒श्र॒वांसु॒मुप॑गच्छ॒तम् ।३।

अश्वि॑व॒ना	हे अश्विनौ !	हे अश्वि देवताओ
{ मधु॑मत्स तमम्	अति माधुर्य वन्तम्	बहुत मिठास वाले को
पा॒तम्	पिबतम्	पीओ
सी॒मम्	सोमम्	सोम को
च॒ट॒त॒वृ॒धा	हे ऋतस्यवर्ध यितारो (अन्तर्भावितण्यर्थ)	हे ऋतके बढाने वालो
अथ॑	अनन्तरम्	पीछे

अद्य	अद्य	आज
दत्ता	हे उग्रौ	हे भयानक (देवताओ)
वसु	धनम्	धन को
विभ्रता	धारयन्तौ (विभक्ते राकारः)	धारण करते हुए
रथे	रथे	रथ में
दाप्रवांसम्	(हविः) दत्तवन्तम्	(हवि) देने वाले को
उप	प्रति	की ओर
गच्छतम्	प्राप्नुतम्	प्राप्त हों

संस्कृतार्थः :

हे ऋतस्य वर्धयितारानुग्रावशिवनौ ! (युवाम्) अतिमाधुर्यवन्तं सोमं पिवतम्, अनन्तरमद्य रथे धनं धारयन्तौ (हविः) दत्तवन्तम् (यजमानम्) प्रति प्राप्नुतम् । ३।

भाषार्थः ।

हे ऋत के बढ़ाने वाले भयानक अश्विदेवताओ, आप दोनों बहुत मिठास वाले सोम को पीवें फिर आज रथमें धनको धारण करते हुए (हवि) देने वाले (यजमान) की ओर प्राप्त हों ॥ ३ ॥

अश्विनोदेवते, सतोबृहतीछन्दः । १२।८।१२।८

त्रिषधस्थेवर्हिषिविप्रववेदसा म-

ध्वायज्ञमि मिच्छतम् । कण्वासोवांसु-

तसोसात्रभिद्यवो युवांहवन्तेअ-

श्विना । ४।

त्रिऽसधस्थे	त्रिषु (स्थानेषु, सहावस्थिते (मह्यब्दस्यसधादेशः) दर्भे	तीन स्थानों में इकट्ठी रखी हुई पर कुशा पर
वर्हिषि	हेसर्वज्ञो !	हेसब कुछ जानने वाला
{ विप्रववे- दसा		
मध्वा	मधुरेण (रसेन)	मीठे (रस) से
यज्ञम्	यज्ञम्	यज्ञ को
मिमिच्छतम्	सेक्तुमिच्छतम्	सींचने की इच्छाकरो

कणवा॑सः	कणवाः	कणव॑वंशी
वा॒म	युवा॑भ्याम्	तुम॑ दोनों के लिए
सु॒तऽसो॑माः	सु॒तःसो॑मोयैस्ते	सोम॑ निचोड़े हुए
अ॒भि॒द्य॑वः	दि॒वो॒द्देशाः	दु॒लोक॑ के उद्देश वाले
यु॒वाम्	यु॒वाम्	तुम॑ दोनों को
ह॒व॒न्ते	आ॒ह्वय॑न्ते	बुलाते हैं
अ॒श्वि॒व॒ना	हे अ॒श्विनो॑	हे अश्वि॑देवताओ

सस्कृतार्थः ।

हे सर्वज्ञा वश्विनो! त्रिपु(स्थानेषु) सहाऽवस्थिते
दर्भे मधुरेण (रसेन) यज्ञंसेक्तुमिच्छन्म्, युवयोः
(निमित्तम्) सुतसोमा दिवोद्देशाः कणवा युवामाह्व-
यन्त ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

हे सव कुछ जानने वाले अश्वि देवताओ, तीन
स्थानोंमें इकट्ठी रखी हुई कुशा पर मीठे(रससे)यज्ञको

सींचनेकी इच्छा करो आपके(लिए)सोम निचोड़े हुए धुलोकके उद्देश वाले कण्ववंशी आपको बुलाते हैं ॥१॥

(१) वेदि पर पहले पश्चिम की ओर कुशा की एक तह बिछा कर कुशाओं के भ्रम्र भाग को उकास कर पूर्व की ओर दूसरी तह उनके नीचे बिछाई जाती है, फिर इन के भ्रम्र भाग को उकास कर तीसरी तह उस से पूर्व की ओर बिछाई जाती है, ऐसी कुशा पर अश्विदेव हमारे यज्ञ में मिठास को बरसायें ॥

(२) कण्ववंशी केवल इस लोक के सुम्य के लिए ही नहीं किन्तु परलोक के उद्देश से भी देवताओं को बुलाते थे ऐसे ही हमें भी करना चाहिए ॥

अश्विनौ देवते, बृहतीछन्दः । ८। ८। १२। ८।

याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं

युवमश्विना । ताभिः ष्वस्मँ अवतं-

शुभस्पती पातंसोममृतावृधा ॥१॥

याभिः	याभिः	जिनसे
कण्वम्	कण्वम्	कण्व को
{ अभिष्टि	परित्राणैः	सहायताओं से
ऽभिः	(आ०को०)	

प्र	प्र+	-
आव॑तम्	प्र+आव॑तम् प्रकर्षेणरक्षितन्तो	खूब रक्षा की थी
यु॒वम्	यु॒वाम्	आप दोनों ने
अ॒श्वि॒वना॑	हे अश्वि॒नों	हेअश्वि॒ देवताओ
ताभिः॑	ताभिः	उन से
सु॒	सु॒ष्टु	भली प्रकार
अ॒स्मान्	अ॒स्मान्	हम को
अ॒व॒त॒म्	रक्ष॑तम्	रक्षा करो
शु॒भः	शु॒भः +	-
प॒ती०	हे,शु॒भः+प॒ती ! हे सु॒कर्म॑णः पालकी	हे सु॒कर्म॑ के पाल॑ने वालो
पा॒त॒म्	पि॒च॑तम्	पीओ
सो॒मम्	सो॒मम्	सोम को

ऋतऽवृधा

हे ऋतस्त वर्ध-
यितारौ

(अन्तर्भावितण्यर्थः)

हे ऋतके बढ़ाने
वालो

संस्कृतार्थः ।

हे ऋतस्य वर्धयितारौ सुकर्मणः पालकावश्विनौ युवां धाभिः परित्राणोः कण्वं प्रकर्षेण रक्षितवन्तौ, ताभिरस्मान् सुष्ठुरक्षतम्, (अस्मद्दत्तम्) सोमम् (च) पिबतम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

हे ऋत के बढ़ाने वाले सुकर्म के पालने वाले अश्विदेवताओ जिन सहायताओं से आपने कण्व की खूब रक्षा की थी उनसे हमारी भली प्रकार रक्षा करो (और हम से दिये हुए) सोम को पीओ ॥५॥

अश्विनौ देवते, सतो बृहती छन्दः । १२।८।१२।८

सुदासँदस्त्रावसुविभ्रतारथे पृक्षो

वहतमश्विना । रयिसमुद्रादुतवा-

द्विस्पृष्ट्यँ स्मेधत्तंपुरुस्पृहम् ॥६॥

सु॒दा॒से	सुदासनाम्नेराज्ञे (व्यत्ययश्छान्दसः)	राजा सुदासके लिये
द॒स्त्रा	हे, उग्रो !	हे भयानक (देवताओ)
वसु॑	धनम्	धन को
विभ्र॑ता	धारयन्तौ	धारण करतेहुए
रथे॑	रथे	रथ में
पृ॒क्षः	अन्नम् (निघं०२।७)	अन्न को
व॒ह॒त॒म्	अवहनम् प्रापितवन्तौ (भडभावश्छान्दसः)	पहुंचाया
अ॒श्वि॒व॒ना	हे अश्विनो !	हे अश्विदेवताओ
र॒यि॒म्	धनम्	धन को
स॒मु॒द्रा॒त्	अन्तारक्षात् (निघं०२।३।)	अन्तरिक्ष से
उ॒त	उत +	-
वा	उत + वा	अथवा

दिवः	दिवः+परि, द्युलो कस्य सकाशात् (आ०को०)	द्युलोक से
परि	+परि	
अस्मै	अस्मासु	हम में
धत्तम्	स्थापयतम्	स्थापन करो
पुरुऽस्पृहम्	बहुभिः स्पृहणीयम्	बहुतों से इष्ट को

संस्कृतार्थः ।

हे उग्रावश्विनौ! (युवाम्) रथे धनं धारयन्तौ (यथा) सुदासे (राज्ञे) अन्नं प्रापितवन्तौ (तथैव) अन्तरिक्षाद् द्युलोकाद्वा (आहृत्य) बहुभिः स्पृहणीयं धनमस्मासु स्थापयतम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः ।

हे भयानक अश्विदेवताओ रथमें धन को धारण कर आपने (राजा) सुदास के लिए अन्न पहुँचाया (वैसेही) अन्तरिक्ष अथवा द्युलोक से (लाकर) बहुतों से इष्ट धन को हम में स्थापन करो ॥ ६ ॥

सुदास राजा, दियोदास के पुत्र भार्य्य जाति के एक प्राचीन राजा थे, जिन्होंने इंद्र की सहायता से अपने अनार्य्य शत्रुओं को जीता था। यह बहुत दानी और प्रतापी राजा थे। इन की विजय और दान का वृत्तान्त अ० ७। १८ में वर्णन किया है।

अश्विनो देवते, बृहती छन्दः । ८। ८। १२। ८।

यन्नासत्यापरावति यद्वास्थो-
अधितुर्वशे । अतोरथेनसुवतान्पा
गतं साकंसूर्यस्यरश्मिभिः । ७।

यत्
नासत्या

परावति

यत्

वा

स्थः

अधि

तुर्वशे

अतः

यदि

हे, अनृतरहितौ

दूर देशे
(निघ०।३।२६)

यत्+

यत्+वा

स्थः

अधि+

अधि+तुर्वशे
समीपे(निघ०।२।१६)

ततः (भा०को०)

यदि

हे झूठ से रहित

दूरमें

-

अथवा

हो

-

समीप में

वहां से

रथेन	रथेन	रथ से
सुवृता	सुवर्त्तमानेन	हलके घूमनेवाले से
नः	अस्मान् (प्रति)	हमारे (समीप)
आ	आ+	-
गतम्	आ + गतम् आगच्छतम् (शपोलुक्)	आओ
साकम्	सह	साथ
सूर्यस्य	सूर्यस्य	सूर्य के
रश्मिभिः	किरणैः	किरणों से

सस्कृतार्थः ।

हे अनृत रहितो ! (अश्विनो! युवाम्) यदि दूरे,
यद्वा समीपे स्थः, ततः सूर्यस्य किरणैः सह सु-
वर्त्तमानेन रथेनाऽस्मान्प्रत्यागच्छतम् ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

हे झूठ से रहित (अश्विदेवताओ) आप यदि

दूर हों अथवा समीप हों सूर्य की किरणों के सहित
हलके घूमने वाले रथ से हमारे समीप आवें ॥७॥

सूर्य की किरणें "सय देवता" हैं (देखो श०ब्रा० ३।१।२।२)
और प्रत्यक्ष हमारे पास चुलोक से आती हैं, अश्विदेवता भी उन
किरणों के साथ हमारे पास आवें ॥

अश्विनौदेवते, सतोवृहतीछन्दः ।१२।८।१२।८

अर्वाञ्चवा॑वा॒स॒प्त॒योऽ॒ध॒वर॒श्रि॒यो

व॒ह॒न्तु॒स॒व॒ने॒दु॒प॑ । इ॒षं॑पृ॒ञ्च॒न्ता॒सु-

कृ॒ते॒सु॒दान॑व॒ आव॒र्हि॑सी॒द॒तं॒न॒रा॑ ।८।

अर्वाञ्चा-	अर्वाञ्चा +	-
वाम्	युवाम्	तुम दोनों को
सप्तयः	अश्वाः (निघं० १।४)	घोड़े
{ अध्वरऽ-	यज्ञं प्रति गच्छन्तः	यज्ञ की
{ श्रियः	धिष् गती गा०को०)	ओर जाने वाले

वहन्तु	अर्वाञ्चा+वहन्तु अभिमुखमान- यन्तु	सामने ले आ
सवना	सोमोत्सवान् (येर्लोपः)	सोम के उत्सवों को
इत्	पूरणः	-
उप	उप(लक्ष्य)	लक्ष रख कर
इषम्	बलम्	बल को
पृञ्चन्ता	सयोजयन्तौ (पृचीसम्पर्के, विभक्तौ राकारः)	संयुक्त करते हुए
सुऽकृते	सुकर्मकारिणे	सुकर्म करनेवाले के लिए
सुऽदानवे	सुष्टुदानयुक्ताय	बड़े दानी के लिए
आ	आ +	-
वर्हिः	दर्भे (षप्तम्यर्थे द्वितीया)	कुशा पर
सीदतम्	आ+सीदतम्, उपविशतम्	बैठो

नरा | हे नरौ ! | हे नरो

संस्कृतार्थः ।

हे नरौ ! यज्ञं प्रतिगच्छन्तोऽश्वाः सोमोत्सवानुप
(लक्ष्य) युवामभिमुखमानयन्तु सुकर्मकारिणे सुष्ठु
दानयुक्ताय(यजमानाय)बलं सयोजयन्तौ(युवाम्)दर्भे
पूपविशतम् ॥ ८ ॥

भाषार्थः ।

हे नरो यज्ञ के प्रति जाने वाले घोड़े, सोम के
उत्सवों को लक्ष करके आप को (हमारे) सामने ले
आवें, भले कर्म और बहुत दान से युक्त (यजमान
के) लिए बल को संयुक्त करते हुए आप कुशाओं पर
वैठें ॥ ८ ॥

अश्विनो देवते, वृहतीछन्दः । ८। ८। १२। ८।

तेननासत्यागतं रथेनसूर्य्यैवचा ।
येनशप्रवदूहयुर्दाशुषेवसु मध्वःसी-
मस्यपीतये । ९।

तेन	तेन	उससे
नासत्या	हे, अनृतरहितौ	हे झूठ से रहित
आ	आ+	-
गतम्	आ + गतम् आगच्छतम्	आओ
रथेन	रथेन	रथ से
{ सूर्योऽत्व चा	सूर्योऽवत्वग्यस्य तेन	सूर्य रूपी चर्म वाले से
येन	येन	जिससे
अनन्तरम्	अनन्तरम्	निरन्तर
अह्वयः	प्रापितवन्त	प्राप्त कराया है
दाशुषे	(हवि.) दत्तवते	(हवि) देने वाले के लिए
वसु	धनम्	धनको
मधुवः	मधुरस्य	मीठे के

सोमस्य	सोमस्य,	सोम के
पीतये	पानार्थम्	पीने के लिये

सस्यतार्थः ।

हे अनृत रहितौ ! (अश्विनौ!) सूर्यरूपत्वयुक्तेन येन रथेन (हविः) दत्तवत्ते (यजमानाय) निरन्तरं धनं प्रापितवन्तौ, तेन मधुरस्य सोमस्य पानार्थम् (इह) आगच्छतम् ॥ ९ ॥

भाषार्थः ।

हे झूठ से रहित (अश्विदेवताओ) सूर्य रूपी चर्म से युक्त जिस रथ से आपने (हवि) देने वाले (यजमान के लिए) निरन्तर धन को प्राप्त कराया है उससे मीठे सोम के पीने के लिए (यहां) आओ ॥९॥

(१) अश्विदेवताओं का ज्योति निर्मित रथ सूर्य रूपी चर्म से घेष्टित है । वास्तव में इस पृथिवी पर सारी महिमा सूर्य की ही है, वही देवताओं का उत्पादक, वही उन का रथ, वही घोड़ा, वही मस्त्र, और उसी की किरणें सब देवता हैं ॥

अश्विनोदेवते, सतोवृहतीछन्दः ।१२।८।१२।८।

उक्थेभिरर्वागवसेपुरुवसू अर्के
प्रचनिह्वयामहे । शश्वत्करवानांस

दसिप्रियेहिं॑कं सोमं॑पपथु॑रश्वि॒वना॑॥१०॥

उ॒क्थेभिः॑	शस्त्रैः	होता से की हुई
अ॒र्वाक्	सम्मुखं यथास्या त्तथा	स्तुतियों से सामने से
अ॒वसे॑	रक्षणाऽर्थम्	रक्षा करने लिये
पू॒रुऽवसू॑	हे प्रभूत धनो	हे बहुत धनवालो
अ॒र्कैः	स्तोत्रैः	उद्गाता से की हुईस्तुतियों से
च	च	और
नि	नि+	-
ह्व॒याम॒हे	नि + ह्वयामहे, नितरामाह्वयामः	हमवार२ पुका- रते हैं
श॒श्वत्	नित्यम्	सदा
क॒ण्वानाम्	कण्वानाम्	कण्व वंशियों की
स॒दसि॑	सभायाम्	सभा में

प्रि॒ये॒	प्रि॒ये	प्रि॒य मे॒
हि॒	प्रसिद्धौ	यह प्रसिद्ध है
क॒म्	(पूरणः)	-
सो॒म॒म्	सोमम्	सोम को
प॒प॒थुः	पीतवन्तौ	पीआ हे
अ॒प्रि॒व॒ना	हे अश्विनौ	हे अश्विदेवताओ

संस्कृतार्थः ।

हे प्रभूतधनावश्विनौ ! (वयम्) शस्त्रैः स्तोत्रैश्च
(युवाम्) रक्षणाऽर्थं पुनःपुनः सम्मुखमाह्वयामः
(युवाम्) कण्वानां प्रिये सदसि सर्वदा सोमं पीतवन्ता
विति प्रसिद्धम् ॥ १० ॥

भाषार्थः ।

हे बहुत धन वाले अश्विदेवताओ, हम शस्त्र
और स्तोत्रों से (आप को) रक्षा के लिए बार बार
सामने बुलाते हैं, कण्ववंशियों की प्यारी सभा में
आप ने सदा सोम पान किया है, ऐसा प्रसिद्ध है १०

इसलिए आशा है कि भय नो भाप हम कण्ववंशियों का
परित्याग नहीं करेंगे ॥

इति सप्त चत्वारिंशं सक्तम् ॥

ऋ० मं० १ सू० ४८

उपोदेवता प्रस्कणवद्भृषिर्वृहतीछन्दः । ८। ८। १२। ८

सहवामेननउपो व्युच्छादुहि-
तदिवः। सहद्युम्नेनवृहताविभावरि
रायादेविदास्वती । १।

सह	सह	साथ
वामेन	प्रशस्येन (निघ० ३। ८)	प्रशंसाके योग्य से
नः	अस्मान्	हम को
उपः	हे उपः	हे उपा
१ वि	वि +	-
१ उच्छ	वि + उच्छ, आविर्भव	प्रकट हो
दुहितः	हे पुत्रि !	हे पुत्री

दिवः	द्युलोकस्य	द्युलोक की
सह	सह	साथ
द्यम्नेन	यशसा (निघं०४१२)	यश से
बृहता	महता	बड़े से
विभाऽवरि	हे विशेष दीप्ति युक्ते	हे विशेष दीप्ति वाली
राया	धनेन	धन से
देवि	हे देवि	हे देवी
दास्वती	दानवती	दानवती

संस्तरार्थः ।

हे द्युलोकस्य पुत्रि ! विशेष दीप्ति युक्ते ! उपः !
अस्मदर्थं प्रशस्येन (भोगेन) सह महता यशसा धनेन
(च) सह दानवती (त्वम्) आविर्भव । १ ।

मायार्थः ।

हे द्युलोक की पुत्री, विशेष दीप्ति वाली उपा

हमारे लिये प्रशंसा योग्य(भोग)के साथ वडेयश(और)
धन के साथ दानवती (आप) प्रकट हों ॥ १ ॥

यह सूक्त प्रातरनुवाक में उपस्थित के वाहंत छन्द में पढ़ा
जाता है (आ० श्रौ० सू० ४। १४। २)

(१) 'व्युच्छ' का अर्थ उपा की लालीका खिलना या फूटना है
(२) प्रकाश का दान देने वाली उपा हमारे लिए प्रति दिन महान्
यश धन और ऐसे भोग जो भार्य्य जनों में प्रशंसा के योग्य हो
लाती हुई खिलें ॥

उपोदेवता, सतोवृहतीछन्दः॥ १२।८।१२।८

अप्रवावतीर्गोमतीर्विप्रवसुविदो
भूरिच्यवन्तवस्तवे । उदीरयप्रति-
मासूनताउष प्रचोदराधोमघोनाम् ।

अप्रवऽवतीः	अश्वैरुपेताः	अश्वों से युक्त
गोऽमतीः	गोभिर्युक्ताः	गोओं से युक्त
{ विप्रवऽसु	कृत्स्नस्यसुष्ठु-	सब को खूब
विदः	वेऽयः	जानने वालीं

भूरि	बहुवारम्	बहुत, बार
च्यवन्त	प्राप्तवत्यः (च्युडगतौ, षडभावाः)	प्राप्त हुई
वस्तवे	निवासाय (तवेन प्रत्ययः)	निवास के लिये
उत्	उत्+	-
इरय	उत्-इरय, ब्रूहि	कहो
प्रति	प्रति	प्रति
ना	नाम् ।	मुझ को
तनताः	प्रियसत्यवाचः	प्रिय और सत्य वचनों को
उपः	हे उपः	हे उपा
चोद	प्रेरय	प्रेरण करो -
राधः	धनम् (निघं० २।१०)	धन को
सघोनाम्	धनवत्. (द्वितीयाथे षष्ठी)	धनवानों को

संस्कृतार्थः ।

अश्वै गौाभः (च) युक्ता सर्वस्य सुष्ठु वेद्यः
(उपसोऽस्माभिःसह) निवासार्थं बहु वारं प्राप्ता अभ
वन् हे उषः ! माम्प्रति प्रियसत्य वाचः कथय धनवतः
(प्रति) धनम् (च) प्रेरय ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

घोड़े (और) गौओं से युक्त, और सब कों खूब
जानने वाली (उपाएं हमारे साथ) निवास के लिये
बहुत बार प्राप्त हुईं, हे उषा मेरे ताईं प्रिय और
सत्य वचन कहो (और) धनियों (की ओर) धन को
प्रेरण करो ॥ २ ॥

(१) हम घोड़े से मनुष्यों को अधूरत सा जानते हैं, परन्तु
उषा सब को खूब जानती हैं, ऐसी गौ और घोड़ों घाली गत
उपाओं ने हमारे साथ बहुत बार निवास किया है। आज की उषा
उद्य होकर

(२) मुझ स्तुति करनेवाले के लिए सत्य और प्रिय वचनों को
कहे। मैं मनुष्यों की अप्रिय और असत्य वाणियों को न सुनूं ॥

(३) हमारी जाति के धनिकों की ओर उषा धन को प्रेरण
करे, जिस से उन के धन की सदा वृद्धि होती रहे ॥

उपोदेवता, निचृद्बृहतीछन्दः । ८। ७। १२। ८

उवासीपाउचछाचनु देवीनी-

रथानाम् । ये अस्या अचरणेषु द-
धिरि समुद्रे न श्रवस्यवः । ३ ।

उवास	निवासमकरोत्	निवास करती थी
उषाः	उषाः	उषा
उच्छात्	आविर्भवेत् (लेटघाडागमः)	प्रकट हो
च	अपि	भी
न	इदानीम् (भा०को०)	अब
देवी	देवी	देवी
जीरा	प्रेरयित्री (सषतेरक्, ईकारान्त देशश्च)	प्रेरण करने वाली
रथानाम्	रथानाम्	रथों के
ये	ये	जिन्हों ने
अस्याः	अस्याः	इसके

आऽचरणेषु	आगमनेषु	आगमनों में
दध्निरे	धृतवन्तः	लगाया है
समुद्रे	समुद्रे	समुद्र में
न	इव	की न्यांई
श्रवस्यवः	श्रवोधनं तदात्मन इच्छन्ति ते, धना ऽभिलाषिणः	धन की इच्छा करने वाले

संस्कृतार्थः ।

उपाः (पुराऽस्मत्समीपे) निवासमकरोत् रथानां प्रेरायत्री (सा) देवी दानीमप्याविर्भवेत् ये (वयं) अस्या आगमनेषु (मनः) धृतवन्तः, यथा धनाऽभिलाषिणः समुद्रे (मनो धारयन्ति) ॥३॥

मापार्थः ।

उपा (पूर्वकाल में हमारे पास) निवास करती थी रथों को प्रेरण करने वाली (वह) देवी आज भी प्रकट हो । जो (हम) उसके आगमन में (मन को) लगाए हुए हैं, जैसे धन की इच्छा करने वाले समुद्र में (मन को लगाते हैं) ॥ ३ ॥

(१) उपा के फटने पर यात्रा के निमित्त यात्री लोग रथ जोड़ते हैं इसलिए उपा रथों की प्रेरक है ॥

(२) जैसे धन की इच्छा करने वाले समुद्र में चित्त लगाते हैं कि कब हमारे जहाज जो परदेशों में माल लेकर गए हुए हैं धन से भरे हुए लौटेंगे ऐसे ही हम भी उपा के फटने की कई दिन से प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥

उषोदेवता, विराट् सतोवृहतीछन्दः । ११।८।१२।७

उषो॒यि॒ते॒प्र॒या॒मि॒षु॒यु॒ञ्ज॒ते॒ म॒नो॒दा॒-

ना॒य॒सू॒र॒यः॑ । अ॒त्रा॒ह॒त॒त्क॒ण॒व॒ए॒षां

क॒ण॒व॒त॒मो॑ ना॒म॒गु॒णा॒ति॒नु॒णाम् ॥४॥

उषः

हे उषः

हे उपा

ये

ये

जो

ते

तव

तेरे

प्र

प्र+

-

यामेषु

आगमनेषु

आने पर

यञ्जते

प्र+युञ्जते

लगाते हैं

मनः	मनः	मन को
दानाय	दानाय	दान के लिए
सूरयः	स्तोतार (मिघ० १।१६)	स्तुति करने वाले
अत्र	अस्मिन् (काले)	इस (समय) में
अह	प्रशसया	प्रशंसा के साथ
तत्	तत्+	-
कण्वः	कण्व	कण्व
एषाम्	एषाम्	इनके
कण्वऽतमः	कण्वानांज्येष्ठः	कण्ववंशियों में सब से बड़ा
नाम	तत्+नाम	उस नाम को
गणाति	उच्चारयति	उच्चारण करता है
नृणाम्	नराणाम्	नरों के

संस्कृतार्थः ।

हे उपः, तवाऽऽगमनेषु ये स्तोतारो दानाय मनः
प्रयुञ्जते तेषां नराणां तन्नामं कण्वानां ज्येष्ठः कण्वो
ऽस्मिन् काले प्रशंसयोच्चारयति ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

हे उपा, आपके आने पर जो स्तोता लोग दान
के लिए मन को लगाते हैं उन नर, (वीरों) के उस
(लोक प्रसिद्ध) नाम को कण्वों में सबसे बड़ा कण्व
इस समय प्रशंसा के साथ उच्चारण करता है ॥४॥

ऋषि कहते हैं कि कण्ववंशियों में सबसे ज्येष्ठ में उन स्तुति
करने वाले महापुरुषों के नाम प्रशंसा के साथ उच्चारण करता
है जो प्रभात के समय दान में चित्त को लगाते हैं ॥

उषो देवता, बृहती छन्दः । ८। ८। १२। ८

आघायोपैवसूनर्यु षायति प्रभु-
ञ्जती । जरयन्ती वृजनं पद्मदीयत्
उत्पातयति पक्षिणः ॥ ५ ॥

आ

आ +

घ	खलु	सचमुच
१ योषाऽद्भुव	एहणीव	घरवाली को न्याई
सूनरी	सु(मार्गेण) नेत्री	अच्छे(रस्ते)चलाने वाली
उपाः	उपाः	उपा
याति	आ+याति	आती है
{ १ प्रऽभुञ्ज ती	प्रकर्षेणपालयन्ती (भुजपातने)	उत्तमता से पा- लती हुई }
२ जरयन्ती	जरां प्रापयन्ती	बुढापे को प्राप्त कराती हुई
२ वृजनम्	जङ्गमम् (पा० क्र०)	चलने वाले को
१ पत्ऽवत्	पादयुक्तम्	पैरों से युक्त को
२ ईयते	प्रेरयति (अन्तर्भावितपर्ययः)	प्रेरण करती है
१ उत्	उत्+	-

१ पातयति	उत्+पातयति	उड़ाती है
१ पक्षिणः	पक्षिणः	पक्षियों को

संस्कृतार्थः ।

सु(मार्गेण)नेत्र्युषा गृहणीत्र प्रकर्षेण पालयन्ती
जङ्गमं जरां प्रोपयन्त्याऽऽयाति(सा) पादयुक्तं(प्राणि-
जातंस्वकर्मणि) प्रेरयति पक्षिणः(च) उत्पातयति ॥५॥

भाषार्थः ।

अच्छे (रस्ते) चलाने वाली उषा घर वाली
की न्याईं उत्तमता से पालती हुई, चलने वाले
(जीवों) को बुढ़ापा प्राप्त कराती हुई आती है वह
पैरों वाले (प्राणिसमूह को अपने कर्म में) प्रेरण
करती है (और) पक्षियों को उड़ाती है ॥ ५ ॥

(१) उषा सुघडस्त्री की न्याईं सब का पालन करती हुई
आती है वह देवी हमारा भी पालन करेगी ॥

(२) प्रत्येक उषा के फटने पर जङ्गम जीव बुढ़ापे की ओर
सरकते जाते हैं, इस लिए हमें प्रत्येक पौ फटने पर परलोक साधन
के लिए ध्यान आना चाहिए ॥

(३) उषा के फूटने पर पैरों वाले पशु और मनुष्य चलने
और पक्षी उड़ने के लिए चेष्टा करते हैं ॥

उषोदेवता, सतोवृहतीछन्दः । १२।८।१२।८।

वि॒यासृ॒जति॑ सम॒नं॒ व्य॑श्चि॒नः॑ । प्रे-
दं॒ नवे॒त्योद॑ति । व॒यो॒नकि॑ष्टेप॒ष्टि-
वां॑स॒त्रास॑ते व्यु॒ष्टौ॑वाजिनीवति । ६।

वि	वि+	-
या	या	जो
सृजति	वि + सृजति, प्रेरयति	प्रेरण करती है
समनम्	सङ्ग्रामम् (निघ० २।१७)	युद्ध को
वि	वि + (सृजति) प्रेषयति	भेजती है
अर्थिनः	कार्यवतः	काम वालों को
पदम्	स्थानम्	स्थान को

न	न	नहीं
वेति	कामयते	कामना करती है
ओदती	प्रवहन्ती (उन्दीक्षग्णे)	वेग से चलती हुई
वयः	पक्षिणः	पक्षी
नकिः	न	नहीं
ते	तव	तेरे
पप्तिऽवांसः	पतनशीलाः (पल्लगती)	उडने वाले
आसते	आसते	बैठते हैं
विऽउष्टी	आविर्भावे	प्रकट होने पर
वाजिनीऽ- वति	हे अन्नबहुले (क्र०१।३।१०)	हे बहुत अन्नवाली

संस्कृतार्थः ।

पा(उपाः)सङ्ग्रामं प्रेरयति कार्प्यवतः(च स्वकर्मणि)

प्रेषयति (सा) प्रवहन्ती(सती विश्राम-)स्थानं नेच्छति
हे अन्न बहुले ! तत्राऽऽविभावि पतनशीलाः, पक्षिणः
(स्वनीडेषु) नाऽऽसते ॥ ६ ॥

भाषार्थः ।

जी (उपा) सङ्ग्राम को प्रेरण करती है (और)
काम वालों को (अपने काम पर) भेजती है (वह)
वेग से चलती (हुई विश्राम) स्थान को नहीं चाहती
हे बहुत अन्न वाली आपके प्रकट होने पर उड़ने
वाले पक्षी (अपने घोंसलों में) नहीं बैठते ॥६॥

(१) रात्रि के समय युद्ध भी बन्द होजाते हैं और पौ फटने
पर फिर आरम्भ होते हैं ॥

(२) जल के प्रवाह को न्याई उपा विश्राम को नहीं चाहती
किन्तु बराबर चलती रहती है और धारी धारी सब देशों में
प्राप्त होकर बहा के रहने वाले जीवों को जग कर अपने अपने
काम में प्रेरण करती है ॥

उपोदेवता, बृहतीछन्दः । ८।८।१२।८

एषायुक्तपरावतः सूर्यस्योदय-

नादधि । शतरथेभिः सुभगोषाड्यं

वियाह्यभिमानुषान् ॥७॥

एषा	एषा	इस ने
अयुक्त	योजितवती	जोडा है
पराऽवतः	दूर (देशे) नि०३।२६)	दूर
सूर्यस्य	सूर्यस्य	सूर्य के
{ उतऽअय- नात्	उदयनात्+आध उदेत्यत्रेत्युदयनं तस्माद् उदयस्था नात् (अधिकरणेऽप्युट)	उदय स्थान से
अधि	अधि +	-
१ शतम्	शतैः (द्वितीयार्थे प्रथमा)	सौ से
२ रथेभिः	रथैः	रथों से
सुऽभगा	सौभाग्यवता	सौभाग्य वाली
उषाः	उषाः	उषा

इयस्	इयम्	यह
वि	वि+	-
याति	वि + याति, प्रयाणं करोति	गमन करती है
अभि	प्रति	की ओर
मानुषान्	मानुषान्	मनुष्यों को

संस्कृतार्थः ।

एषा सूर्यस्योदयस्थानाद्दूरदेशे(स्थान्) योजित
वती, इयं सोभाग्यवत्युषा मनुष्यान् प्रति शते रथैः
प्रयाणं करोति ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

इसने सूर्य के उदय स्थान से दूर देश में (रथों
को) जोड़ा है यह सोभाग्य वाली उषा सौ रथों से
मनुष्यों की ओर गमन करती है ॥ ७ ॥

(१) सोभाग्यवती उषा सूर्य के उदय स्थान से दूर देश में
रथों को जोड़ कर लाल और सुनहरी प्रकाश रूपी सैंकड़ों रथों
से मनुष्यों के प्रति आती है ॥

जो मरुतों के समय में पड़े सोते रहते हैं उनका भाग्य
कैसे उदय हो सकता है ॥

उपोदेवता, सतोवृहतीछन्दः । १२।८।१२।८॥

वि॒श्व॑म॒स्याना॑नाम॒ चक्ष॑से॒ जग॑
ज्ज्योति॑ष्क॒णोति॑सू॒नरी॑ । अप॒क्षे॑षी
म॒घोनी॑दु॒हित्वादि॒व उ॒षाउ॑च्छ॒दप॑-
स्त्रि॒धः । ८॥

वि॒श्व॑म्	सर्वम्	सम्पूर्ण
अ॒स्याः	अस्याः	इसके
१ न॒ना॒म	ननाम	झुका है
१ चक्ष॑से	दर्शनाय	दर्शन के लिये
जग॑त्	जगत्	जगत्
ज्योतिः॑	प्रकाशम्	प्रकाश को
कृ॒णोति॑	करोति(कृषिकरणे)	करती है

सूनरी	सु(मार्गेण)नेत्री	अच्छे (रस्ते) चलाने वाली
अप	अप+	-
२ द्वेषः	द्वेष्टृन्	द्वेष रखने वालों को
मघोनी	धनवती (घममितिधन् नाम निघ०२।१०।)	धन वाली
दुहिता	पुत्री	पुत्री
द्विवः	द्विलोकस्य	द्विलोक की
उषाः	उषाः	उषा
२ उच्छृत्	अप+उच्छृत् निराकुर्यात् (अन्तर्भावितप्रथमः, (लिङ्गैलङ्)	दूर करे
अप	अप+उच्छृत् नवारयेत्	हटावे
स्त्रिधः	हिसकान् (त्रिधहिसायाम्)	पीड़ा देने वालों को

सस्वृत्तार्थः ।

सर्वं जगदस्यादर्शनाय ननाम,सु (मार्गेण)

नेत्री (सा देवी) प्रकाशं करोति, द्युलोकस्य पुत्री धनव-
त्युपाः (अस्माकम्) द्वेष्टृन्निराकुर्व्यात् हिंसकान्(च)
निवारयेत् ॥८॥

भाषार्थः ।

सारा जगत् इसके दर्शनके लिए झुका है, सु(मार्ग)
में ले चलने वाली (यह देवी) प्रकाश को करती है, द्यु-
लोककी पुत्री धन वाली उपा (हमसे) द्वेष रखने वालों
को दूर करे (और) हमें पीड़ा देने वालों को हटावे ॥८॥

(१) ज्युं ज्युं पृथिवी (अपनी दैनिक गति में) पूर्व की ओर
झुकती है त्यों त्यों पृथिवी के नाना देशों में क्रम से उपा का दर्शन
होता है ॥

(२) हम सब नित्यप्रति पौ फटने पर उपासना किया करें
तीं शीघ्र हम से द्वेष रखने वालों और हमें पीड़ा देने वालों का
नाश हो जावे ॥

उपोदेवता, बृहतीछन्दः । ८। ८। १२। ८॥

उप॒आभा॑हि॒भानु॑ना च॒न्द्रेण॑दु-
हित॑र्दिवः । आव॑हन्ती॒भूर्य॑स्मभ्यं-
सौ॒भगं॑ व्युच्छन्ती॒दिवि॑ष्टिषु । ९॥

उपः	हे उपः	हे उपा
आ	समन्तात्	चारों ओर से
भाहि	प्रकाशस्व	चमको
भानुना	प्रकाशेन	प्रकाश से
चन्द्रेण	आल्हादकेन	आनन्द देने वाले से
दुहितः	हे पुत्रि !	हे पुत्री
दिवः	द्युलोकस्य	द्युलोक की
{ आवह- न्ती	आनयन्ती	लाती हुई
भूरि	प्रभूतम्	बहुत
अस्मभ्यम्	अस्मभ्यम्	हमारे लिये
सौभागम्	सौभाग्यम् (उत्तरपदबुद्धयभावशला दसः)	सौभाग्य को

वि॒ऽउ॒च॒क्क॒ न्ता	आवि॒र्भव॑न्ती	प्रक॑ट होती हुई
दि॒वि॒ष्टि॒षु	यज्ञेषु (ऋ१।४५।७)	यज्ञों में

संस्कृतार्थः ।

हे द्युलोकस्य पुत्री ! हे उपः ! अस्मभ्यं प्रभूतं सौभाग्यमानयन्ती (अस्माकम्) यज्ञेषु (च) आविर्भवन्ती (त्वम्) आल्हादकेन प्रकाशेन समन्तात् प्रकाशस्व ॥ ९ ॥

भाषार्थः ।

हे द्युलोक की पुत्री ! हे उषा ! हमारे लिए बहुत सौभाग्य को लाती हुई (और हमारे) यज्ञों में प्रकट होती हुई (आप) आनन्द देने वाले प्रकाश से सब ओर चमकें ॥ ९ ॥

उपोद्देवता, सतोबृहतीछन्दः ।१२।१।१२।१॥

वि॒प्र॒व॒स्य॑हि॒प्रा॒ण॑न॒जी॒व॑न॒त्वे वि॒
यद॑च्छ॒सि॑सूनरि । सानो॒रथे॑नबृह॒ता
र॒वि॒भा॒वरि॑ शु॒धि॒चि॒त्राम॑घे॒हव॑म् ।१०।

वि॒प्र॒व॒स्य	सर्वस्य	सम्पूर्ण के
हि	एव	ही
प्रा॒ण॒न॒म्	चेष्टनम्	चेष्टा करना
जी॒व॒न॒म्	जीवनम्	जीवन
त्वे०	त्वयि	तुझ में
वि	वि +	-
यत्	यत्	जो
उ॒च्छ॒सि	वि+उच्छसि	प्रकट होती हैं
सू॒न॒रि	आविर्भवसि	
सा	हे सु(मार्गेण)	हे सु(मार्गसे) ले
नः	नेत्रि!	चलने वाली
रथे॑न	सा	वह
बृ॒ह॒ता	अस्मान्	हम को
	रथेन	रथ से
	महता	बड़े से

विभाऽवरि	हे विशेष दीप्ति युक्ते	हे विशेष दीप्ति वाली
श्रुधि	शृणु	सुनो
चित्रऽमघे	हे विचित्र धनवति	हे अनेक प्रकार के धन वाली
हवम्	आह्वानम्	पुकार को

संस्कृतार्थः ।

हे सु (मार्गेण) नेत्रि ! यत् (त्वम्) आविर्भवसि, (तस्मात्) त्वय्येव सर्वस्य चेष्टनं जीवनं (च वर्तते) हे विशेष दीप्ति युक्ते ! हे विचित्र धनवति ! सा (त्वम्) अस्मान् (प्रति) महता रथेन (आगत्यास्मदीयम्) आह्वानं शृणु ॥१०॥

भाषार्थः ।

हे सु (मार्ग से) ले चलने वाली ! जो आप प्रकट होती हैं (इससे) आपमें ही सब की चेष्टा और जीवन है, हे विशेष दीप्ति वाली, हे अनेक प्रकार के धनवाली, वह (आप) हमारी ओर घड़े रथ से (आकर हमारी) पुकार को सुनें ॥ १० ॥

(१२०१) क्र० सं० १२०४८ सं० ११

उपोदेवता, बृहतीछन्दः । ८।८।१२। ८

उपो॑वाजं॑हि॒वंस्व॒ यश्चि॒चो॒मानु॑-
 षे॒जने॑ । तेना॑व॒हसु॒कृतो॑अ॒ध्वरा॑उप॒
 येत्वा॑गृ॒णन्ति॒वक्त्र॑यः ॥११॥

उपः ;	हे उपः!	हे उपा
वाजम्	अन्नम्	अन्न को
हि	खलु	सचमुच
वंस्व	कामयस्व (भा०को)	कामना करो
यः	य.	जो
चिचः	विविधरूपः	नाना प्रकार का
मानुषे	मानुषे+	-
जने	मानुषे+जने मनुष्य समूह	मनुष्यों में

नापार्थः ।

हे उषा मनुष्यों में जो नाना प्रकार का अन्न (है) उसकी कामना करो, उससे जो (हवि के) पहुँचाने वाले (ऋत्विज्) आपकी स्तुति करते हैं, उनको सुकर्म करने वाले के यज्ञों की ओर लाओ ॥११॥

१) उषा हमारे हविरूप अन्नों से प्रसन्न होकर अपने स्तुति करने वाले देव मत्त ऋत्विजों को हमारे यज्ञों की ओर प्रेरण करे जिससे हमारे यज्ञ अच्छी प्रकार सिद्ध हों ।

उषोदेवता, सतोवृहतीछन्दः । १२।८।१२।८

वि॒श्वान् दे॒वाँ आ॒व॒ह॒सी॒मपी॒तये
 ऽन्त॑रि॒क्षादु॒ष॒स्त्वम् । सा॒स्मासु॒धा
 गो॒मद॒श्व॒वा॒वदु॒कथ्य॑ १ मु॒षी॒वाजं॑ सु॒वी॒-
 र्यम् ॥१२॥

वि॒श्वान्	सर्वान्	सब को
दे॒वान्	देवान्	देवताओं को
आ	आ+	-

वह	आ+वह	लाओ
सोमऽपीतये	सोमपानार्थम्	सोम पीनेके लिए
{ अन्तरिक्षा त्	अन्तरिक्षात्	अन्तरिक्ष से
उपः	हे उपः!	हे उपा
त्वम्	त्वम्	तू
सा	सा	वह
अस्मासु	अस्मासु	हम में
धाः	निधेहि	स्थापन करो
गोऽमत्	गोभिर्युक्तम् (विमनेर्लुक्)	गोओं से युक्त को
अश्वऽवत्	अश्वैर्युक्तम्	घोड़ों से युक्त को
उक्थ्यम्	स्तुतियोग्यम्	स्तुतिकेयोग्य को

उपः	हे उपः!	हे उपा
वाजम्	अन्नम्	अन्न को
सुवीर्यम्	अतिवीर्योपेतम्	बहुत वीरता देने वाले को

संस्कृतार्थः ।

हे-उपः ! अन्तरिक्षात्सर्वान् देवान् (अत्र) सोम-
पानार्थमानय, हे उपः ! सा त्वं गोभिरश्वैः (च)
युक्तं स्तुतियोग्यमतिवीर्योपेतम् (च) अन्नमस्मासं
निधेहि ॥१२॥

भाषार्थः ।

हे उपा अन्तरिक्ष से सब देवताओं को (यहां)
सोम पीने के लिये लाओ हे उपा वह आप गोओं
(और) घोड़ों से युक्त स्तुति के योग्य (और) बहुते
वीरता देने वाले अन्न को हममें स्थापन करो ॥१२॥

उपादेवता, बृहतीछन्दः । ८।८।१२।८

यस्यारुशन्तोश्चयः प्रतिभद्राः

अ॒दृ॒क्ष॒त । सा॒नो॒र॒यि॒ंवि॒श्व॒वा॒रं॒सु॒पे-

श॒स॒मु॒प्रा॒द॒दा॒तु॒सु॒ग॒म्य॒म् ॥१३॥

यस्याः	यस्याः	जिस के
रुश॑न्तः	देदीप्यमानाः (भा०यो०)	खूब चमकते हुए
अ॒र्च॒यः	प्रकाशाः	प्रकाश
प्र॒ति	प्रति +	-
भ॒द्राः	मङ्गलरूपाः	मङ्गल रूप
अ॒दृ॒क्ष॒त	प्रति+अदृक्षत	देखे गए
सा	सा	वह
नः	अस्मभ्यम्	हमारे ताई
र॒यि॒म्	धनम्	धन को

विप्रवडा रम्	विश्वैर्वियतइति (कर्मणिघञ्)	सब से बरने योग्य को
सुपेशसम्	शोभनरूपोपेतम् (निघ० १७)	मनोहर रूप वाले को
उषाः	उषाः	उषा
ददातु	ददात	देवे
सुगम्यम्	सुखेनप्राप्तव्यम्	सुख से प्राप्त हाने वालाको

संस्कृतार्थः ।

यस्या देदीप्यमानाः प्रकाशा मङ्गलरूपा दृष्टाः
सोषाः सर्वैर्वरणीयं शोभनरूपोपेतं सुखेनप्राप्तव्यं
धनमस्मभ्यं ददातु ॥१३॥

भाषार्थः ।

जिसके खूब चमकते हुए प्रकाश मङ्गल रूप देखे
गए हैं वह उषा सब से बरने योग्य मनोहर रूप
वाले सुख से प्राप्त होने वाले धन को हमारे ताः
दे ॥ १३ ॥

(१) उषाके प्रकाश सदा मङ्गल रूप देखे गए ह । उनसे धनी
उषासक बन ममङ्गल नहीं हुआ ।

ये॒ त्रि॒ द्वि॒ त्वा॒ मृ॒ प॒ यः॒ पूर्॒ व॒ ऊ॒ त॒ ये

जु॒ हू॒ रे॒ ऽव॒ से॒ म॒ हि॒ । सानः॒ स्तो॒ मां॒ अ॒ भि

गु॒ णी॒ हि॒ रा॒ ध॒ सो॒ षः॒ शु॒ क्र॒ ण॒ शो॒ चि॒ पा॒ ॥१४॥

ये
चि॒ त्
हि
त्वा॒ म्
मृ॒ प॒ यः
पूर्॒ व॒
ऊ॒ त॒ ये
जु॒ हू॒ रे
अ॒ व॒ से

ये
अपि
खलु
त्वाम्
मृपयः
पुरातनाः
रक्षणार्थम्
आहूतवन्तः
अन्नार्थम्
(निरं०३१७)

जो
भी
सचमुच
तुझ को
मृपि
प्राचीन
रक्षा के लिए
घुलाते थे
गन्न के लिए

महि	हे पूजनीये	हे पूजने योग्य
सा	सा	वह
नः	अस्माकम्	हमारे
स्तोमान्	स्तोत्राणि	स्तोत्रों को
अभि	अभि+	-
गुणीहि	अभि+गुणीहि	उत्तर दो
राधसा	प्रति शब्दय धनेन	धन से
उपः	हे, उपः	हे उपा
शुभ्रेण	शुभ्रेण	उज्ज्वल से
शोचिषा	तेजसा	तेज से

संस्कृतार्थः ।

हे पूजनीये ! ये खलु पुरातना ऋषयोऽपि
रक्षणायाऽन्नाऽर्थं (च) त्वामाहूतवन्तः, हे उपः सा
(त्वम्) अस्मदीयानि स्तोत्राणि धनेन शुभ्रेण तेजसा
(च) प्रतिशब्दय ॥१४॥

भाषार्थः ।

हे पूजनीय जो सचमुच प्राचीन ऋषि भी अन्न (और) रक्षा के लिए आप को बुलाते थे हे उषा सो (आप) हमारे स्तोत्रों का धन और उज्ज्वल तेज से उत्तर दें ॥१४॥

(१) अर्थात् स्तोत्रों के बदले में हमें धन और उज्ज्वल तेज दो उपोदेवता, बृहती छन्दः । ८। ८। १२। ८॥

उषो॒यद॒द्यभानु॒ना वि॒द्वारा॒वृ॒णवी

दिवः॑ । प्र॒नो॒य॒च्छ॒ताद॒वृ॒कं पृ॒थु॒च्छ॒र्दिः

प्र॒दे॒वि॒गो॒मती॒रिषः॑ । १५॥

उपः	हे उपः	हे उषा
यत्	यत्	जो
अद्य	अद्य	आज
भानुना	दीप्त्या	प्रकाश से
वि	वि +	-

द्वारौ	द्वारौ	दोनों द्वारों को
ऋणवः	व+ऋणवः, उद्घाटितवती (ऋणघातौलंडिछान्द- संख्यम)	खोला है
द्विवः	द्विलोकस्य	द्विलोक के
प्र	प्र+	-
हमः	अस्मभ्यम्	हमारे ताई
यच्छतात्	प्र + यच्छतात्, देहि	दीजिए
अत्रकम्	हिंसक रहितम्	हिंसक से रहित
पृथ	विस्तृतम्	को चौड़े को
हृदिः	गृहम् (निघं०३।४)	घर को
प्र	प्र(देहि)	दीजिये
देवि	हे देवि!	हे देवि
गोऽमतीः	गोभिर्युक्तानि	गौओं से युक्त को

इषः । अन्नानि । अन्नो को

संस्कृतार्थः ।

हे उपः ! यद्य (त्वम्) दीप्त्या द्युलोकस्य द्वारा, बुद्ध्याटितवती (सात्वम्) अस्मभ्यं हिंसकरहितं विस्तीर्णं गृहं, गोभिर्युक्तान्यन्नानि (च) प्रदेहि ॥१५॥

भाषार्थः ।

हे उषा जो आज (आपने) प्रकाश से द्युलोक के दोनों द्वारों को खोला है (सो आप) हमारे ताड़ हिंसकों से रहित चोडे घर को (ओर) गौओं से युक्त अन्नो को दीजिये ॥ १५ ॥

(१) दोनों द्वार अर्थात् जहां पूर्व और पश्चिम में आकाश पृथिवी से मिलता हुआ दीप्तता है ॥

उपोदेवता, सतोवृहतीछन्दः । १२।८।१२।८।

संनो॑रा॒या॑वृ॒ह॒ता॑वि॒श्व॑पेश॒सां॑ मि

मि॒द्व॒वा॒स॒मि॒ळा॑भि॒रा । सं॒द्य॒म्ने॑न॒वि॒

प्रवतुरोषोमहि संवाजैर्वाजिनीवति

॥१६॥

सम्	सम्+	-
जः	अस्मान्	हम को
राया	धनेन	धन से
वृहता	महता	बड़े से
विप्रवऽपे	सर्वरूपेण	सब रूपों वाले से
शसा		
मिमिद्व	सम्+मिमिद्व, संयोजय (द्व्यत्ययेनात्मनेपदम्)	संयुक्त कीजिये.
सम्	सम् (योजय)	-
इळाभिः	गोभिः(निघ०२।१।)	गौओं से
आ	समुच्चयाऽर्थः	और
सम्	सम्(योजय)	संयुक्त कीजिए

दुस्नेन	प्रतापेन (आ०को०)	प्रताप से
विभ्रवऽतुरा	विश्वेषां (शत्रूणाम्) तूहिंसकस्तेन	सम्पूर्ण (शत्रुओं) के नाश करने वाले से
उषः	हे उषः	हे उषा
महि	हे पूजनीये	हे पूज्य
सम्	सम् (योजय)	संयुक्तों की जिये
वाजैः	अन्नैः	अन्नों से
वाजिनी	हे अन्न बहुले	हे बहुत अन्न वाली
{ ऽवति.		

संस्कृतार्थः ।

हे उषः ! सर्व रूपेण महता धनेनाऽऽस्मान् संयोजय गोभिः (च) संयोजय, हे पूजनीये सर्वेषाम् (शत्रूणाम्) हिंसकेन प्रतापेन (अस्मान्) संयोजय, हे अन्न बहुले ! अन्नैः (अस्मान्) संयोजय ॥ १६ ॥

भाषार्थः ।

हे उषा सब प्रकार के बड़े धन से हमको संयुक्त

१ दि॒वः	दु॒लोकात्	दु॒लोक से
१ चि॒त्	अपि	भी
रो॒च॒नात्	रोचनात्+अधि दीप्यमानात्	प्रकाश युक्त से
अधि	+ अधि	-
व॒ह॒न्तु	प्रापयन्तु	पहुंचावें
{ अ॒रु॒णाऽ-	अरुणवर्णाः	लाल रङ्ग वाले
{ प॒स॒वः	(प्लुरिति रूपनाम ति० १३१७)	
उप	प्रति	की ओर
त्वा	त्वाम्	तुझ को
सो॒मि॒नः	सोमयाजिनः	सोमयाजी के
गृ॒ह॒म्	गृहम्	घर को

संस्कृतार्थः १. .

हेउपः ! (त्वम्) दीप्यमानाद्दुलोकादपि कल्याणैः

(मार्गैः) आगच्छ, त्वामरुणवर्णाः (अश्वाः) सोमया-
जिनो गृहं प्रति प्रापयन्तु ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

हे उपा (आप) प्रकाश युक्त दुलोक से भी शुभ
(मार्गों से) आवे, आप को लाल रङ्ग वाले (घोड़े
सोमयाजी के घर की ओर पहुंचावे ॥ १ ॥

यह सूक्त प्रातरनुवाक में उपस्य क्रतु के अनुष्टुप्छन्द में
पढ़ा जाता है (आ०श्रौ० सू०४१४२)

(१) दुलोक से भी, अर्थात् यद्यपि उपा पृथिवी से बहुत दूर
दुलोक में है, वहां से भी सोमयाजी के घर में आकर सोमपान करे ॥

उपोदेवता, अनुष्टुप्छन्दः । ८।८।८।८

सुपेशसंखरथं यमध्यस्थाउ-

षस्त्वम् । तेनासुश्रवसंजनं प्रावाद्य-

दुहितर्दिवः । २ ।

सुपेशसम्	शोभनरूप युक्तम् (नि०८।११)	सुन्दर रूप से युक्तको
सुखम्	सुखकरम्	सुख देने वाले ३

रथम्	रथम्	रथ को
यम्	यम्	जिस को
{ अधिऽअ- स्थाः	अध्यतिष्ठः	वैठी हो
उपः	हे उपः	हे उपा
त्वम्	त्वम्	तू
तेन	तेन	उससे
सुऽश्रवसम्	शोभनकीर्ति युक्तम्	सुन्दर कीर्ति वाले को
जनम्	मनुष्यम्	मनुष्य को
प्र	प्र +	-
अव	प्र+अव, प्रकर्षेण रक्ष	खू बरक्षा करो
अद्य	अद्य	आज
दुहितः	हे पुत्रि !	हे पुत्री

दिवः | द्युलोकस्य | द्युलोक की

संस्कृतार्थः ।

हे द्युलोकस्य पुत्रि ! उपः ! त्वं शोभनरूपयुक्तं
सुखकरं यं रथमध्यतिष्ठस्तेन (रथेनागत्य) अद्य शो-
भनकीर्तियुक्तं मनुष्यं प्रकर्षेण रक्ष ॥२॥

भाषार्थः ।

हे द्युलोक की पुत्री उपा ! आप सुन्दर रूप से
युक्त सुख देने वाले जिस रथ के ऊपर बैठी हो उस
(रथ से आकर) आज सुन्दर कीर्ति से युक्त मनुष्य
की खूब रक्षा करो ॥ २ ॥

उपोदेवता, अनुष्टुप्छन्दः । ८।८।८।८।

वयश्चि॑त्तेप॒तत्रि॑णो द्वि॒पच॑चतु-
ष्टप॒द॒र्जु॑नि । उ॒षः॑ प्रा॒रन्नु॑तर॒नुद्वि॑वो
अ॒न्ते॑भ्य॒स्परि॑ । ३।

वयः | पक्षिणः | पक्षी
चित् | अपि | भी

तै	तत्र	तेरे
पतत्रिणाः	पक्षोपेताः	पांखों वाले
द्विऽपत्	पादद्वयोपेतम् (मनुष्यादिकम्)	दो पाओं वाले (मनुष्यादि)
चतुःऽपत्	पादचतुष्टयोपे- तम्(गवादिकम्)	चार पाओं वाले (गौ आदि)
अर्जुनि	हे शुभ्रवर्णं	हे उज्ज्वल रङ्ग- वाली
उषः	हे उपः	हे उषा
प्र	प्र +	-
आरन्	प्र + आरन् प्रागच्छन्	गए हैं
कृतन्	गमनानि ऋगतौ, भावे कुप्रत्ययः)	गमनों का
अनु	अनु(सृत्य)	पीछे २
दिवः	आकाशस्य	आकाश' वे

अन्तेभ्यः	प्रान्तेभ्यः)	सीमाओं से
परि	सर्वतः	सब ओर

संस्कृतार्थः ।

हे शुभ्रवर्णे ! उपः ! तव गमनान्यनु (सृत्य) पक्षोपेताःपक्षिणः, पादद्वयोपेताः (मनुष्यादयः) पाद चतुष्टयोपेताः (गवादयश्च)आकाशप्रान्तेभ्यः सर्वतः प्रागच्छन् ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

हे उज्ज्वल रङ्ग वाली उपा आप के गमन के पीछे २ पांखों वाले पक्षी, दो पाओं वाले (मनुष्यादि और) चार पाओं वाले (गौ आदि) आकाश की सीमाओं से सब ओर बिचरे हैं ॥ ३ ॥

उपोदेवता, अनुष्टुप्छन्दः।८।८।८।८।

व्युच्चन्तीहिरप्रिमभिर्विप्रवमा
भासिरोचनम् । तांत्वामुष्वसूयवो
गोभिःकण्वाअहूषत ।४।

विऽउचछ न्ती	प्रादुर्भवन्ती	प्रकट होती हुई
हि	खलु	सचमुच
रश्मिऽभिः	किरणैः	किरणों से
विप्लवम्	सर्वम्	सब को
आऽभासि	समन्तात्प्रकाश- यसि (भन्तर्माधितण्यर्थः)	चारों ओर प्रका- शित करती हो
रोचनम्	देदीप्यमानं यथास्यात्तथः (क्रियाविशेषणम्)	देदीप्यमान करती हुई
ताम्	ताम्	उसको
त्वाम्	त्वाम्	तझको
उपः	हे उपः	हे उपा
वसुऽयवः	वसु धनमात्मन इच्छन्ति,ते	धन की कामना वाले

गीऽभिः	स्तुतिभिः	स्तुतियों से
कण्वाः	कण्वाः	कण्ववंशियों ने
अहूषत	आहूतवन्तः	बुलाया है

संस्कृतार्थः ।

हे उषः ! (स्वकीयैः) किरणैः खलु प्रादुर्भवन्ती
(या त्वम्) सर्वम् (भूतजातम्) देदीप्यमानं प्रकाश
यसि, तां त्वां धनाऽभिलाषिणः कण्वाःस्तुतिभिरा-
हूतवन्तः ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

हे उषा सचमुच (अपनी) किरणों से प्रकट होती
हुई (जो आप) सारे (संसार) को देदीप्यमान करती
हुई प्रकाशित करती हों, उस आपको धनकी कामना
वाले कण्ववंशियों ने स्तुतियों से बुलाया है ॥ ४ ॥

अब भी धनकी कामना वाली आर्थ्य जाति की प्रज्ञात के
समय स्तुति और प्रार्थना को नहीं त्यागना चाहिए ॥

इत्येकोन पञ्चाशत्सूक्तम् ॥

ऋ० मं० १ सू० ५० ।

सूर्योदेवता, प्रस्कण्वक्त्रपिर्गायत्रीछन्दः ।८।८।८

उदुत्यंजातवेदसं देवंवहन्ति

केतवः । हृषेविश्रवाय सूर्यम् ।१।

उत्	उत् +	-
ऊम्०	(पूरणः)	-
त्यम्	तम्	उसको
{ जातऽवे-	जातानांवेदिता	उत्पन्न हुआओं के
{ दसम्	रम्	जानने वाले की
देवम्	देवम्	देवता को
वहन्ति	उत्+वहन्ति, ऊर्ध्वनयन्ति	ऊपर ऊपर ले जाती हैं
केतवः	रश्मयः	किरणें

दृ॒शे	द्र॒ष्टुम्	दर्शन के लिये
वि॒श्वाय॑	सर्व॒स्मै	सब के लिए
सूर्य॑म्	सूर्य॑म्	सूर्य को

संस्कृतार्थः ।

रश्मयो जातानां वेदितारं तं सूर्यं सर्वस्मै
दर्शनायोर्ध्वं वहन्ति ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

किरणों उत्पन्न हुआंके जानने,वाले उस सूर्यको
सब को दर्शन कराने के लिए ऊपर ऊपर ले जाती
हैं ॥ १ ॥

विनियोग—इस सूक्त की प्रथम ९ ऋचाएं आश्विन शस्त्र के
सूर्य ऋतु में पढ़ी जाती हैं (भा० धौ० सू० ६।५।१८)

सूर्य की किरणों ही हमें सूर्य देवता का दर्शन कराती हैं
जिस समय किरणें सूर्य से चलती हैं उस से २०॥ पल
(१ mt. 18' sec.) पीछे सूर्य मगवान का दर्शन होता है ।

सूर्यो॑देवता, गायत्रीछन्दः ।८।८।८॥

अप॒त्येता॑यवी॒यथा॑ न॒क्षत्रा॑यन्त्य-
त्तुभिः॑ । सूर्या॑यवि॒श्वच॑क्षसे ।२।

अप	अप+	-
त्ये	ते(अर्थात् प्रसिद्धः)	वे (नामी)
तायवः	स्तेनाः (निघं० ३२४।)	चोर
यथा	यथा	जैसे
नक्षत्राणि	नक्षत्राणि (श्लो०पः)	तारे
यन्ति	अप+ यन्ति, अपगच्छन्ति	निकल जाते हैं
अक्तुऽभिः	किरणैः (सह) (आ०को०)	किरणोंके (सहित)
सूर्याय	सूर्याय	सूर्य के लिये
विप्रवऽच क्षसे	सर्वस्यद्रष्ट्रे	सबके देखने वाले के लिये

संस्कृतार्थः ।

सर्वस्यद्रष्ट्रे सूर्याय नक्षत्राणि किरणैः (सह)
प्रसिद्धाःस्तेनाइवाऽपगच्छन्ति ॥ २ ॥

मापार्थः ।

सबके देखने वाले सूर्य के लिए नक्षत्र, किरणों (सहित) नामी चोरों की न्याईं निकल जाते हैं ॥ २ ॥

जब सब को देखने वाले सूर्य भगवान् उदय होते हैं तो नक्षत्र ऐसे निकल जाते हैं जैसे स्वामी के जागने पर नामी चोर, जिनका पकड़ना असम्भव है ॥

सूर्योदेवता, गायत्रीछन्दः । ८।८।८।

अ॒ह॒श्र॒म॒स्य॒के॒त॒वो॒ वि॒र॒श्म॒यो॒ज॒ना॒

अ॒नु॒ । अ॒ज॒न्तो॒ अ॒ग्नी॒यो॒यथा॒ ।३।

अ॒ह॒श्र॒म्	वि+अहश्रम्, विस्पष्टेनदृष्टाः (न्यत्ययदृष्टान्दसः)	स्पष्ट देखी गई हैं
अ॒स्य	अस्य	इसके
१ के॒त॒वः	ध्वज(रूपाः)	ध्वजा (रूप)
वि	वि+	-
१ र॒श्म॒यः	रश्मयः	किरणों

ज॒नान्	ज॒नान्	म॒नुष्यो॑ को
अ॒नु	अ॒नु(लक्ष्य)	लक्ष॑ रख कर
अ॒ज॒न्तः	ज्व॒लन्तः (निघं० । १ । १६)	ज॒लती॑ हुई
अ॒ग्नयः॑	अ॒ग्नयः॑	अ॒ग्नियां॑
यथा	यथा	जैसे

संस्कृतार्थः ।

अस्य ध्वज-(रूपाः) रश्मयो जनान् (अनुलक्ष्य गच्छन्तः) ज्वलन्तोऽग्नय इव विस्पष्टेन दृष्टाः ॥ ३ ॥

नापार्थः ।

इस की ध्वजा (रूप) किरणों मनुष्यों की ओर (जाती हुई) स्पष्ट देखी गई हैं जैसे जलती हुई अग्नियां ॥३॥

(१) किरणों सूर्य मगवान् के आने का समाचार लेकर ध्वजा रूप से आगे आगे चलते हैं जैसे सेना के आने का समाचार ऊंचे स्थानों पर अग्नियां जला कर दिया जाता है ॥

सूर्यो देवता, गायत्री छन्दः । ८ । ८ । ८ ॥

तर॒णि॑र्वि॒श्वदर्श॑तो ज्यो॒तिष्क॑द॒सि

सूर्य्य । विप्रवमाभासिरोचनम् । ४।

तरणिः	त्वरायुक्तः (तरणिरिति क्षिप्र नाम) (निघ० । २ । १५)	वेग वाला
विप्रवऽद- र्शतः	सर्वैर्द्रष्टव्यः	सब से देखने योग्य
ज्योतिःऽ कृत्	ज्योतिषःकर्ता	ज्योति को करने वाला
असि	असि	तू है
सूर्य्य	हे सूर्य्य !	हे सूर्य्य
विप्रवम्	सर्वम्	सब को
आ	आ +	-
भासि	आ + भासि प्रकाशयसि (अन्तर्नायित्त्वर्थ)	तू प्रकाशित करता ह

रीचनम्	देदीप्यमानं यथा स्यात्तथा (क्रियाविशेषणम्)	देदीप्य मान करके
--------	--	------------------

संस्कृतार्थः ।

हे सूर्य्य ! (त्वम्) त्वरायुक्तः सर्वैर्द्रष्टव्यः, ज्यो-
तिषः कर्ता (च)असि, (त्वमेव) सर्वं देदीप्यमानं प्रकाश
यसि ॥ ४ ॥

हे सूर्य्य आप वेग वाले सब से देखने योग्य
(और) प्रकाश के करने वाले हो, (आप ही)सब को
देदीप्यमान करके प्रकाशित करते हो ॥ ४ ॥

• यह मंत्र चातुर्मास्य के शुनासीरीय परं में सूर्य्य की हवि का
अनुयाक्या है (आ० धो० सू० २१२०।४)

(१) त्वरायुक्त इस लिए कि बराबर चलते रहते हैं, कभी
विश्राम नहीं लेते ।

सूर्य्योदेवता, गायत्रीछन्दः । ८।८।८

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदे-
षिमानुषान् । प्रत्यङ् विश्वं स्वर्हृशेः ॥

पृ०	प०	अग्रहम्	शुद्धम्	पृ०	प०	अग्रहम्	शुद्धम्
१०८३	१५	प्रऽ	प्रऽ	१११५	१०	शुधी	शुधि
१०८२	१६	होतारम्	होतारम्	१११८	४	सुनवः	सुनवः
१०८५	१४	सुतऽ	सुतऽ	११२२	६	रम्	रम्
१०८८	५	यज्ञेय	यज्ञेयु	"	३	त्रिष्टिप	त्रिष्टिपु
"	७	अनीताः	अनीताः	११२७	१०	सपवेशण	सपवेशय
११००	८	हे	तू हे	११२८	३	दैव्यं	दैव्य
११०५	१५	वद्विपि	वद्विपि	"	४	सुदा	सुदा
"	१८	लुक्)	लुक्)	"	८	जनम्	जनम्
११०७	२	यज्ञं	यज्ञम्	११३०	८	विद्या	विद्य
११०८	१४	पिबतु	पिबतु	"	१४	स्तुपे	स्तुपे
१११०	४	रुद्रौ	रुद्रौ	"	१५	वाम	वाम
१११२	१८	दागये	दागुये	११३२	११	विदा	विदा
"	१४	वाला	वाले	११३३	११	कक्र	कक्रु
१११४	१८	जात	जात	"	१४	ते ह	ते ह
"	१८	प्रत	प्रत	"	१०	जूर्णायाम्	जूर्णायाम्
१११५	२	पाच	पाचि				

मूल्य प्राप्ति स्वीकार ।

- ६८ ठाकुर वसावनसिंह ग्राम कान्छौली पो०
महुआ जिला मुजफ्फरपुर ५॥)
- ६९ लाला रूपचन्द हीरानन्द वकील ग्राम
शिकारपुर (सिन्ध) ५॥)
- १०० ठाकुर गनपतसिंह मुनसरोम ग्राम मण्डावा
जिला जयपुर ५॥)
- १०१ दाहिया भाई वी० पटेल सक्केटरी वौठल
पुस्तकालय पोस्ट भाद्रान (गुजरात) ५॥)
- पुस्तक मिलने और मूल्य भेजने का पता:-

मुन्शी जयराम मैनेजर

ऋग्वेद संहिता श्रीवाएन वालीकोठी

[मुखताना]

अंक २९-३०]

[माघ फाल्गुण १९६५

ऋग्वेद संहिता

(वैदिकजीवनभाष्ययुता)

पदपाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और भाषा अनुवाद
टिप्पणी और मन्त्रों के आशय पर
व्याख्यान से युक्त

जिसको मुह्तान निगाली प० शङ्करदेव
शास्त्री को सहायता से शिष्या
बाहिलानि ने सम्पादन किया

लाहौर

पञ्जाब एकादमीकाल यन्त्रास्तय में प्रिण्टर साक्षा
सासमन को अधिकार से छपा ।

१२ अंकों का अग्रिम मूल्य २)

पहले २४ अंकों का मूल्य ५॥)

१ प्रत्यङ्	सम्मुखं वर्तमानः	सामने हुआ हुआ
देवानाम्	देवानाम्	देवताओं के
२ विशः	जातीन् (आ०को०)	जातियों को
प्रत्यङ्	सम्मुखं वर्तमानः	सामने हुआ हुआ
उत्	उत् +	-
३ एषि	उत् + एषि, ऊर्ध्वं गच्छसि	ऊपर चलते हो
मानुषान्	मानुषान्	मनुष्यों को
प्रत्यङ्	सम्मुखं वर्तमानः	सामने हुआ हुआ
विप्रवम्	सर्वम्	सब को
स्वः	ज्योतिः	प्रकाश को
दृशे	दृष्टुम्	देखने के लिए

सस्वतार्थः ।

(हे सूर्य ! त्वम्) देवजातीन् प्रति वर्तमानः,

मनुष्यान्प्रति वर्तमानः सर्वं प्रति वर्तमानः (सन्)
ज्योतिः प्रदर्शनार्थमूर्ध्वं गच्छसि ॥५॥

मापार्थः ।

(हे सूर्य्य आप) देवजातियों के सामने हुए
हुए, मनुष्यों के सामने हुए २, सबके सामने हुए हुए
ज्योति दिखाने के लिए ऊपर ऊपर चलते हो ॥५॥

(१) जब सूर्य्यदेव आकाश में चलते हैं, तो सब देवजाति सब
मनुष्य और दूसरे सब प्राणी ऐसा समझते हैं कि सूर्य्य ने हमारी
ओर मुख किया हुआ है ।

(२) ऋषियों ने देवताओं में मो, गुणकर्मानुसार जातिविभाग
की कल्पना की है । जैसे अग्नि में ब्रह्म जाति की इन्द्र में क्षत्रजाति
की और मरुतों में वैश्य जाति की ॥

वरुणोदेवता, गायत्रीछन्दः । ८।८।८।

येनापावकचक्षसा भुरणयन्तंजना

अनु । त्वंवरुणपश्यसि । ६।

येन

पावक

येन

हे पवित्र कारक !

जिससे

हे पवित्र करने
वाले

चक्षसा	चक्षुषां (आ०को०)	नेत्र से
{ भुरग्य- न्तम्	गच्छन्तम् (निघ० २।१४)	चलते हुए को
जनान्	मनुष्यान्	मनुष्यों को
अनु	प्रति (आ०को०)	की ओर
त्वम्	त्वम्	आप
वरुण	हे वरुण !	हे वरुण
पश्यसि	पश्यसि	देखते हो

संस्कृतार्थः ।

हे पवित्रकारक ! वरुण ! येन चक्षुषा त्वं पश्यसि
(तम्) मनुष्यान्प्रति गच्छन्तम् (चक्षुर्नमस्कुर्मः) ॥६॥

भाषार्थः ।

हे पवित्र करने वाले वरुण आप जिस नेत्र से
' देखते हो मनुष्योंके प्रति जाने वाले (उस नेत्र को हम
नमस्कार करते हैं) ॥ ६ ॥

इस मन्त्र के देवता वरुण हैं (देखो वृ०दे० ३११३) जिन का आकाश रूप और सूर्य्य चक्षु हैं, इसी सूर्य्य रूपी चक्षु द्वारा वरुण देव सब मनुष्यों के पुण्य पाप को देखते हैं, उस चक्षु को हमारा नमस्कार हो ।

सूर्य्योदेवता, गायत्रीछन्दः ।८।८।८।

विद्यामिषि॑रज॑स्पृ॒ष्टव॑ ह्यामि॒मानि॑

अ॒क्तुभिः॑ । प॒थ्य॒ञ्जन्मा॑निसूर्य्य॑ ।७।

वि	वि+	-
द्याम्	द्याम् +	-
एषि	गच्छसि	जाते हो
रजः	द्याम् + रजः (लोकारजांस्युच्यन्ते निर०)	दुलोक को
पथु	विस्तीर्णम्	विस्तार, युक्तको
अहा	अहानि (शेडोपः)	दिनों को

मिमानः	वि+मिमानः, पृथक्कुर्वन् (भा०की०)	अलग करता हुआ
अक्तुऽभिः	रात्रिभिः	रात्रियों द्वारा
पश्यन्	पश्यन्	देखता हुआ
जन्मानि	जातानि	प्राणियों को
सूर्य्य	हे सूर्य्य !	हे सूर्य्य

संस्तरार्थः

हे सूर्य्य ! (त्वम्) रात्रिभिर्दिनानि पृथक्कुर्वन्
(तथा) जातानि पश्यन् (सन्) विस्तीर्णं द्युलोकं
गच्छसि ॥७॥

मापार्थः ।

हे सूर्य्य (आप) रात्रियों द्वारा दिनों को अलग
करते हुए, (ओर) प्राणियों को देखते हुए, विस्तार
युक्त द्युलोक की ओर जाते हैं ॥७॥

सूर्य्य की प्राणशक्ति (जो वास्तव में पृथिवी की शक्ति है)
दिन और रात्रि का भेद करता है, इस से निम्न एवं भीरु शक्ति
है जिस से सूर्य्यदेव अपने सारे परिवार को स्थिर हुए द्युलोक
की ओर आ रहे हैं ।

सूर्योदेवता, निचृद्गायत्रीछन्दः।८।७।८।

स॒प्त॒ त॒वा॒ ह॒रि॒ती॒रथे॒ व॒ह॒न्ति॒ दे॒व

सू॒र्यं । शो॒चि॒ष्के॒शं॑ वि॒च॒क्ष॒ण । ८।

स॒प्त

सप्त

सात

त॒वा

त्वाम्

तुझ को

ह॒रि॒तः

अग्वाः

घोड़े

रथे

रथे

रथ में

व॒ह॒न्ति

नयन्ति

ले जाते हैं

दे॒व

हे देव !

हे देव

सू॒र्यं

हे सूर्य !

हे सूर्य

{ शोचिःऽ-
केशम्

शोचीपितेजांस्येव
केशा यस्य, तम्

तेज रूप वालों से
युक्त को

वि॒ऽच॒क्ष॒ण॒ । हे विशेषदृष्टि॑
युक्त॑ । हे दूर देखने वाले

संस्कृतार्थः ।

हे विशेषदृष्टियुक्त सूर्य्य ! हे देव ! तेजोरूप
केशयुक्तं रथे (अवस्थितम्) त्वां सप्त (सङ्ख्याकाः)
अङ्गाः (आकाशे) नयन्ति ॥ ८ ॥

भाषार्थः ।

हे दूर देखने वाले सूर्य्यदेव, तेजरूप वालों से
युक्त (ओर) रथ में (बैठे हुए) आपको सात घोड़े
(आकाश में) ले जाते हैं ॥८॥

पहिले मंत्र में भाया है, कि सूर्य्य को किरणें ले जाते हैं,
इसलिये ये सात घोड़े सूर्य्य की सात प्रकार की किरणें हैं, जो इन्द्र
धनुष में भिन्न भिन्न प्रतीत होती हैं, और घृक्ष, फूल, फल, घास
पशु, मनुष्य इत्यादि सृष्टि में नाना रंग को उत्पन्न करती हैं ॥

सूर्य्योदेवता, गायत्रीछन्दः ।८।८।८॥

अ॒यु॒क्त॑स॒प्त॑शु॒न्ध॒य॒वः॑ सू॒रो॒रथ॑स्य

नृ॒प॒त्यः॑ । ताभि॑र्या॒ति॒स्वय॑क्तिभिः । ८ ॥

अयुक्ता	योजितवान्	जोड़ा है
सप्त	सप्त	सात
शुन्ध्यवः	वडवाः	घोड़ियों को
सूरः	सूर्यः	सूर्य ने
रथस्य	रथस्य	रथ की
नप्त्यः	पुत्र्यः (नपात्इत्यपत्यनाम (निघं० १२२)	पुत्रियों को
ताभिः	ताभिः	उन से
याति	चलति	चलता है
{ स्वयुक्ति ऽभिः	स्वयमेवयुक्तयो योजनानि यासां ताभिः	स्वयं जुड़ने वा- लियों से

संस्कृतार्थः ।

सूर्यो रथस्य पुत्रिस्थानीयाः सप्तसङ्ख्याका
वडवाः (रथे) योजितवान्, ताभिः स्वयं युक्ताभिः
(वडवाभिराकाशे) चलति ॥ ९ ॥

मापार्थः ।

सूर्य ने रथ की पुत्री रूप सात घोड़ियों को (रथ में) जोड़ा है (वह) उन स्वयं जुड़ने वालियों से (आकाश में) चलते हैं ॥ ९ ॥

सूर्य का मण्डल रथ है। उसी से उत्पन्न होने से किरणें रथ की पुत्री हैं, जो रथ में स्वयं जुड़ी हुई हैं, इन सात घोड़ियों वाले रथ से सूर्य भगवान् आकाश की यात्रा करते हैं ॥

सूर्यदेवता, अनुष्टुप्छन्दः ८८८८

उ॒द्य॑त॒म॒स॒स्परि॑ ज्योति॒ष्प॒त्रय॑-
न्त॒उ॒त्तर॑म् । दे॒वं॒दे॒व॒त्रा॑सू॒र्य॑ म॒ग॒न्म॑
ज्योति॑रु॒त्त॒म॒म् । १० ।

उत्	उत्	-
व॒य॒म्	वयम्	हम
त॒म॒सः	अन्धकारस्य	अन्धकार के
परि॑	उपरि (भा०को०)	ऊपर
ज्योतिः॑	प्रकाशम्	प्रकाश को

पद्मयन्तः	पद्मयन्तः	देखते हुए
{ उत्त- रम्	उत्कृष्टतरम्	बहुत बड़े को
देवम्	देवम्	देवता को
देवञ्च	देवेषु (सप्तम्यर्थेनाप्रत्ययः)	देवताओं में
सूर्यम्	सूर्यम्	सूर्य को
अगन्म	उत् + अगन्म प्राप्नुवाम (लिङ्गर्थेऽङ्)	प्राप्त होवें
ज्योतिः	ज्योतिरूपम्	ज्योति रूपको
{ उत्त- मम्	उत्तमम्	उत्तम को

संस्कारार्थः ।

वयमन्धकारस्योपर्युत्कृष्टतरं प्रकाशं पद्मयन्तो
देवेषु(मध्ये)उत्तमं ज्योतीरूपं सूर्यदेवं प्राप्नुवामः।१०।

भाषार्थः ।

हम अन्धकार के ऊपर बहुत बड़े प्रकाश को देखते हुए देवताओंमें उत्तम ज्योति रूप सूर्यदेवता को प्राप्त होवें ॥१०॥

अन्धकार जो पृथिवी की छायासे होता है । केवल ८,६०,००० मील तक है, इस से ऊपर निरन्तर ज्योति है, हम इस शरीर को त्यागने पर निरन्तर ज्योति को देखते हुए सूर्यलोक को प्राप्त होवें, अथवा ध्यान द्वारा जीते जी प्राप्त होवें यह प्रार्थना इस मंत्र में है ।

सूर्योदेवता, निचूदनुष्टुप्छन्दः । ८। ८। ८।

उदयन्नद्यमिचमह आरोहन्नुत्तरां
दिवम् । हृद्रोगंममसूर्य हरिमाण-
ञ्चनाशय । ११ ।

उत्स्यन्	उदयंगच्छन्	उदय होता हुआ
अद्य	अद्य	आज
मिचमहः	हे मित्रनन्दन (महर्षिहर्यनाम, भा०को०)	हे मित्रोंके प्रसन्न करने वाले
आरोहन्	आरोहन्	चढ़ता हुआ

उत्तराम्	उत्कृष्टतरम्	बहुत बड़े को
दिवम्	द्युलोकम्	द्युलोकको
हृत्-रोगम्	हृद्रोगम्	हृदय के रोग को
मम	मम	मेरे
सूर्य्य	हे सूर्य्य !	हे सूर्य्य
हरिमाणम्	पीतवर्णताम् (आ०फो०)	पीलेपन को
च	च	और
नाशय	नाशय	नाश करो

संस्कृतार्थः ।

हे मित्रनन्दन हे सूर्य्य ! अद्योदयं गच्छन्नुत्कृष्टतरं द्युलोकम् (च) आरोहन् मम हृद्रोगं पीतवर्णताञ्च नाशय ॥ ११ ॥

भाषार्थः ।

हे मित्रों के प्रसन्न करने वाले हे सूर्य्य, आज (आप) उदय होते हुए (और) घड़े द्युलोक में

चढ़ते हुए, मेरे हृदय के रोग और पीले पन को नाश करो ॥ ११ ॥

प्रस्वप्न ऋषि ने हृदय रोग और पाण्डु रोग (पीलिये) की अवस्था में ये तीन मंत्र देये थे और इन से उनको रोग की शांति हुई थी, अब भी जो इन मंत्रों से सूर्य की उपासना करे तो उसका पाण्डु गौर हृदय रोग नाश हो सकता है। सज्जनों का दुःख भी संसार के उपकार का कारण होता है। शुभःशेष का उदाहरण इस विषय में आचुकी है। आगे और ऋषियों के भी आवेंगे।

सूर्यों देवता, अनुष्टुप्छन्दः ।।।।।।।।

शुकेषु मे हरिमाणां रोपणाकासु द-

धमसि । अथोहारिद्रवेषु मे हरिमाणां

निदधमसि । १२ ।

शुकेषु	शुकेषु	तोतों में
मे	मम	मेरे
हरिमाणां	पीतवर्णताम्	पीले पन को
रोपणाकासु	सारिकासु	मैनाओं में

दध्मसि

स्थापयामः
(मसइकारागतः)

स्थापन करते हैं

अथो

अपिच

और भी

हारिद्रविषु

गोपीताख्यहरि-
द्रवेषुपक्षिषु
(क्र० ८।३५।७)

गोपीत पक्षियों में

मे

मम

मेरे

हरिमाणम्

पीतवर्णताम्

पीले पनको

नि

नि+

-

दध्मसि

नि+दध्मसि,
स्थापयामः

हम स्थापन करते
हैं

संस्कृतार्थः ।

(हे सूर्य्य) ! मम पीतवर्णतां शुकेषु सारिकाषु,
अपिच गोपीत पक्षिषु स्थापयामः ॥१२॥

भाषार्थः ।

हे सूर्य्य ! मेरे पीले पन को हम तोताँ और
मनाओं में और गोपीत पक्षियों में स्थापन करते
ह ॥१२॥

(१२४५) क्र० प्र० १ सू० ५० म० १३

इन तीनों पक्षियों में पीला रंग स्वभाविक है; रोग के कारण नहीं है। वे हमारे पीले रंग को ग्रहण करें, और हम अपना स्वभाविक रंग धारण करें ॥

सूर्योदेवता, अनुष्टुप्छन्दः । ८। ८। ८। ८। :

उदगाटयमादित्यो विप्रवेन सह-

सा सह । विषन्तं मह्यं रन्धयन्मी-

अहं विषते रधम् । १३।

उत्	उत् +	-
अगात्	उत्+अगात्, उदितोऽभूत्	उदय हुआ है
अयम्	अयम्	यह
आदित्यः	सूर्यः	सूर्य
विप्रवेन	सर्वेण	सब से
सहसा	बलेन	बल से
सह	सह	साथ

द्विषन्तम्॑	द्वेषं कुर्वन्तम्	शत्रुता करने वाले को
मह्यम्॑	मह्यम्	मेरे ताई
रन्धयन्॑	आयत्ती कुर्वन् (आ०को०)	बस में करता हुआ
मो०	त	नहीं
अहम्॑	अहम्	में
द्विषते॑	शत्रवे	शत्रु के ताई
रधम्॑	आयत्तीभवेयम् (लिट्थेल्ड् धडभावः)	बस में होऊं

संस्कृतार्थः ।

अयं सूर्यः सर्वेण बलेन द्वेषकारिणं मह्यमायत्ती
कुर्वन्नुदितोऽभूत्, अहं शत्रवे माऽऽयत्तीभवेयम् ॥१३॥

भाषार्थः ।

यह सूर्य(देव)सम्पूर्ण बलके साथ शत्रुता करने
वालेको मेरे बस में करते हुए उदय हुए हैं मैं शत्रुके
बस में न होऊं ॥१३॥

इति पञ्चाशत्सूक्तम् ।

अ० मं० १ सू० ५१ ।

विनियोग—यह सूक्त अतिरात्र यह में प्रथम रात्रि के पर्याय में होता के शस्त्र में पढा जाता है (आ० श्री० सू० ६।४।१०)

भीर गवामयन में विषुवत् के दिन तिष्केवल्य शस्त्र में भी पढा जाता है (आ० श्री० सू० उ० । २।६।२२)

इस सूक्त में इन्द्र के मनुष्यहितकारी धीर कर्मों का वर्णन है और यह दिखलाया गया है कि वे धीर कर्म भक्तों की स्तुति और सोम द्वारा पूजन से प्रेरित हुए हैं, कुछ उदाहरण भक्तोंकी रक्षा और सहायताके दिष्ट है जैसे अङ्गिरामों और भक्ति के लिए धर्म का करना, दस्युओं (भार्य्य शत्रुओं) के साथ युद्ध में राजा ऋजिश्वा की सहायता करना, इती तरह कुत्स ऋषि और राजा दिबोदास वा अतिथिग्व की रक्षा करना, यम्र ऋषि के स्तुति बल से दस्यु घृत्र को मार कर गिराना, ऋषि के पुत्र उशाना ऋषि के स्तुति बल से धाया पृथिवी को कपाने वाले बल को प्राप्त करना शार्यात राजा का भर्षण किया सोम पी कर घडे घडे यश को बढ़ाने वाले कर्मों का करना, बुद्धे भक्त कक्षीयान को युधती वृचया नामी स्त्री का प्राप्त कराना इत्यादि ।

इन्द्रो देवता सव्य आङ्गिरस ऋषिर्जगती छन्दः

॥१२।१२।१२।१२॥

अभित्यंसेषंपुरुहूतमृगिमयमिन्द्रं

गीर्भिर्मदतावस्वीअर्णवम् । यस्य-

द्यावो न विचरन्ति मानुषा भुजेमहि-

ष्ठमभिर्विप्रसर्चत ।१।

अभि

अभि +

-

त्यम्

तम्

उसको

मेषम्

सेकारम् (नरम्)
(मेषतिः सेचनकर्मा)
(आ०को०)

नर को

परुद्धूतम्

बहुभिराहूतम्

बहुतों से घुलाए
गए को

ऋग्भिस्यम्

ऋग्भिर्मीयते
शब्दयते, तम्
(माङ्शब्दे)

ऋचाओं से स्तुति
किए जाने वाले
को

इन्द्रम्

इन्द्रम्

इन्द्रको

गीऽभिः

स्तुतिभिः

स्तुतियों से

मदत

अभि+मदत, माद-
यत (गेलोंपदछान्दमः)

हर्षित करो

वस्वः	धनस्य	धन के
अर्णवम्	समुद्रम्	समुद्र को
यस्य	यस्य	जिसके
द्यावः	आकाशाः	आकाश
न	इव	की न्याईं
विचरन्ति	अभिव्याप्नुवन्ति (आ०को०)	चारों ओर फैलते हैं
मानुषा	मनुष्यहितानि	मनुष्य के हित- कारी
भुजे	लाभाय (आ०को०)	लाभके लिये
मंहिष्ठम्	अतिशयेनवृद्धम् (मदितृप्ती)	बहुत बढ़े हुएको
अभि	अभि+	
विप्रम्	मेधाविनम्	बुद्धिमान को
अर्चत	अभि+अर्चत	पूजो

ससृष्टतार्थः ।

(हे आर्य्याः !) तं बहुभिराहूतं ऋग्भिः स्तूयमानं धनस्य समुद्रं नरभिर्द्रं स्तुतिभिर्मादयत यस्य मनुष्यहितानि (कर्माणि) आकाशा इवाऽभिव्याप्नुवन्ति, अतिशयेन वृद्धं मेधाविनम् (तमेव) लाभायाऽभ्यर्चत ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

(हे आर्य्यगण) उस बहुतों से बुलाए गए, ऋचाओं से स्तुति किए जाने वाले, धन के समुद्र, नर वीर इन्द्रको स्तुतियों से हर्षित करो, जिसके मनुष्यहितकारी (कर्म) आकाशों की न्याईं चारों ओर फैलते हैं, बहुत बड़े हुए, बुद्धिमान, (उसी को) लाभ के लिए पूजा ॥ १ ॥

यदि हम को लाभ की इच्छा है तो धन के समुद्र इन्द्र को स्तुति द्वारा मद युक्त करना चाहिये । थोड़े धन वाले लौकिक राजा आदि का सहाय नहीं तकना चाहिये ॥

इन्द्रो देवता जगती छन्दः ॥ १२ ॥ १२ ॥ १२ ॥ १२ ॥

अभीमवन्वन्तस्वभिष्टिसूतयो

ऽन्तरिक्षप्रांतविषीभिराहूतम् । इन्द्रं-

दक्षासञ्चभवीमदच्युतं शतक्रतुं ज-
वनीसूनुतारुहत् । १२ ॥

अभि	अभि±	-
ईम्	(पूरणः)	-
अवन्वन्	अभि+अवन्वन्, अभितोऽभजन्त (वनतेर्व्यःपयेनउप्रत्यय.)	सब ओर से सेवा की
{ सुऽअभि- ष्टिम्	सुयष्टव्यम्	अत्यन्त पूजनीय को
ऊतयः	सहायकाः (कर्त्तरिणिन्)	सहायक
{ अन्तरिक्ष ऽग्राम्	अन्तरिक्षस्य पूरकम्	अन्तरिक्ष के भरने वाले को
तविषीभिः	थलैः	थलोंसे

आऽवृत्तम्	आवृत्तम्	घिरेहुण को
इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
दक्षासः	कर्मकुशलाः	काम में चतुर
ऋभवः	ऋभवः	ऋभुओं(ने)
मदोऽच्युतम्	मदोन्मत्तम् (आ०को०)	मदोन्मत्त को
शतऽक्रतुम्	बहुकर्मणिम्	बहुत कर्मों से युक्त को
जवनी	प्रेरयित्री (करणेभ्युः)	उत्साह दिलाने वाली
सनुता	प्रियावाक्	प्यारी वाणी
आ	आ +	
अरुहत्	आ + अरुहत् उदगच्छन्	ऊपर उठी

संस्कृतार्थः ।

सहायकाः कर्मकुशला ऋभवःस्यप्टव्यमन्तरि-

क्षस्य पूरकं बलरावृतंमदोन्मत्तमिन्द्रमभितोऽभजन्त,
 (तेषाम्) प्रेरयित्री प्रियावाक् बहुकर्माणम् (प्रति)
 उदगच्छत् ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

सहायक, कर्म में चतुर, ऋभुओं ने अत्यन्त पूजनीय, अन्तरिक्ष को भरने वाले, बलों से घिरे हुए मदोन्मत्त इन्द्र की सब ओर से सेवा की (उन की) उत्साह दिलाने वाली प्यारी वाणी बहुत कर्मों से युक्त (इन्द्र) के प्रति उठी ॥ २ ॥

ऋभुओं के वर्णन के लिए देखो (पृ० ३९४) जय इन भक्तों ने इन्द्र की सब ओर से सेवा की, और इनकी उत्साह दिलाने वाली वाणी इन्द्र के प्रति उठी, तब सोम रस से मदोन्मत्त होकर इन्द्र ने आर्य्य शत्रुओं का विध्वंस किया। इन्द्र तो अब भी हैं। परन्तु जय तक उन के उपासकों की स्तुति रूप वाणी उनको धीरता के कर्म करने में प्रेरण न करे, तब तक यह आर्य्य सन्तान की रक्षा करने में असमर्थ हैं।

सोमरसजनित उन्माद दूसरे मदकारक द्रव्यों से उत्पन्न उन्माद से इतना भिन्न है, जैसे दिन से रात, इस विषय में पक्षपात रहित प्रो० मैक्सम्यूलर भी सम्मति देते हैं, वह लिखते हैं 'वेद के आशय की अंग्रेजी वा दूसरी भाषा में वर्णन करने की कठिनता यहां फिर प्रत्यक्ष होती है, क्योंकि हमारे हां सोम वा दूसरी वृद्धिया से जनित मन की उच्च अवस्था को द्योतन करने वाला ऐसा कोई शब्द नहीं है जो घृणा उत्पन्न करने वाले भाव से रहित हो, परन्तु प्राचीन समय में वह मन की उच्च अवस्था देवताओं

की कृपा से प्राप्त और देवताओं के योग्य समझी जाती थी, जिस अवस्था में कधि और वीर अपने उच्च से उच्च कर्तव्य करते थे" ॥

इन्द्रो देवता जगती छन्दः । १२ । १२ । १२ । १२ ।

त्वंगोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरप्रो ताऽ

त्रयेशतदुरेषुगातुवित् । ससेनचि-

द्विमदायावहोवस्वा जावद्रिवावसा

नस्यनत्तयन् । ३ ।

त्वम्

त्वम्

तूने

गोत्रम्

गोसमूहम्

गौओंके समूहको

१ { अङ्गिरः-
ऽभ्यः

अङ्गिरोभ्यः

अङ्गिराओंके लिये

अवृणोः

अप+अवृणोः

खोल दिया

अपाष्टतवानसि

अप

अप +

उत	च	और -
१ अत्रये	अत्रये	अत्रिके लिये
२ शतदुरेषु	शतं दुरा द्वाराणि येषां ते, तेषु (दुर्गेषु)	सैकड़ों द्वार वाले (दुर्गों) में
२ गातुद्वित्	गातुंगन्तव्यंमार्गं वेदयति, मार्गस्य लम्भयिता (अन्तर्भावितण्यर्थात् द्विषत्)	रस्ता निकालने वाला
ससेन	अन्नेन (निघ०२।७)	अन्न से
चित्	अपि	भी
१ विमदाय	विमदाय	विमद ऋषि के लिये
अवहः	प्रापितवान्	प्राप्त कराया
वसु	धनम्	धन को
आजौ	सुह्रामे	युद्ध में

अद्रिम्	वज्रम् (निद्र०)	वज्र को
ववसानस्य	निवसतः (यजमानस्य)	निवास करते हुए (यजमान) के
नर्त्तयन्	नर्त्तयन्	नचाता हुआ

ससृत्तार्थः ।

(हे इन्द्र !) शत द्वार युक्तेषु (दुर्गेषु) मार्गस्य लम्भयिता त्वमङ्गिरोन्वयोऽत्रये च गोसमूहमपावृतवान्, अपि (च) यजमानस्य सङ्ग्रामे वज्रन्नर्त्तयन्(सन्) ; विमदायान्नेन युक्तधनंप्रापितवान् ॥ ३ ॥

नापार्थः ।—

(हे इन्द्र) सैंकड़ों द्वार वाले (दुर्गों में) रस्ता निकालने वाले आपने अङ्गिरा और अत्रिके लिए (मेघ रूपी) गौके समूह को खोल दिया । और यजमान के युद्ध में वज्र को नचाते हुए आपने विमद के लिए अन्न सहित धन को प्राप्त कराया ॥३॥

(१) अङ्गिरा और अत्रि भार्य्य जातिके भादि पुरुषाओं में से हैं ।

(२) सैंकड़ों द्वारों वाले दुर्ग (गढ़ वा किले) यादल हैं, जिन में रस्ता दूँड कर, इन्द्र ने जल और ज्योति रूपी गौओं को अङ्गिराओं और अत्रि के लिए खोल दिया ।

(३) विमद भी एक प्राचीन ऋषिका नाम है, जिनके लिए इन्द्र ने भार्य्य राजा को युद्ध में जिता कर वैदि को अन्न और धन प्राप्त कराया।

इन्द्रो देवता जगती छन्दः । १२१ । १२१ । १२१ । १२१ ।

त्वमपामपिधानाऽवृणोरपाऽधारयः

पर्वते दानुमवसु । वृचं यदिन्द्रशवसा

वधीरहि मादित्सूर्ये दिव्यारोह-

यो ह्यशे । १४ ।

त्वम्	त्वम्	तूने
अपाम्	जलानाम्	जलों के
१ अपिऽधाना	आच्छादनानि (जेलोंप.)	ढकनोंको
अवृणोः	अप + अवृणोः, अपावृतवानसि;	खोल दिया
अप	अप +	-
अधारयः	स्थापितवानसि	स्थापन किया
२ पर्वते	पर्वते	पर्वत पर

२ दानु॑ऽमत्	दानयुक्तम्	दान युक्त को
३ वसु॑	धनम्	धन को
वृत्र॑म्	वृत्रम्	वृत्र को
यत्	यदा	जब
इन्द्र॑	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
शवसा॑	बलेन	बल से
अवधीः॑	अवधीः	तू ने मारा
३ अहि॑म्	मेघम् (निघं०१।१०)	मेघ को
आत्	अनन्तरम्	पीछे
इत्	एव	ही
३ सूर्य॑म्	सूर्यम्	सूर्य को
दिवि॑	दुलोके	आकाश में

आ	आ +	-
अंरोहयः	आ + अंरोहयः प्रादुष्कृतवानसि	प्रकट किया
दृशे	दृष्टुम्	दर्शन के लिये

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! त्वं जलानामाच्छादनान्यपावृतवान् पर्वते दानयुक्त धनम् (च) स्थापितवान् यदा (त्वम्) मेघ- (रूपम्) वृत्रं हतवान् (तद्) अनन्तरमेवाऽऽकाशे सूर्यं दर्शनाऽर्थं प्रादुष्कृतवान् ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र आपने जलों के ढकनों को खोल दिया (और) पर्वत पर दान युक्त धन को स्थापन किया, जब आपने बादल (रूपी) वृत्र को मारा (और उसके) तुरन्त पीछे आकाश में सूर्य को दर्शन के लिए प्रकट किया ॥ ४ ॥

(१) जलों के ढकने जो धूलि के कण रूप में जलों को पकड़े हुए थे इन्द्र ने 'वियुक्त रूपी वज्र से खोल दिये ।

(२) दानयुक्त धन वर्षा रूपी जल है, जो अधिकतर पर्वत में ही बरसता है ।

(३) यह प्रथमज वृत्र का वृत्तान्त है। जिस को मारने से पृथिवी पर पहली बार सूर्य के दर्शन हुए । (देखो पृ० ७५६)

इन्द्रो देवता जगती छन्दः । १२ । १२ । १२ । १२ ॥

त्वंसायाभिरपसायिनोऽधमः

स्वधाभिर्येअधिशुप्तावजुह्वत । त्वं-

पिप्रोर्नृमणः प्राकृजः पुरः प्रकृजिश्वानं

दस्युहृत्येष्वाविथ ॥५॥

त्वम्	त्वम्	तू ने
१ सायाभिः	सायाभिः	मायाओंसे
अप	अप +	-
१ सायिनः	सायोपेतान्	मायाचियोंको
२ अधमः	अप+अधमः अपसारितवान् (धमतिगंतियर्मा निघ० ६।२)	दूर निकाल दिया
स्वधाभिः	अन्तेः (निघं० २।७)	अन्नों से

ये	ये	जिन्होंने
अधि	अधि+	-
शुप्तौ	अधि+शुप्तौ, मुखे (सा०भा०)	मुख में
अजुह्वत	अहौपुः (जुहोतेर्लडिभ्यत्ययेना त्मनेपदम्)	हवन किया करते थे
त्वम्	त्वम्	तूने
पिप्रोः	पिप्रोः	पिप्रु के
नृमनः	नृपुमनोयस्य, तत्सम्बुद्धौ	हेमनुष्यों में मन रखने वाले
प्र अरुजः	प्र+ प्र+अरुजः, प्राभा- ङ्क्षीः	- तोड़ दिया
पुरः-	पुराणि	गढ़ों को
प्र	प्र+	-
{ ऋजिप्रवा नम्	ऋजिश्वानम्	ऋजिश्वा को

<p>दस्युऽह- त्येषु</p>	<p>दस्यूनांहत्या येषु (युद्धेषु)</p>	<p>जहां दस्यु मारे जाएं ऐसे (युद्धों में)</p>
<p>आविथ</p>	<p>प्र+आविथ प्रकर्षेण रक्षितवान्</p>	<p>अत्यन्त रक्षाकी</p>

संस्कृतार्थः ।

(हे इन्द्र !) ये (असुरा हविलक्षणैः) अन्नैःमुखे
अहौषुः (वृत्रादींस्तान्) मायोपेतान् त्वं मायाभरप-
सारतवान् हे नृमनः ! त्वं पिप्रोः पुराणि प्राभाह्नीः
(अपि च) दस्यु हत्येषु (युद्धेषु) ऋजिश्वानं प्रकर्षेण
रक्षितवान् । ५ ।

भाषार्थः ।

(हे इन्द्र) जो (असुर हविरूप) अन्नों से मुख
में होम किया करते थे (उन) मायावियों को आपने
अपनी माया से दूर निकाल दिया । हे मनुष्यों में
मन रखने वाले आपने पिप्रुके गढ़ों को तोड़ा (और)
युद्ध में दस्युओं को मार कर ऋजिश्वा की अत्यन्त
रक्षा की ॥ ५ ॥

(१) जो लोग कपट युक्त नीति से धन एकत्र करके अपने
ही मुँह में होम करते हैं अर्थात् अपना पेट पालन करते हैं
और दूसरों को कुछ नहीं देते वे दस्यु और असुर हैं चाहे
पृथिवी पर मनुष्य रूप में हों चाहे अन्तरिक्ष में घृय रूप में, ऐसे

लोगों की कुटिल नीति को 'दूमरी कुटिल नीतियों' से तोड़ कर इन्द्र उनको सदा पृथिवी और अन्तरिक्ष से दूर निकालते रहे हैं ॥

(२) ऐसे ही दस्यु वा असुरों में एक पित्रु है जिस के दुर्गों को तोड़ कर

(३) और दस्युओं को मार कर इन्द्र ने अपने भक्त राजा ऋजिदवा की रक्षा की।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२॥

त्वंकु॑त्संशु॑ष्णह॒त्ये॑षवावि॒था

ऽर॑न्धयोऽतिथि॒ग्वाय॑श्श॒स्वर॑म् । म॒हा-

न्तं॑चिद॒र्बुदं॑नि॒क्रमीः॑प॒दा सु॒नादे॒व-

द॒स्यु॑ह॒त्याय॑ज॒ज्ञिषे॑ ।६।

त्वम्	त्वम्	तू ने
१ कुत्सम्	कुत्सम्	कुत्सको
१ { शुष्णह	शुष्णस्य हनन	शुष्ण को नाश
{ त्येषु	युक्तेषु [सङ्ग्रामेषु]	करने वाले
		(युद्धों में)

आविष्ट	ररक्षिथ	रक्षा को
अरन्धयः	आयत्ती कृतवान्	वस में किया
अतिथि उगवाय	अतिथिगवाय	अतिथिग्व के छिष्ट
शम्बरम्	शम्बरम्	शम्बर को
महान्तम्	महान्तम्	महान को
चित्	अपि	भी
अर्बुदम्	अर्बुदम्	अर्बुद को
नि	नि+	-
क्रमीः	नि+क्रमीः, नितरा माक्रमितवान्	रोंधा
पदा	पादेन	पाओं से
सुनात्	सदा	सदा

एव	एव	ही
{ दस्युऽह- त्याय	दस्युहत्यायै (लिङ्गव्यत्ययश्छान्दसः)	दस्युओं के मारने के लिये
जञ्चिषे	प्रादुर्वभूविथ	प्रकट हुए हो

संस्कृतार्थः ।

(हे इन्द्र) त्वं शुष्णस्य हनन युक्तेषु (सङ्ग्रामेषु) कुत्सं ररक्षिथ, (त्वम्) अतिथिग्वाय शम्बरमायत्ती कृतवान् (त्वम्) महान्तमप्यर्बुदंपादेनाक्रमितवान् (त्वम्) सदैव दस्यूनां हत्यायै प्रादुर्वभूविथ ॥६॥

भाषार्थः ।

(हे इन्द्र) आपने शुष्णके नाश किए जाने वाले (युद्धों) में कुत्स की रक्षा की थी आपने शम्बर को अतिथिग्व के अधीन कियाथा आपने महान [अर्बुद को भी पाओं से रोंधा था, आप सदासे दस्युओं के नाश के लिए उत्पन्न हुए हैं ॥ ६ ॥

(१) शुष्ण, शम्बर, अर्बुद, ये सब वृत्र या अन्य इन्द्र के शत्रुओं के कल्पित नाम हैं और इसी लिए "भारव्य शत्रु" भर्ष की बोधन करते हैं ॥

(२) कुत्स ऋषि प्रथम मण्डल के ९४ से ९८ और १०१ से ११५ तक सूक्तों के द्रष्टा हैं, इन्द्र ने "भारव्य शत्रुओं" का हनन करद्वयुके में इनकी रक्षा की थी।

(३) अतिथिग्व दिवोदास का नामान्तर है जो बडे दानी और देव भक्त आर्य्य राजा थे इनके अनार्य्य शत्रु को इन्द्र ने इनके अधीन किया था ।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः। १२।१२।१२।१२॥

त्वेवि॒प्रवा॑तवि॒षीस॒ध्राग्नि॑घ॒ता तव॒-
राधः॑सोमपी॒थाय॑हर्ष॒ते । तव॒वज्र॑-
शि॒चकिते॑वाहोर्हि॒तो वृ॒क्षाश॑चो॒र-
ववि॒प्रवा॑निवृ॒ष्टया॑ । ७।

त्वे०	त्वयि	तुझ में
वि॒प्रवा॑	सर्वम् (विमकेपत्वम्)	सब
तवि॒षी	बलम्	बल
स॒ध्राक्	सन्भृद्य	इकट्टा
हि॒ता	निहितम् (विमकेपत्वम्)	रखा हुआ

१ तव	तव +	-
१ राधः	तव+राधः, तवा- ऽनुग्रहः, अर्थात् दयालुर्भवान्	दयालु आप
{ सोमऽपी- थाय	सोमपानाय	सोम पीनेके लिये
हर्षते	हृष्यति	हर्षित होता है
तव	तव	तेरा
वज्रः	वज्रः	धज्र
चिकित्ते	ज्ञातम्	जाना गया है
बाह्योः	बाह्योः	हाथों में
हितः	स्थापितः	स्थापित (है)
वृष्य	अव+वृश्च, अव- च्छिन्द	काट कर पृथक करो

शत्रोः	शत्रोः	शत्रु के
अव	अव+	-
विप्रवानि	सर्वाणि	सब
वृष्या	वीर्याणि (शैलौपः)	वीर्यों को

संस्कृतार्थः ।

(हे इन्द्र !) त्वयि सर्वं बलं सम्भूय स्थापितम्
(अस्ति) दयालु भवान् सोमपानार्थं हृष्यति, तव
बाहोर्वधः स्थापितः-(इति)ज्ञातम्-(अस्ति, तेन) शत्रो-
स्सर्वाणि वीर्याण्यवच्छिन्धि ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

(हे इन्द्र) आप में सारा बल इकट्ठा स्थापित
है, कृपालु आप सोम पीने के लिये हर्षित होते हैं
आप के हाथों में बल स्थापित (है, यह) प्रसिद्ध है
(उस से) शत्रु के सम्पूर्ण वीर्यों को काट कर
पृथक् करो ॥ ७ ॥

तात्पर्य यह है कि इन्द्र में सम्पूर्ण बल इकट्ठे हुए हैं और
यह सोम के रसिक हैं इसलिए सोम भक्षण करने वाले हम पर
उन की छत्रा दृष्टि मगधदा है, यज्ञ भी उन के हाथों में सदा

रहता है इसलिये हमारे शत्रु के धीर्य युक्त पराक्रमोंको काट कर भलग किए जाने में क्या सन्देह है ॥

इन्द्रोदेवता जगती छन्दः ।१२।१२।१२।१२।

विजानी॑ ह्या॒र्या॒न्ये च॒दस्य॑वो ब॒र्हि
 ष्मते॑रन्धया॒शासद॑व्र॒तान् । शाकी॑
 भव॒यज॑मानस्यचोदि॒ता वि॒श्वेत्ताते॑
 सध॒मादेषु॑चाकन ॥८॥

वि	वि+	-
जानी॑हि	वि+जानीहि	खूब पहचानो
आर्या॑न्	आर्यान्	आर्यों को
ये	ये	जो
च	च	और
दस्य॑वः	आर्य्य शत्रवः	आर्य्य शत्रु

वर्हिष्मते	वर्हिर्युक्ताय	कुशा विछाने वाले के लिये
रन्ध्रय	आयत्तोकुरु	बस में करो
शासत्	शासनंकुर्वन् (नुममावः)	ताड़ना करते हुए
अव्रतान्	व्रत रहितान्	व्रत से हीनों को
शाका	शक्तियुक्तः	प्रबल
भव	भव	हो
यजमानस्य	यजमानस्य	यजमानके
चोदिता	प्रेरकः	प्रेरक
विप्रवा	सर्वाणि (भेलोपः)	सूत्र को
इत्	एव	ही
ता	तानि	उनका
ते	तव	तेरे ..

<p>सधऽमादेशु</p>	<p>सहमाद्यन्त्येषु स्था- नेषु, (अर्थाद्यज्ञेषु) (भधिकरणेषु अथ सहस्य- सधादेश)</p>	<p>इकट्टे होकर— आनन्द करनेके स्थान (अर्थात् यज्ञों) में—</p>
<p>चाक्रन</p>	<p>कामये (कनीकान्ती, लडयॅलिट्)</p>	<p>कामना करता हू</p>

संस्कृतार्थः ।

(हे इन्द्र !) (स्वम्) आर्यान् ये, चाऽऽर्य्यशत्रवः
सन्ति तान् विजानीहि, व्रतहीनान् शासयन् बर्हिर्युक्ताय
(आर्याय) आयत्तीकुरु, यजमानस्य (च) शक्तियुक्तः
प्रेरको भव, (अहम्) तानि सर्वाप्येव तव (कर्माणि)
यज्ञेषु कामये ॥ ८ ॥

भाषार्थः ।

(हे इन्द्र !) आप आर्यों' को और जो, आर्य्य;
शत्रु हैं उनको खूब पहचानो, व्रतहीनों को ताड़ना
करते हुए कुशा विछाने वाले (आर्य्य) के वस, में
करो (और) यजमान के प्रवल प्रेरक बनो, मैं आप
के उन सब ही (कर्मों' को) यज्ञों में कामना
करता हूँ ॥ ८ ॥

(१) मत होन जो स्वेच्छावारी नियम और शास्त्र की
मर्यादा को न मानने वाले अनार्य्य लोग हैं ।

(२) मर्यात् आप के ये सब कर्म मुझे यज्ञ में आनन्द
देने वाले हैं ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ११२।१२।१२।१२।

अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रता नाभू-

भिरिन्द्रः प्रनथयन्ननाभुवः । वृद्धस्य

चिद्वर्धतोद्यामिन्नक्षतः, स्तवानो-

वमोविजघानसन्दिहः । ६।

अनुव्रताय	व्रताऽनुगाय	व्रत के अनकूल चलने वालेके लिये
रन्धयन्	आयत्ती कुर्वन्	वस में करता हुआ
अपव्रतान्	व्रत रहितान्	व्रत रहितों को
आभभिः	आभिमुख्येन भवन्ति, तैः (स्तोतृभिः)	स्तोताओं से
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
प्रनथयन्	घातयन् (अथहिंसाया रस्यनत्न छान्दसम्)	नाश कराते हुए

पनाभुवः	स्तुतिहीनान्	स्तुति हीनों को
वृद्धस्य	वृद्धिगतस्य	बढ़े हुए की
चित्	अपि	भी
वर्धतः	वर्धमानस्य	बढ़ते हुए की
द्याम्	द्युलोकम्	द्युलोक को
इनक्षतः	प्राप्नुवतः (नक्षगती, इवारोपजन इच्छान्दसः)	पहुंचने वाले की
स्तवानः	स्तुति कुर्वाणः	स्तुति करता हुआ
वमः	वम्रः	वम्र ऋषि ने
वि.	वि+	-
जघान्	वि+जघान	नाशकिया
सम्दिहः	समृद्धीः (दिह उपपत्त्ये, विद्यप)	सम्पत्तियों को

इन्द्रो व्रतानुगाय व्रतरहितानाऽऽयत्ती-कुर्वन्
स्तोतृभिः (च) स्तुतिहीनान्घातयन् (वत्तते), धृष्टि
गतस्याऽपि वर्धमानस्य, द्युलोकं प्राप्नुवतः (च दस्योः)
समृद्धीः स्तुतिं कुर्वाणो वज्रो विजघान ॥ ९ ॥

नापार्थः ।

इन्द्र, व्रत रहितों को व्रत के अनुकूल चलने
वालों के वस में करते हुए (और) स्तुति से हीनों को
स्तुति करने वालों द्वारा मारते (रहते हैं) स्तुति शील
वज्र (ऋषि) ने घड़े हुए (और) और भी बढ़ते हुए
द्युलोक को पहुँचने वाले (दस्यु) की सम्पत्तियों को
नाश किया ॥ ९ ॥

वज्र ऋषि की स्तुति से बल को प्राप्त करके इन्द्र ने वज्र
(वा धूली) रूप दस्यु की जो बहुत बढ़ गया था और अब भी बढ़
रहा था सम्पत्तियों का नाश किया और उस को द्युलोक में नहीं
पहुँचने दिया । इसी लिए ध मील से ऊपर मेघ नहीं हैं ॥

इन्द्रो देवता जगती छन्दः । १२ । १२ । १२ । १२ ।

तच्च द्यत्त उग्रना सहसा स हो विः

रोदसी मज्जना वाधते शवः । आत्वा-

वातस्थ नृमणो मनो युज आपूट्य माय

सवहम्नभिग्रवः ॥१०॥

तद्यत्	निर्मितयान्	रचा
यत्	यत्	जो
ते	तुभ्यम्	तेरे लिये
उग्रना	उग्रना	उग्रना (अंगरे) ने
सहसा	घलेन	घल से
सहः	घलम्	घल को
वि	वि +	-
रोदसी०	याशाष्टिष्यो	एलोक (मोर) एषिषी को
मज्जना	घलेन (निप० १५९)	घल से
बाधते	वि+बाधते, विलोडितयान् (ए० २०८२)	कंपा रिया

श्रवः	बलम्	बल
आ	आ +	-
त्वा	त्वाम्	तुझ को
वातस्य	वायोः	वायु के
नऽमनः	नरेपुमनो यस्य तत्सम्बुद्धौ	हे मनुष्यों में मन रखने वाले
मनऽयुजः	मनोमात्रेणयुक्ताः	मन से जोड़े गए
आ	आ +	-
पूर्यमाणम्	आ + पूर्यमाणम्	सब ओर से पूर्णको
अवहन्	आ + अवहन् आवहन्तु (लोडर्येण्ड)	लावें
अभि	प्रति	की ओर
श्रवः	(हवीरूपम्)अन्नम्	(हवि रूप)अन्न को

(हे इन्द्र!) उशना (ऋषिः) स्तुति बलेन यद्वलं
त्वदर्थनिर्मितवान्(तद्) बलं व्यावापृथिव्यौसहसाविलो-
डितवान्, हेनृमनः! सर्वत आपूर्यमाणं त्वां वातस्य
मनोयुजः(अश्वा हवीरूपम्)अन्नं प्रत्यावहन्तु॥१०॥

भाषार्थः।

(हे इन्द्र) उशना (ऋषि) ने स्तुति के बल से
जो बल आपके लिये रचा था, उस बलने साहस से
धुलोक (और) पृथिवीको कंपा दिया था, हे मनुष्यों में मन
रखने वाले! सब ओर से पूर्ण आपको वायुके मन से
जुड़ने वाले (घोड़े हवि रूप) अन्नके प्रति लावे ॥१०॥

ओ काम उशना ऋषि ने पूर्व काल में किया था वह भय भी
सम्भव है यदि हम भी स्तुति किया करें तो हमारी रक्षार्थे असमर्थ
भीरु निर्बल इन्द्र को फिर सयल कर सकते हैं ॥

इन्द्रो देवता जगती छन्दः । १२। १२। १२। १२।

मन्दिष्टयदुशनैकार्ष्ये सचा इन्द्रो

वङ्गवङ्गतराधितिष्ठति । उग्रीययि

निरप्रः स्रोतसासृजद् विशुष्णस्यः

दंष्टिता ऐरयत्परः १११

मन्दिष्ट	दृष्टवान्	हर्षित हुआ
यत्	यदा	जब
उशने	उशनसि	उशना पर
काव्ये	कवि पुत्रे	कवि के पुत्र पर
सचा	सह(भूत्वा)	साथ (होकर)
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
वद्ध०	अद्वौ. (यकिकौटिल्ये)	घोड़ों को
वद्धुऽतरा	अतिशयेन कुटिल गमनौ (विभक्तेराकारः)	बहुत टेढ़े चलने वालों को
	अधि +	

तिष्ठति

अधि+तिष्ठति,
आरूढवान्
(लडयेंलट्)

चढ़ा

उग्रः

उग्रः

भयानक ने

ययिम्

मेघात्
(पञ्चम्ययेंद्वितीया)

मेघ से

निः

निः+

-

अपः

जलानि

जलों को

स्रोतसा

प्रवाहरूपेण

प्रवाह रूप से

असृजत्

निः+असृजत्
मोचितवान्

छुड़ाया

वि

वि+

--

शुष्णस्य

शुष्णस्य

शुष्ण कं

दृष्टिताः

दृष्टानि

दृढ़

एरयत्

वि+एरयत्
भेदितवान्

तोड़ दिया

पुरः

दुर्गाणि

दुर्गों को

संस्कृतार्थः ।

यदेन्द्रः सह (भूत्वा) कविपुत्रे उशानसि दृष्टवान्
(तदा) कुटिलगमनावश्वावारूढवान् (आरुह्य च सः)
उग्रो मेघात् प्रवाह रूपेण जलानि मोचितवान्,
शुष्णस्य दृढानि दुर्गाणि (च) भेदितवान् ॥११॥

भाषार्थः ।

जब इन्द्र साथ (हो कर) कविके पुत्र उशाना पर
हर्षित हुए (,तब) तिछीं गति वाले घोड़ों पर चढे,
(फिर) उस भयानक(इन्द्र)ने वादल में से प्रवाह रूप
से जलों को छुड़ाया और शुष्ण 'के दुर्गों' को तोड़
डाला ॥

जब इन्द्र उशाना के अर्पण किए हुए सोम से हर्षित हुए तब
वह वीर, शुष्ण को जो अनावृष्टि रूप असुर पृथिवी को सुका
रहा था, मारने के लिए इतरा कर चलने वाले तेज घोड़ों के रथ
पर सवार हुए और वादलों में से प्रवाह रूप से जल को छुड़ा
कर पृथिवी को सिन्धुन किया ।

इन्द्रो देवता जगतीन्द्रः । १२। १२। १२। १२।

आस्मारथं वृषपाणेषु तिष्ठसि प्रा-

थर्यातस्य प्रभृताये पुमन्दसे । इन्द्र-

यथासुतसोमेषुचाकनोऽनर्वाणंप्रली

कमारोहसेदिवि ॥१२॥

आ	आ+	-
स्म	(पूरणः)	-
रथम्	रथम्	रथ पर
वृषऽपानेषु	वृषस्य सेचन स- मर्थस्य(सोमस्य) पानेषु	वीट्ययुक्त(सोम) पानों में
तिष्ठसि	आ+तिष्ठसि, आरोहसि	चढ़ते हो
शाट्यातस्य	शाट्यातस्य (राजर्षेः)	शाट्यात राजर्षिके
प्रऽभृताः	सम्पादिताः	सिद्धहुए २
येषु	येषु	जिन में

मन्द्सै	दृष्यसि	हर्षित होते हो
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
यथा	यथा	जैसे
सुतऽसोमेषु	सुता निष्पीडिता सोमा येषु(यज्ञेषु)	सोम निचोड़े जाने वाले(यज्ञों)में
चाकनः	कामयसे (कनीकान्तौले टिसिपि छछान्दस.दलुः)	तू कामनाकरताहै
अनर्वाणम्	अव्याहतम् (आ०को०)	न रुकने वाले को
प्रलोकम्	यशः	यश को
आ	आ +	-
रौहसे	आ + रौहसे प्राप्नोषि (सा०भा०)	प्राप्त करते हो
दिवि	दुलोके	दुलोक में

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! (त्वम्) सेचनं समर्थस्य (सोमस्य) पानेषु
 (प्राप्तुम्) रथमारोहसि, येषु (सोमेषु) दृष्यसि (ते)
 शार्यातस्य (राजर्षेः सम्बन्धिनः) सम्पादिताः
 (सन्ति), यथा (त्वम्) अभिपुत सोमेषु (यज्ञेषु) कामयसे
 (तथा) द्युलोकेऽव्याहतं यशः प्राप्तोषि ॥ १२ ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र आप वीर्य युक्त (सोम) के पीने (के लिये
 जाने को) रथ पर चढ़ते हैं, जिन (सोमों में) आप
 मोद करते हैं (वे राजर्षि) शार्यातने सम्पादन किए
 हैं, ज्युं २ आप सोम निचोड़े जाने वाले (यज्ञों) की
 कामना करते हैं, त्यूं २ आप न रुकने वाले यश
 को द्युलोक में प्राप्त करते हैं ॥ १२ ॥

जब राजा शार्यात ने सोम से इन्द्र को मदयुक्त किया तब
 उन्होंने ने घड़े २ वीर्य युक्त कर्म किए, जिन से उनका यश द्युलोक
 में चढ़ा, ऐसे ही अब भी अब कोई इन्द्र को सोम अर्पण करता है
 तब वे रथ पर चढ़ कर दस्युवधादि वीरताके अनेक कर्म करते हैं ।

इन्द्रो देवता जगती छन्दः । १२।१२।१२।१२

अददा अभि स हते व च स्य वे क्व च्ची

वते व च यामिन्द्र सुन्वते । मीना भवो

वृषणप्रवस्यसुक्रतो विप्रवेत्तातेसव-
नेषुप्रवाच्या ॥१३॥

अददाः	दत्तवान्	दी
अभाम्	अल्पाम् (युवती मित्यर्थः)	जवान को
महते	वृद्धाय	बुढ़े के ताई
वचस्यवे	स्तुतिकुशलाय	स्तुति में चतुर के ताई
कक्षीवते	कक्षीवते	कक्षीवान् ऋषि के ताई
वृचयाम्	वृचयाख्याम्	वृचया नाम वाली को
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
सुन्वते	सोमनिष्पीडनं कुर्वत	सोम निचोड़ने वाले के ताई
मेना	वाणी (निघं० ११११)	वाणी

अभवः	अभवः	हुए
वृषणश्वस्य	वृषणश्वस्य (राज्ञः)	वृषणश्व(राजा) की
सुकृती०	हे सुकर्मन् !	हे सुन्दर कर्मों से युक्त
विप्रवा	सर्वाणि	सम्पूर्ण
इत्	एव	ही
ता	तानि	वह
ते	तव	तेरे
सवनेषु	सोमोत्सवेषु	सोमके उत्सवोंमें
प्रवाच्या	प्रकर्षेण वक्त- व्यानि	खूब कथन करने योग्य हैं

मापार्थः ।

हे इन्द्र ! (त्वम्) सोमनिष्पीडनं कुर्वते स्तुति
कुशलाय वृद्धाय कक्षीवते वृचयार्यां युवतिं दत्तवान्
हे सुकर्मन् ! (त्वम्) वृषणश्वस्य (राज्ञः) वाणी

रूपोऽभवः, तानि सर्वाण्येव तत्र (कर्मणि) सोमोत्स-
वेषु प्रकर्षेण वक्तव्यानि ॥ १३ ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र (आपने) सोम निचोड़ने वाले स्तुति में
चतुर बुद्धे कक्षीवान के ताई वृचयानाम वाली यु-
वता को दिया, हे सुन्दर कर्मों से युक्त, (आप)
वृषणश्व (राजा के) वाणी रूप बने, ये सम्पूर्ण ही
आपके (कर्म) सोम के उत्सवों में खूब कथन करने
योग्य हैं ॥ १३ ॥

कक्षीवान ऋषि के वर्णनके लिए देखो पृ० ३६३, सोम निष्पीडन
और स्तुति के पुण्य से इनको वृद्धावस्थामें वृचयानामी युवति स्त्री
ने बरा ओर वे फिर युवा हुए ।

वृषणश्व राजा सदा इन्द्र का नाम जपता था, इसलिए इन्द्र
उस की वाणी रूप बने, नाम जपने का उपदेश ऋ० ७।२।५ में भी
है "सद ते नाम स्वयशो विवस्मि"

इन्द्रो देवता त्रिष्टुप्लन्दः । १११११११११११॥

इन्द्रो अश्रायि सुधयो निरेके पजेषु-

स्तोमो दुट्यो नयूपः । अत्रवयुर्गव्यूर-

थयुवसुय रिन्द्रइद्रायःक्षयतिप्रय-
न्ता ॥ १४ ॥

इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
अश्रायि	आश्रयति (लडयैलुड्)	आश्रय देता है
सुधयः	शोभन कर्मणः	सुकर्म करने वालों को
निरिके	नितरांरिकेजाते	भीड़ में
पजेषु	अङ्गिरस्सु (पद्माचामङ्गिरस्तरति शादघायनः)	अङ्गिरा वंशियों में
स्तोमः	स्तोमरूपः	स्तोत्ररूप
दुट्यः	द्वारिभवः	द्वारमें होने वाला
न	इव	न्याई
यपः	स्तम्भः	खंभा

अश्वयुः	अश्वानिच्छन् (अश्वचउप्रत्ययः)	घोड़ों की कामना करता हुआ
गव्युः	गाइच्छन्	गौओं की इच्छा करता हुआ
रथयुः	रथानिच्छन्	रथों की इच्छा करता हुआ
वसुयुः	धनानीच्छन्	धनों की इच्छा करता हुआ
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
इत्	एव	ही
रायः	सम्पत्तेः	सम्पत्ति का
क्षयति	शास्ति (मा०फो०)	राज्य करता है
प्रयन्ता	प्रदाता,	देने वाला

संस्कृतार्थः ।

अङ्गिरस्तु स्तोमरूपो द्वारिभवःस्तम्भइव (स्थिरः)
इन्द्रो नितरां रिक्तेजाने सुकर्मण आश्रयति, अश्वान्
गा रथान् धनानि (च)कामयमान इन्द्र एव सम्पत्तेः
शासिता प्रदाता (च) अस्ति ॥१४॥

अङ्गिरा वंशियों में स्तोत्र रूप (और) द्वार में होने वाले खंभे की न्याइँ (निश्चल) इन्द्र सुकर्म करने वाले को भीड़ में आश्रय देते हैं, घोड़े, गौ, रथ (और) धन की कामना करने वाले इन्द्र ही सम्पत्ति के स्वामी (और) देने वाले हैं ॥ १४ ॥

इन्द्र जो अङ्गिरा वंशियों में स्तोत्र रूप हैं, अर्थात् अङ्गिरा जिन की सदा स्तुति करते हैं पुण्यात्मा को भीड़में सदा शरण देते हैं और जैसे मनुष्य घरके द्वार से खंभेका निदर्शक होकर सहारा ले सकता है वैसे निदर्शक होकर पुण्यात्मा इन्द्रकी शरण ले सकता है ।

मक्त के लिए इन्द्र घोड़े, गौ, रथ और धन की कामना करते हैं, वही इन के देने वाले और वही इनके स्वामी हैं ।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११

इ॒दं न॑मो॒ ब्र॒ह्म॒भाय॑स्व॒राज॑ स॒त्य-

शु॒भ्राय॑त॒वसे॑ऽवाचि । अ॒स्मिन्नि॑न्द्र

वृ॒जने॒सर्व॑वी॒राः स्मत्सू॒रिभि॒स्तव॑श-

र्मन्त॑स्याम ॥१५॥

इ॒दम्	इ॒दम्	यह
नमः॑	नमः	नमस्कार
वृष॑भाय	श्रेष्ठाय	श्रेष्ठ के ताई
स्वऽरा॑ज	स्वकीयेन(तेजसा) दीप्यमानाय	अपने (तेजसे) प्रकाशमानकेताई
{ सत्य॑ऽग्नि ष्माय	सत्यवलाय	सच्चे बली के ताई
तव॑से	प्रवृद्धाय	बढेहुए के ताई,
अवा॑चि	कथितम्	कही गई हे
अस्मि॑न्	आस्मन्	इस से
इन्द्र॑	ह इन्द्र !	हे इन्द्र
वृज॑न	सह्रामे!	युद्ध में

सर्व॑ऽवीराः	सर्व॑ वीर युक्ताः	सम्पूर्ण॑ वीरों से युक्त
स्मत्	सुष्ठु	भली प्रकार
सूरि॑ऽभिः	स्तोतृभिः (सह) (निघं० ३।१६)	स्तोताओं के (साथ)
तव	तव	तेरी
शर्मन्	शरणे	शरण में
स्थाम	स्याम	हम होवें

संस्कृतार्थः ।

श्रेष्ठाय, निज-(तेजसा) दीप्यमानाय, सत्य-
बलाय प्रवृद्धाय (च भवते) इदं नमोऽवाचि, हे इन्द्र !
(वयम्) अस्मिन् सङ्ग्रामे सर्ववीरयुक्ताः, स्तोतृभिः
(सह) तव शरणे सुष्ठु स्याम ॥ १५ ॥

भाषार्थः ।

श्रेष्ठ (और) अपने (तेजसे) प्रकाशमान सच्चे
बली (और) बड़े हुए (आपके) ताई यह नमस्कार
उच्चारण की गई है । हे इन्द्र हम इस युद्ध में
सम्पूर्ण वीरों से युक्त (और) स्तोताओं के (साथ) भली
प्रकार आप की शरण में होवें ॥ १५ ॥

श्र०मं०१ सू०५२ मं०१ (१२१२)

“इस युद्ध में” जो उपस्थित है। युद्ध में सच्चे बली और घड़े हुए इन्द्र की शरण लेने से भय नष्ट होजाता है और विजय प्राप्त होती है।

इत्येकपञ्चाशत्सूक्तम्

ऋ०मं०१ सू० ५२ ।

विनियोग—यह सूक्त गवामयन के विपुषत् नामी मध्यम दिन में मरुतों के शस्त्र में पड़ा जाता है। (आ०धौ० सू०उ० २।६।६)

इस सूक्त में इन्द्र के पराक्रम और घोर कर्मों की स्तुति है जिन में घृष वधादि कई कर्म ऐसे हैं जिन के लिये मरुद्गण ने स्तुति द्वारा उत्साह बढ़ा कर उनकी सहायता की। जब इन्द्र भी अपने सहायक मित्रों के वचन से प्रोत्साहित होकर एक से बढ़कर दूसरा घोर कर्म करते हैं तो निर्बल मनुष्य को किसी बड़े कामके कारभरेमें मित्रोंके अनुमोदन की कितनी भारी आवश्यकता है ॥

इन्द्रोदेवता सव्यआङ्गिरस ऋषिर्जगतीछन्दः ।

१२।१२।१२।१२॥

त्यं सुमेषं महयास्वविदं शतं यस्य

सुभ्वः साकमीरते । अत्यं नवाजं हव-

नस्यदं रथ मेन्द्रं बहत्यामवसे सुवृत्ति-

भिः । १ ।

त्यम्	तम्	उसको
सु	सु+	-
मेषम्	सेक्कारम् (नरम्)	नर को
मह्य	सु+मह्य, सुष्टु पूजय (महपूजायाम्)	खूब पूजो
स्वःऽविदम्	ज्योतिषो लम्भकम् (अन्तर्भावितण्यर्थः)	ज्योति के प्राप्त कराने वाले को
शतम्	शतम्	सैंकड़ों
यस्य	यस्य	जिसके
सऽभवः	सुष्टु भवन्ति ते, सौम्याः (उच्यते : प्राप्तीयणादेश दृष्टान्दसः)	भद्र
साकम्	सह	साथ २
इरते	गच्छन्ति	चलते हैं

अत्यम्	अश्वम्	घोड़ा
न	इव (निघं० १।१४)	की न्याई
वाजम्	बल रूपम्	बल रूप
{ हवनऽ- स्यदम्	हवने स्यदो वेगो यस्य, तम्	बुलाने परं शी आने वाले
रथम्	रथिनम् (आ०को०)	रथी को
आ	आ +	-
इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्रको
ववृत्त्याम्	आ + ववृत्त्याम् आवर्तयामि	फेरता हूँ
अवस्ते	रक्षाऽर्थम्	रक्षा के लिये
सुहृत्तिऽभिः	सुष्टुनमनैः (भावर्जनं नमनम्)	बहुत नमस्कारोंसे

संस्कृतार्थः ।

तं ज्योतिषोलम्भकं नरं सुष्टुपूजय, यस्य शतं
सौम्याः (देवाः) सार्धं गच्छन्ति (अहम्) अश्वमिव

बलवन्तं . रथिनमिन्द्रं सुष्ठुनमनैः रक्षार्थम् (स्वाभि
मुखम्) आवर्तयामि ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

उस ज्योति के प्राप्त कराने वाले नर (वीर)
को खूब पूजो, जिस के साथ सैंकड़ों भद्र (वीर)
चलते हैं, मैं घोंड़े जैसे बलवान् . बुलाने पर शीघ्र
आने वाले रथी इन्द्र को बहुत नमस्कारों से (अपनी
ओर) फेरता हूँ ॥ १ ॥

(१) भद्र वीरों से मरुद्गण का आशय है ।

इन्द्रोद्देवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२।

सपर्वती^१नध^२रुणो^३ष्वच्यु^४तः स^५हस्र^६

मूति^७स्तविषी^८षुवाह^९धे । इन्द्रो^{१०}यद्वृ^{११}त्र

सव^{१२}धीन्नदी^{१३}वृत् स^{१४}जन्न^{१५}र्णासि^{१६}जह्-

षाणो^{१७}अन्धसा^{१८}।२।

सः	सः	वह
पर्वतः	पर्वतः	पर्वत

न	इव	की न्याईं
धरुणेषु	जलेषु (निघं०१।१२)	जलों में
अच्युतः	चलनराहित्येन स्थितः	निश्चल ठहरा हुआ
{ सहस्रम् ऽकृतिः	सहस्रमूतयोयस्य सः(लुगनावश्छान्दसः)	सहस्रों रक्षाओं से युक्त
तविषीषु	वलेषु	वलों में
ववृधे	ववृधे	बढ़ा
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
यत्	यदा	जब
वृत्रम्	वृत्रम्	वृत्र को
अवधीत्	हतवान्	मारा
नदीऽवतम्	उदकानामावर- कम् (नदनान्मद्यआपः)	जलों के रोकने वाले को

उ॒ठ॒ज॒न्	नि॒ष्पी॒ड॒यन्	नि॒चो॒ड॒ता हुआ
अ॒र्षो॑सि	ज॒लानि (निघं० १।१२)	जलों को
ज॒हृ॑षाणः	अति॒शये॑न हृष्यन्	अत्यन्त हर्षित होता हुआ
अ॒न्ध॑सा	सोमे॑न	सोम से

संस्कृतार्थः ।

जलेषु पर्वत इव निश्चलः सहस्ररक्षाभिर्युक्तः स इन्द्रो वलेषु बवृधे, यदा सोमेनाऽत्यन्तं हृष्यन् (मेघेभ्यः) जलानि निष्पीडयन्नुदकानामावरकंवृत्रं हतवान् ॥२॥

भाषार्थः

जलों में पर्वत की न्याईं निश्चल ठैरे हुए सहस्रों रक्षाओं से युक्त वह इन्द्र वलों में बढे । जब सोम से अत्यन्त हर्षित हुए २ (और बादलों से) जलों को निचोड़ते हुए उन्होंने जलों के रोकने वाले वृत्र को मारा ॥ २ ॥

शत्रु से युद्ध प्रकट करने से पहले वलों में पढना, और सहस्रों रक्षाओं और अत्यन्त हर्ष से युक्त होना आवश्यक है । नहीं तो निस्सन्देह नाश होता है ॥

इन्द्रोदेवता'जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२॥

सहि॒हरो॒द्वरि॒षुव॒व्रज॒धनि च॒न्द्र-
वृ॒ध्नोम॒दवृ॒द्धोम॒नीषि॒भिः । इन्द्रं॒ तम-
ह्वे॒स्वप॒स्यथा॑धि॒या मं॑हि॒ष्ठरा॒तिंस-
हि॒पप्रि॒रन्ध॑सः । ३ ।

सः	सः	वह
हि	खलु .	सचमुच
१ द्वरः	आवरकः (द्वृ.आवरणे, अच्.प्रत्ययः)	रोकने वाला
२ द्वरिषु	आवरकेषु फतरि इ प्रत्ययः)	रोकने वालों में
२ वव्रः	प्रच्छन्नः (वृञ्.आवरणे, कर्मणि क.प्रत्ययो द्विर्नावृष्ट्या- न्दस)	छिपा हुआ
२ ऊधनि	स्तने	धन में

चन्द्रबुधनः	आल्हादक मूलः	आनन्द देने वालों का मूल
मदः	मदाःसोमास्ते वर्धितः	सोमरसों से बढ़ाया हुआ
मनीषिभिः	मेधाविभिः	बुद्धिमानों से
इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
तम्	तम्	उसको
अह्ने	आह्वयामि	में बुलाता हूँ
{ सुऽअप- स्यया	शोभनकर्मच्छा युक्तया	सुकर्मकी इच्छा वाली से
धिया	धुङ्घा	बुद्धि से
{ मंहिष्ठ- ऽरातिम्	मंहिष्ठाप्रवृद्धा रातिदानंयस्य, तम्	बड़े हुए दान वाले को
सः	सः	वह
हि	यतः	यथोंकि

पप्रिः	पूरयिता	पूर्ण करने वाला
अन्नसः	अन्नस्य (निघं०२।७)	अन्न के

सस्त्रुतार्थः ।

सः खलु आवरकेष्वावरकः (आकाश-)स्तने प्रच्छन्नः, आल्हादकमूलः, मेधाविभिः सोमैर्वर्धितः (चाऽस्ति) (अहम्) प्रवृद्धदानं तमिन्द्रं शोभनकर्म-च्छायुक्तया वृद्ध्या आह्वयामि यतः सोऽन्नस्य पूर-यिता (अस्ति) ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

सचमुच वह रोकने वालों में रोकने वाला, (आकाश के) थन में छिपा हुआ, आनन्द देनेवालों का मूल (और) वृद्धिमानों से सोम रसों द्वारा बढ़ाया गया (है) मैं उस बड़े हुए दान वाले इन्द्र को सुकर्म की इच्छा करने वाली वृद्धि से बुलाता हूँ, क्योंकि वह अन्न के पूर्ण करने वाले (हैं) ॥ ३ ॥

(१) 'रोकने वालों में रोकने वाला' अर्थात् जो वृष्टि को रोकने वाले वृत्रादि असुर हैं इन्द्र उन को इस रोकने के कर्म से रोकने वाले हैं ।

(२) आकाश का थन घादल हैं, इन्द्र उन घादलों में विद्युत् रूप से छिपे हुए हैं ।

(३) इन्द्र ही सच्चे आनन्द को देने वाले पदार्थों को मूल हैं । जो आनन्द इन्द्र से भिन्न है वह दुःख का मूल है ।

(४) सुकर्म की इच्छा वाली बुद्धि से ही उस बड़े दानी को घुलाना चाहिए । बुरे कर्म में लगाया हुआ उस का दान भी कल्याण को नहीं करता ।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२॥

आयं॑पृ॒णन्ति॑दि॒विस॒न्नव॑र्हिषः स-
म॒द्रं॑नसु॒भ्वः॑स्वा॒अभि॑ष्टयः । तं॑वृ॒त्र-
ह॒त्ये॑अनु॒तस्यु॑रु॒तयः॑ शु॒ष्मा॒इन्द्र॑स-
वा॒ताअ॑रु॒तप्स॑वः ।४।

आ	आ+	-
यम्	यम्	जिस को
पृ॒णन्ति॑	आ+पृणन्ति, सर्वतःपूरयन्ति	सब ओरसे भरतेहैं
दि॒वि	दुलोक	दुलोक में

{ सन्नऽव- र्हिषः	जलमेववर्हियेषांते (सन्नेत्युदक नाम निघ०१।१२)	जल रूपी कुशा वाले
समुद्रम्	समुद्रम्	समुद्र को
न	इव	की न्याई
सुऽश्वः	सौम्याः	भद्र
स्वाः	स्वकीयाः	अपे
अभिष्टयः	सहायकाः (भा०को०)	सहायक
तत्	तम्	उसको
वृत्रऽहत्ये	वृत्रहनने (लिङ्गव्यत्ययदर्शान्दस)	वृत्र के मारने में
अनु	अनु +	-
तस्थुः	अनु + तस्थुः,	पीछे ठहरे
ऊतयः	रक्षितारः	रक्षा करने वाले

शु॒ष्माः	(शत्रूणां)शोष- यितारः	(शत्रुओं के) सुकाने वाले
इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
अवा॒ताः	चलन रहिताः (वातिर्गतिकर्मा निघं० १२।१४)	न ढिगने वाले
{ अ॒क्रु॒तः ८सवः	अहुतोऽकुटिलः प्सरूपं येषां ते, ऋजुरूपाः	सीधे रूप वाले

संस्कृतार्थः ।

यं द्युलोक उदकवर्हिपः सौम्याः स्वकीयाः सहा-
यकाः समुद्रमिव सर्वतः पूरयन्ति, तमिन्द्रं वृत्रहनने
(शत्रूणां) शोषयितारश्चलन रहिता ऋजुरूपा रक्षि-
तारः (मरुतः) अनुत्स्थुः ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

जिस को द्युलोक में जल रूपी कुशा वाले भद्र
अपने सहायक समुद्र की न्याईं सब ओर से भरते
हैं, वृत्र को मारते समय (शत्रुओं के) सुकाने वाले
न ढिगने वाले, सीधे रूप वाले रक्षक (मरुत) उस
इन्द्र के पीछे ठेरे ॥ ४ ॥

जैसे नदियां समुद्र को सब ओर से भरती हैं। इसी प्रकार इन्द्र के सहायक और भक्त मरुद्गण घुड़ों में जल रूपा धुआ बिछा कर इन्द्र को सोम रस से पूर्ण करते हैं। इन्हीं लोगों ने वृत्र को मारते समय इन्द्र को पीछे ठेर कर "प्रहर भगवो जहि वीर्यस्य" इत्यादि वचनों से उन का उत्साह बढ़ाया था ॥

इन्द्रोदेवता जगती छन्दः । १२ । १२ । १२ । १२ ॥

अभि स्ववृष्टिं सदे अस्य युध्यती
रथवीरिव प्रवणी सस्रुतयः । इन्द्रोय-

वजीधुपमाणो अन्धसा भिनवलस्य

परिधीरिव चितः ॥ ५ ॥

अभि

प्रति

की ओर;

स्ववृष्टिं सदे

स्वा अधीना वृष्टिं
यस्य तम् (वृत्रम्)
सदे (सन्धि)

वृष्टि को घस में
करने वाले को
सद (होने पर)

अस्य

अस्य

इस के

वलस्य	वलस्य	वल के
{ परिधीन् इव	परिधीनिव	जैसे घेरों को
चितः	त्रितः	त्रित ने

संस्कृतार्थः

(सोमस्य)मदे वृष्टिप्रतिबन्धकं प्रति युध्यतोऽस्य सहायकाः (मरुतः) निम्नदेशे वेगवत्यः (नद्यः) इव [इन्द्रम्]प्रतिजग्मुः, यदा वज्रयुक्त इन्द्रः(पीतेन)सोमेन प्रगल्भः सन् त्रित[रूपेण]वलस्य पारधीनिव(सम्पादितान् दुर्गान्) अभिनत् ॥५॥

भाषार्थः ।

(सोम के) मद में वृष्टि रोकने वाले के साथ युद्ध करते हुए इसके सहायक (मरुत)(इन्द्र को) ऐसे प्राप्त हुए जैसे वेगवाली नदियां नीचे स्थान में (प्राप्त होती हैं) जब वज्रधारी इन्द्र ने सोम (पान करने से) वेधड़क होकर त्रित (रूप से) घेरों की न्याई (घनाए हुए), वल के (गर्दों) को तोड़ डाला ॥ ५ ॥

त्रित, द्वित और एकत ये तीनों पापिंध अग्नि के पूर्ब रूप हैं जो मनुष्य सृष्टि से पहले हो चुके हैं। इन में से त्रित विद्युत है जो इन्द्र का भी एक रूप है विद्युत रूप से ही इन्द्र 'बल' अर्थात् वृत्रके दुर्गों को तोड़ कर वर्षा करते हैं।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२।।

परि॑ घृ॒णा च॑र॒तिति॑त्विषे॒श्वी ऽपो

वृ॒त्वीर॑ज॒सो वु॑ध्न॒माश्र॑यत् । वृ॒त्रस्य॑य

तप्र॑व॒णो दु॒र्गभि॑श्च॒वन्नो॑ निज॒घन्ध॑ह॒न्वो-

रिन्द्र॑त॒न्यतु॑स् । ६।

परि॑	परितः	चारों ओर से
इ॒म्	(पूरणः)	-
घृ॒णा	तेजः (पृणुदीप्ती)	तेज
च॒र॒ति	व्याप्नोत् (लडघेंलड्)	व्याप्त हुआ
ति॒त्वि॒षे	दीप्तवान्	चमका

श्रवः	बलम्	बल
श्रपः	अपः+	-
वृत्वी	अपः+वृत्वी जलानामावरकः	जलों के रोकने वाला
रजसः	अन्तरिक्षस्य	अन्तरिक्ष के
बुधनम्	मूलम्	पेदे में
आ	आ+	-
अशयत्	आ + अशयत् (शीङ्स्वप्ने)	सोंया
वृत्रस्य	वृत्रस्य	वृत्र के
यदा	यदा	जब
वर्ण	निम्न प्रदेशे	नीचे के स्थान में
दुःखभि- प्रवनः	यस्य व्यापनं दुःखेन गृहीतुं शक्यते सः (प्रहउपादाने, अगूष् व्याप्ता)	जिसके फैलने को रोकना कठिन है

निऽजघ्न्य	प्रहृतवान्.	मारा
हन्वोः	मुख पादर्वयो.	दोनों जड़ों के
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
तन्यतुम्	वज्रम् (आ०को०)	वज्र को

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! (त्वाम्) तेजः परितो व्याप्तोत्, (तव) चलं (च) दीप्तवान्, जलानामावरकः (च) अन्तरिक्षस्य मूलप्रदेशे शयितवान् यदा (त्वम्) दुर्ग्रह व्यापनस्य वृत्रस्य हन्वोः प्रवणेदेशे वज्रप्रहृतवान् । ६

भाषार्थः ।

हे इन्द्र (आप को) तेज सब ओर से व्याप्त हुआ, आप का चल चमका (और) जलों के रोकने वाला अन्तरिक्ष के पेंदे में सोया, जब आपने न रुकने वाले विस्तार युक्त वृत्र के जड़ों के नीचे के स्थान में वज्र को मारा ॥ ६ ॥

(१) अन्तरिक्ष का पेंदा अर्थात् पृथ्वी, जिस पर वृष्टि के रोकने वाला वृत्र घृलि के फल रूप से सिरा । ६ ॥

(२) जड़ों के नीचे का स्थान प्रीया (गर्दन) है

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः।१२।१२।१२।१२।

ऋदं न हि त्वान्युषन्त्युर्मयो ब्रह्मा-
 णीन्द्रं तव यानि वर्धना। त्वष्टा चित्ते
 युज्यं वा ह्यधेशव स्त तक्षवज्रमभिभू-
 त्यो जसम् ।७।

ऋदम्	जलाशयम्	ताल को
न	इव	जैसे
हि	खलु	सचमुच
त्वा	त्वाम्	तुझ को
निःकृप- न्ति	प्राप्तुवन्ति	प्राप्त होते हैं
ऊर्मयः	जलप्रवाहाः (सा०मा०)	जल के प्रवाह
ब्रह्माणि	स्तोत्राणि	स्तुतियों

इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र ;
तव	तव	तेरे
यानि	यानि	जो
वर्धना	वर्धयितृणि (करणेव्युट्, शैलीपः)	बढ़ाने वाले
त्वष्टा	त्वष्टा	त्वष्टा ने
चित्	अपि	भी
ते	तव	तेरे
युज्यम्	स्वीयम्	निजके
बृधे	वर्धितवान् (अन्तर्माधितण्यर्थः)	बढ़ायां
श्वः	वलम्	धल को
ततश्च	तक्षितवान्	धड़ा
वज्रम्	वज्रम्	वज्र को

अभिभूति ऽओजसम्	अभिभूयते परा-	पराजय करनेवाले
	जीयते येन बलेन तम्	बलसे युक्त को

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! तव वर्धयितृणि यानि स्तोत्राणि (सन्ति, तानि) जलप्रवाहा हृदमिव त्वां खलु प्राप्नुवन्ति, त्वष्टाऽपि तव स्वीयं बलं वर्धितवान् अपराजितबलम् तव वज्रम् (च) तक्षितवान् ॥ ७ ॥

मापार्थः ।

हे इन्द्र आपके बढ़ाने वाले जो स्तोत्र हैं वे सचमुच आपको (ऐसे) प्राप्त होते हैं जैसे ताल को जल के प्रवाह, त्वष्टा ने भी आपके निजके बलको बढ़ाया (और) पराजय करने वाले बलसे युक्त (आपके) वज्र को घड़ा ॥ ७ ॥

(१) जय वृष्टि होती है, तो ग्राम के समीप छोटी छोटी गादियां बढ़ कर तलाओं में पहुंचती हैं, और घट ताल बढ़ता जाता है। इसी प्रकार हमारी स्तुतियों से इन्द्र बढ़ते हैं।

(२) बल इन्द्र में स्वयं विद्यमान है परन्तु त्वष्टा ने जो वृष्टि पत्रों की फारीगरी के अमिमानी देवता हैं वज्र को घटा कर इन्द्र का बल और भी अधिक किया।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः।१२।१२।१२।१२।

जघन्वाँउहरिभिःसम्भतक्रत

विन्द्रवृत्रंमनुषेगातुयन्नपः। अयच्छ

थावाह्वीर्वज्रमायस मधारयोदिव्या-

सूर्यहृशे । ८।

५

जघन्वान्	हतवान् (हन्तलिट् क्वसु)	मारा
जम्०	(पूरण)	-
हरिऽभिः	अश्वै	घोडों से
{ सम्भतऽ- क्रतो०	हे सम्पादित बल	हे बलको सपादन करने वाले
इन्द्र	हे इन्द्र ।	हे इन्द्र
वृत्रम्	वृत्रम्	वृत्र को

मनुषे	मनुष्याय (व्यत्ययदृष्टान्दसः)	मनुष्य के लिये
गातुऽयन्	प्रापयन्	प्राप्त कराता हुआ
अपः	जलानि	जलों को
अयच्छथाः	धृतवान् (इयत्ययेनाऽऽत्मतेपदम्)	धारण किया
बाह्वीः	भुजयोः	भुजाओं में
वज्रम्	वज्रम्	वज्र को
आयसम्	अयोमयम्	लोहे के(वने हुए) को
अधारयः	स्थापितवान्	धारण किया
दिवि	दुलोके	आकाश में
आ	(समुच्चयाऽर्थः)	और
सूर्यम्	सूर्यम्	सूर्य को
दृशे	दृष्टुम्	दर्शन के लिए

सस्कृतार्थः ।

हे अश्वैः सम्पादित बल ! इन्द्र ! (यदा) मनु-
ष्याय जलानि प्रापयन् (त्वम्) वृत्रं हतवान् (तदा)
अयोमयं वच्चं दाहोर्धृतवान् (लोकानाम्) दर्शनाय
द्युलोके सूर्यम् (च) स्थापितवान् ॥ ८ ॥

भाषार्थः ।

हे घोड़ा द्वारा बलको सम्पादन करने वाले इन्द्र !
(जब) मनुष्य के लिए जलो को प्राप्त कराते हुए
आपने वृत्र को मारा तब आपने लोहे के वच्च को
भुजाओं में लिया (और लोकों के) दर्शन के लिए
आकाश में सूर्य को स्थापन किया ॥ ८ ॥

(१) शत्रु के साथ युद्ध करने में घोड़े भी बल की सामग्री में एक
प्रधान अंग हैं ।

(२) सूर्य का दर्शन इस पृथिवी पर प्रथमज, वृत्र को मारने
से ही हुआ है [देसो पृ० ७५६]

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

बृहत्स्वप्नचन्द्रममवद्यदुकथ्य१

मक्षयवतभियसारीहणदिवः। यन्मा

नुषप्रधनाद्द्वन्द्वमृतयः स्वर्नुषाचोम-
रुतोऽमदन्ननु ॥६॥

बृहत्	महत्	महान को
स्वऽचन्द्रम्	स्वतआह्लादकम्	स्वयं आनन्द देने वाले को
अमऽवत्	बलयुक्तम् (आ०को०)	बल युक्त को
यत्	यत्	जो
उक्थयम्	स्तुतियोग्यम्	स्तुति योग्य को
अक्षरवत्	कृतवन्तः	किया
भियसा	भयेन (सुगागमश्छान्दस.)	भय से
रोहणम्	आरोहणहेतुभूतम्	प्राप्त कराने वालेको
दिवः	स्वर्गस्य	स्वर्ग के
यत्	यदा	जब

{ मानुषः- प्रधनाः	मनुष्य हित सङ्ग्रामाः	मनुष्यों के लिए युद्ध करने वाले
इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
ऊतयः	सहायकाः	सहायक
स्वः	द्युलोके (अव्ययम्)	द्युलोक में
नऽसाचः	मनुष्यान्सेवमानाः (एव सेवने)	मनुष्यों पर उप- कार करने वाले
मरुतः	मरुतः	मरुतों ने
अमदन्	अनु + अमदन् अनुमोदितवन्तः	अनुमोदन किया
अनु	अनु +	

सस्वतार्यः ।

(मनुष्याः) स्वतआहादकं वलयुक्तं स्तुतियोग्यं
स्वर्गस्याऽऽरोहण भूत यन्महत् (स्तोत्रमस्ति तद्-
पृत्र-) भयेन कृतवन्तः, यद्वा मनुष्यहिताय सङ्ग्रामे

प्रवृत्ता मनुष्यान्सेवमाना सहायका मरुतो द्युलोके
इन्द्रमनुमोदितवन्तः ॥ ९ ॥

भाषार्थः ।

(मनुष्यों ने) स्वयं आनन्द देनेवाला चलयुक्त
स्तुति के योग्य स्वर्ग को प्राप्त करानेवाला जो
महान (स्तोत्र है उसको वृत्र के) भय से बनाया,
जब मनुष्यों के लिये युद्ध करने वाले मनुष्यों पर
उपकार करने वाले, इन्द्र के सहायक मरुतों ने
द्युलोक में इन्द्र को अनुमोदन किया ॥ ९ ॥

मनुष्यों के हित के लिये संग्राम करने वाले मरुतों ने मनुष्यों
के उपकार के लिए इन्द्र को वृत्र के साथ युद्ध करने के लिये प्रेरण
किया, जब देवता मनुष्यों के लिए ऐसे हित के काम करते हैं तो
यह लोक सुख रूप होने की जगह दुःख रूप क्यों हैं, इसका एक
कारण यह है कि मनुष्य दुःख या भय के समय पर स्वयं
आनन्द देने वाले, यह युक्त मोह सुख को प्राप्त कराने वाले स्तोत्र
को नहीं गाते, जिस से दुःख के कारणों को जीतने के लिए देव-
ताओं का बल बढ़े ॥

इन्द्रोदेवता जगतीन्द्रः । १२।१२।१२।१२।

द्यौश्चिदस्यामवाँश्चैः स्वना

दयोयवीज्ञियसावज्जून्द्रते । वृत्रस्य

यद्बद्बधानस्यरोदसी मदेसुतस्य
शवसाऽभिनच्छिरः ॥१०॥

द्वौः	द्वुलोकः	द्वुलोक
चित्	अपि	भी
अस्य	अस्य	इसके
अमऽवान्	बलवान्	बली
अहेः	वृत्रस्य	वृत्र के
स्वनात्	शब्दात्	शब्द से
अथोयवीत्	पुनःपुनःकम्पित वान् (युमिभ्रणामिभ्रणयोः)	बार बार कांपा
भियसा	भयेन	भय से
वज्रः	वज्रः	वज्र न

इन्द्र	हे इन्द्र	हे इन्द्र
ते	तव	तेरे
वृत्रस्य	वृत्रस्य	वृत्र के
यत्	यदा	जब
{ वद्वधा- नस्य	बाधनशीलस्य (बाधृ विलोडने)	सताने वाले के
रोदसी०	द्यावापृथिव्यौ	द्युलोक (और) पृथिवी को
मदे	मदे	मद में
सुतस्य	निष्पीडितस्य (सोमस्य)	सोम के
शवसा	वलेन	बल से
अभिनत्	अच्छिन्नत्	काट दिया
शिरः	शिरः	शिर को

सस्कृतार्थः।

हे इन्द्र ! अस्य वृत्रस्य शब्दात् बलवान् द्यौरपि भयेन पुनः पुनः कम्पितवान् (यदा) सोमस्य मदे (सति) तव वज्रो द्यावा पृथिव्यौ बाधन शीलस्य वृत्रस्य शिरो बलेनच्छेदितवान् ॥ १० ॥

मापार्थः ।

हे इन्द्र ! इस वृत्रके शब्द से बलवाला द्युलोक भी डर से चार चार कांपा, जब सोमके मद में आपके वचने द्युलोक और पृथिवीको सताने वाले वृत्रके शिर को बल से काट दिया ॥ १० ॥

(१) वृत्रके शब्दसे आकाशका वारम्बार कांपना "भयोयचीत्" शब्द ठीक घोटन करता है, प्रत्येक ध्वनि से आकाश के परमाणु घारघार मिलते और अलग होते हैं और यही कम्पनके लक्षण हैं ।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

यदिन्विन्द्रपृथिवीदशभुजिरहा-

निविश्वत्ततनन्तकृष्टयः।अत्राहते

मघवन्विश्रुतंसहो द्यामनुशवसाव-

हृणाभुवत्॥११॥

यत्	यदि	यदि
इत्	अपि	भी
नु	खलु	सचमुच
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
पृथिवी	पृथिवी	पृथिवी
दशऽभुजिः	दशगुणिता भोग वती	दस गुने भोग वाली
अहानि	दिनानि (सप्तम्यर्थे द्वितीया)	दिनों में
विप्रा	सर्वाणि (सप्तम्यर्थे द्वितीया)	सब
ततनन्त	विस्तृताभवेयुः (लिट्थेलट् द्विमांश- दृष्टान्दसः)	फैलें
कृष्टयः	मनुष्याः (निघं० २।३)	मनुष्य
अत्र	अत्र	यहां
अह	खलु	सचमुच

ते	तव	तेरा
मघऽवन्	हे धनवन् !	हे धन वाले
विऽतम्	विख्यातः	प्रसिद्ध
सहः	पराक्रमः	पराक्रम
द्याम्	दुलोकम्	दुलोक को
अनु	(साम्ये)	तुल्य
शवसा	बलेन (निघं० २१८)	बल से
बर्हणा	परितो वृद्धः (निघं० ४१३)	चारों ओर बढ़ा हुआ
भुवत्	भवेत् (लेटघडागमउपडा देशदच)	होवे

सष्टतार्थः ।

हे इन्द्र ! यदि खलु पृथिवी दश गुणिता भोग
वत्यपि स्यात् मनुष्याः (च) सर्वेषु दिनेषु विस्तृता
भवेयुः, (तदापि) हे धनवन् तव पराक्रमोऽत्र विख्यातो
दुलोकवत् परितो वृद्धः (च) भवेत् ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! जो सब मुच पृथिवी दसगुनी भोग वाली भी हो जावे (और) मनुष्य सब दिन बढ़ते रहें (तोभी) हे धनवाले ! आपका पराक्रम यहां पर प्रसिद्ध और द्युलोक के सदृश चारों आर बढ़ा हुआ हो ॥ ११ ॥

पृथिवी पर मनुष्यों की संख्या अन्नादि भोग पर निर्भर है यदि अब से दस गुना अन्न होने लगे और मनुष्य दिन दिन बढ़ने लगें तौ भी इन्द्र का पराक्रम इन सब मनुष्यों में फैल जावेगा ॥

इन्द्रो देवता जगती छन्दः । १२ । १२ । १२ । १२ ।

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभू-
 त्योजा अवसधृषन्मनः । चक्रप्रेभूमि-
 प्रतिमानमोजसो ऽपः स्वः परिभूरेष्या
 दिवम् ॥ १२ ॥

त्वम् | त्वम् | तू ने

अस्य	अस्य	इस के
पारे	सीमायाम्	सीमा में
रजसः	लोकंस्य (लोकार्जास्युच्यन्ते निघ०)	लोक की
विऽओमनः	अन्तरिक्षस्य (निघ० ११३)	अन्तरिक्ष की
{ स्वभतिऽ ओजाः	स्वभूतबलः	स्वयं होने वाले बल से युक्त
अवसे	रक्षायै	रक्षा के लिए
धृपत्ऽमनः	धृपत्, प्रगल्भं मनो यस्य तत्सम्बुद्धौ	हे निडर मनवाले
चक्षुषे	कृतवान्	घनाया हैं
भूमिम्	पृथिवीम्	पृथिवी को
प्रतिऽमानम्	प्रतिरूपम्	नमूना
ओजसः	बलस्य	बल का

अपः	जलानि	जलों को
स्वः०	ज्योतिः	ज्योति को
परिऽभूः	परिग्रहीता	घेरने वाला
एषि	प्राप्नोषि	पहुंचते हो
आ	(मर्यादायाम्)	तक
दिवम्	द्युलोकम्	द्युलोक को

सकृत्तार्थः ।

हे प्रगल्भमनः ! अस्याऽन्तरिक्षलोकस्य सीमायां स्वयम्भूतबल युक्तस्त्वम्(अस्मद्)रक्षायै पृथिवीं(निज) बलस्य प्रतिरूपां कृतवानसि (त्वम्) जलानि ज्योतिः (च) परिग्रहीत्वा द्युलोक पर्यन्तं प्राप्नोषि ॥ १२ ॥

भाषार्थः ।

हे निडर मनवाले ! इस अन्तरिक्ष लोक की सीमा में स्वयं होनेवाले बल से युक्त आपने हमारी रक्षा के लिये पृथिवी को अपने बल का नमूना बनाया है, आप जल और ज्योतिको घेर कर द्युलोक तक पहुंचते हो ॥ १२ ॥

इन्द्रके बल का एक छोटा सा नमूना पृथिवी है, इन्द्र तो आकाश के जल और ज्योति को बीच में ले कर घेरते हैं -

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
११८२	०	+आध	+अधि,	१२१२	१६	संधम्नेन	संधम्नेन
"	११	व्युट	व्युट्	१२१०	१३	सुखरथं	सुखरथं
११८५	०	घममिति	मघमिति	"	१६	सुपे	सुपे
११८८	३	न्ता	न्ती	"	१७	सुखम्	सुखम्
"	१०	यद	यद्	१२१८	१४	तरनु	तरनु
१२०२	१०	गुणन्ति	गुणन्ति	१२२०	१३	गमनोंका	गमनोंकी
१२०५	८	मरमास	मरमास	१२२२	११	त्तयः	त्तया
१२०७	६	ददात	ददातु	१२२६	२	अप	अप
१२०८	४	स्तोमा	स्तोमा	"	४	प्रसिदाः)	प्रसिदाः)
१२०९	५	लडिक्कान्द	लडिक्कान्द	१२२८	१३	स्पष्ट	स्पष्ट
१२११	१३	पृथ	पृथु				

उंक ३१-३२]

[चैत्र वैशाख १९६६

ऋग्वेद संहिता

(वैदिकजीवनभाष्ययुता)

पदपाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और भाषा अनुवाद
टिप्पणी और मन्त्रों के आशय पर
व्याख्यान से युक्त

जिसको मुल्तान निमासी प० शङ्करदत्त
शास्त्री की सहायता से शिन्नाथ
नाहिताग्नि ने सम्पादन किया

लाहौर

पञ्जाब एकानोमीकल यन्त्रालय में प्रिण्टर शाला
सालमन के अधिकार से छपा ।

१२ भकों का मूल्य २)
पहले २४ भकों का मूल्य ५।)

इन्द्रो देवता त्रिष्टुच्छन्दः ॥११॥११॥११॥११॥

त्वम्भुवःप्रतिमानंपृथिव्या ऋष्व

वीरस्य हतःपतिर्भूः । विप्रवमाप्रा-

अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्वानकि-

रन्त्यस्त्वावान् ॥१३॥

त्वम्	त्वम्	तू
भुवः	अन्तरिक्षस्य (निघं० १।३)	अन्तरिक्ष का
प्रतिमानम्	परिमाणम्	माप
पृथिव्याः	पृथिव्याः	पृथिवी का
{ ऋष्वः वीरस्य	ऋष्वामहान्तो वा रायस्मिन्-तथो- क्तस्य (ऋष्यरतिमन्तानाम्) (निघ० ३।३)	जहां चढे शूवीर हैं ऐसे का

बृहत्तः	महत्तः (द्युलोकस्य)	महान(द्युलोक)का
पतिः	स्वामी	स्वामी
भूः	अभूः (पडमायः)	हुए हो
विपूर्वम्	सर्वम्	सम्पूर्ण को
आ	आ +	-
अप्राः	आ+अप्राः, आपू- रितवानसि (प्रापूरणे)	पूर्ण किया है
अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्ष को
महिऽत्वा	महिम्ना	महिमा से
सत्यम्	सत्यम्	ठीक है
अज्ञा	खलु	सच मुच
नकिः	नास्ति	नहीं है
अन्यः	अन्यः	और

त्वांऽवान् | त्वत्सदृशः | आपके तुल्य
(सादृश्याऽर्थेवतुप्) |

संस्कृतार्थः ।

(हे इन्द्र !) त्वमन्तरिक्षस्य पृथिव्याः (च) परि-
माणं, महावीरवतो महतः(द्युलोकस्य) पतिः(च)अभूः
(त्वं निज-) महिम्ना सर्वमन्तरिक्षमापूरितवान् त्वत्स-
दृशोऽन्यो नास्ति (इति) सत्यंखलु ॥ १३ ॥

भाषार्थः ।

(हे इन्द्र) आप अन्तरिक्ष(और)पृथिवी के माप
(और) बड़े वीरों से युक्त महान (द्युलोक के) स्वामी
हुए हैं (आपने अपनी) महिमा से सम्पूर्ण अन्तरिक्ष
को पूर्ण किया है आपके तुल्य और नहीं है (यह)
सच मुच ठीक है ॥ १३ ॥

विनियोग—यह मन्त्र बृहस्पति सत्र में मू नाम वाले एकादश के
मरुत्वतीय शास्त्र में पढ़ा जाता है (आ० श्रौ० सू०उ० ३।५।१६)

(१) इन्द्र, अन्तरिक्ष और पृथिवी के माप हुए हैं, अर्थात्
वैसे इन्द्र महान हैं वैसे ही उनकी बनारह दूर पृथिवी और अन्तरिक्ष
भी महान हैं ।

(२) बड़े वीर मरुत आदि देवताओं से तात्पर्य है ।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२॥

नयस्यद्यावापृथिवीअनुव्यचो न
 सिन्धवोरजसोअन्तमानशुः । नीत
 स्वहृष्टिमदेअस्ययुध्यत एकोअन्य-
 च्चक्षुषेविश्वमानुषक् ।१४।

न	न	नहीं
यस्य	यस्य	जिसके
{ द्यावापृ- थिवी०	द्यावापृथिव्यौ	दुलोक (और) पृथिवी
अनु	साभ्ये (आ०को०)	तुल्य
व्यचः	विस्तारम् (आ०को०)	विस्तारको
न	न	नहीं

सिन्धवः	स्यन्दनशीलाः [आपः]	जल
रजसः	अन्तरिक्षस्य	अन्तरिक्ष के
अन्तम्	सीमाम्	सीमा को
आनशुः	प्राप्तवन्तः (व्यत्ययेनपरस्मैपदम्)	पहुंचे हैं
न	न	नहीं
उत	अपि च	और
स्वऽवृष्टिम्	स्वा, अधीनावृष्टि र्यस्य तम्	वर्षा रोकने वाले को
मदे	मदे (सति)	मद युक्त होने पर
अस्य	अस्य	इसके
युध्यतः	युध्यतः	युद्ध करते हुए के
एकः	एकः	एक

अन्यत्	अन्यत्	और
चक्षुषे	कृतवान्	किया
विभ्रवम्	सर्वम्	सम्पूर्ण को
आनुषक्	अनुषक्तम्	अनुक्रम से

ससृत्तार्थः ।

यस्य विस्तार साम्य द्यावा पृथिव्यो न जग्मतुः ।
 अन्तरिक्षस्याऽऽपः (यस्य) सीमां न प्रापुः अपि च मदे
 (सति) वृष्टि निवारकम् प्रति युध्यतोऽस्य (बलम्)
 न (कोऽपि प्रमातुमशकत् हे इन्द्र एकः त्वम् (एव)
 अन्यत्सर्वमनुषक्त कृतवान् ॥ १४ ॥

भाषार्थः ।

जिसके विस्तार की तुल्यता को आकाश (और)
 पृथिवी नहीं पहुँचे है, अन्तरिक्ष के जल जिस
 की सीमा को प्राप्त नहीं हुए और मद युक्त होकर
 वर्षारोकने वालेके प्रति युद्ध करते हुए जिसके (बलकी
 कोई तुलना नहीं कर सकता) हे इन्द्र ! आप अकेले
 ने (ही) अन्य सब को क्रम पूर्वक रचा है ॥ १४ ॥

यहा इन्द्र परमात्मा के महत्त्व और रचना शक्ति के अनिमानी
 देवता हैं । सृष्टि की रचना क्रम पूर्वक हुई है । एक साथ नहीं हुई ।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ॥१११११११११॥

आर्चन्त्रमरुतःसस्मिन्नाजौ

विप्रवेदेवासोअमदन्ननुत्वा । वृत्र-

स्ययद्मष्टिमतावधेन नित्वमिन्द्र-

प्रत्यानंजघन्य ॥५॥

आर्चन्	स्तुतवन्तः	स्तुति की
अत्र	अत्र	यहां
मरुतः	मरुतः	मरुतों ने
सस्मिन्	तस्मिन् (सा०भा०) (सत्वछान्दसम्)	उस में
आजौ	सङ्ग्रामे	युद्ध में
विप्रवे	सर्वे	सब
देवासः	देवा.	देवता

अमदन्	हर्षितवन्तः	हर्ष को प्राप्त हु
अनु	अनु (सृत्य)	पीछे
त्वा	त्वाम्	तुझ को
वृत्रस्य	वृत्रस्य	वृत्र के
यत्	यदा	जब
भृष्टिमता	भृष्टिर्धारातद्वता	नोकीले से मदे
वधेन	वधसाधनेन (वज्रेण)	वध करने (वज्र) (वज्र)स
नि	नि +	-
त्वम्	त्वम्	तूने
इन्द्र	हे इन्द्र	हे इन्द्र
प्रति	प्रति	प्रति
आनम्	आननम् (पर्णलोपश्छान्दसः)	मुख पर

जघन्थ

नि+जघन्थ
प्रहारं कृतवानसि

प्रहार किया

ससृत्तार्थः ।

तस्मिन्सङ्ग्रामे मरुतोऽत्र भवन्तम् स्तुतवन्तः
विश्वेदेवाश्च त्वामनुसृत्य हर्षमाप्नुवन्, यदा हे
इन्द्र ! त्वं धारा युक्तेन वज्रेण वृत्रस्य मुखम्प्रति
प्रहारं कृतवान् ॥ १५ ॥

भाषार्थः ।

र्च' - उस युद्ध में मरुतों ने आप की स्तुति की और
। तब देवता आपके साथ हर्ष को प्राप्त हुए, जब
हे इन्द्र आपने नौकीले वज्र से वृत्र के मुख पर प्रहार
किया ॥ १५ ॥

देवता और मनुष्यों के शत्रु के मारे जाने से मनुष्य हितकारी
मरुद्गण और सब देवता हर्षित हुए । अब भी हमारे सुख को देख
कर देवता सुखी और दुःख को देख कर दुःखी हैं परन्तु जब तक
हम यज्ञ, स्तुति और देवानुकूल आचरण द्वारा उन का बल न बढ़ावें
तब तक वे हमारे दुःख के कारण भूत असुरोंको नाश करने में
असमर्थ हैं ॥

इति द्विपञ्चागं सूक्तम्

ऋ०मं१ स०५३

विनियोग—यह सूक्त अतिरात्र यज्ञके प्रथम चर्याय में ब्राह्मणा-
च्छंसी के शस्त्र में पढ़ा जाता है (आ० श्रौ० सू० ६।४।८) .

इस सूक्तमें मी इन्द्रकी स्तुति है, वह सोनेवालों अर्थात् पुरुषार्थ न करने वालों को धन नहीं देते। वह गौ घोड़े, और यथादि धान्य के देनेवाले हैं, वह सदा से दान वीर हैं और कामना करने वालों को कभी हताश नहीं करते। जो उन से मित्रता रखता है उसके मित्र हैं, वह युद्धिमान, बहुत काम करने वाले और सब धन के प्रसिद्ध स्वामी हैं, उपासक की दरिद्रता के हटाने वाले, और उसके द्वेषियों को छिन्न भिन्न करने वाले हैं। वह अपने बल द्वारा गढ़ से गढ़ को तोड़ते हुए निहर होकर एक युद्ध से दूसरे युद्ध की ओर जाने वाले हैं। इन्होंने अपने भक्त नमी के लिए मायावी नमुचि को मारा और अतिधिग्न अर्थात् राजा दिवोदास के रस्ता रोकने वाले करंज और पर्णय नामी दस्युओं को मारा। इन्होंने रिजिश्वा के शत्रु वंगृद के सैंकड़ों गढ़ों का तोड़ा, और बन्धुहीन अपने भक्त सुयवा के शत्रु कूत्स, दिवोदास, आयु, और अन्य सत्रह राजाओं को जो इस युवा राजा पर साठ हजार निन्नानवे सेना लेकर चढ़ भाए थे, उसके बस में किया। ऐसे इन्द्र को सब प्रकार से अपना मित्र बनाने का यत्न करना चाहिये ॥

इन्द्रोदेवता सव्यऋषिर्नगतीछन्दः १२।१२।१२।१२

न्यु॑श्पु॒वाच्रं॑ प्र॒स॒हे॑भ॒राम॑हे॒ गिर॒-

इन्द्रा॑य॒सद॑ने॒विव॑स्वतः। नू॒चि॒धिर॒-

त्नं॑ स॒स॒ता॒मि॒वा॒वि॒द् न॒न॒दु॒ष्टु॒ति॒द्रि॑-

वि॒णो॒दे॒पु॒श॒स्य॒ते ॥१॥

नि	नितराम्	खूब
ऊम्०	[पूरणः]	- . .
सु	सु +	-
वाचम्	सु + वाचम्	सुन्दर वचन को
प्र	प्र +	-
महे	महते	महान् के ताई
भरामहे	प्र+भरामहे, अर्पयामः	हम अर्पण करते हैं
गिरः	स्तोतारः (अ० १।६।६)	स्तोता
इन्द्राय	इन्द्राय	इन्द्र के लिए
सदने	एहे	घर में
विवस्वतः	यजमानस्य	यजमान के

नु	(प्रश्ने)	कथा
चित्	खलु	सचमुच
हि	यतः	क्योंकि
रत्नम्	रमणीयम्(धनम्)	धन को
{ ससताम् ऽद्भुव	स्वपतामिव	सोते हुआ की न्याई
अविदत्	लब्धवान्	पाया है
न	न	नहीं
दुःऽस्तुतिः	निकृष्टा स्तुतिः	निकृष्ट स्तुति
द्रविणःऽदेषु	धनदातृषु	धन देने वालों में
शस्यते	शस्यते	उचित है

संस्तरार्थः ।

(वयम्) स्तोतारो महत इन्द्राय यजमानस्य
एहे सुवाचमर्पयामः, यतः स्वपतामिव (आचरतां

मध्ये) कः खलु रमणीयम् (धनम्) लब्धवान्, धन-
दातृषु निकृष्टा स्तुतिः (च) न शस्यते ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

हम स्तोता लोग महान इन्द्र के लिये यजमान
के घर में सुन्दर वचन को अर्पण करते हैं, क्योंकि
सोते हुआ की न्याई (आचरण करने वालों में) सच
मुच किसने धन को पाया है (और) धन देने वालों
में निकृष्ट स्तुति उचित नहीं है ॥१॥

हम को इन्द्र की खूब स्तुति करनी चाहिये इस लिये कि
बिना पुरुषार्थ के धन नहीं मिलता और स्तुति करना एक महान
पुरुषार्थ है, स्तुति भी ऐसी होनी चाहिये जो धन देनेवालों के
योग्य हो ॥

इन्द्रोदेवता भुरिग्जगतीन्द्रः ।१२।१२।१३।१२।

दुरो॒अ॒श्व॒स्य॒दुर॒इन्द्र॒गोर॒सि॒ दुरो

यव॒स्य॒वसु॒न॒इन्द्र॒नस्पतिः॑ । शि॒क्षान॒रः

प्र॒दि॒वो॒अ॒काम॒कर्श॒नः॒ सखा॒सखि॒भ्य-

स्तमि॒दंगृ॒णीम॒सि ।२।

दुरः	दाता (ददातेर्बाहुलफादुरच्)	देने वाला
अश्वस्य	अश्वस्य	घोड़े के
दुरः	दाता	देने वाला
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
गोः	गोः	गौ के
असि	असि	तूहै
दुरः	दाता	देने वाला
यवस्य	यवस्य	जौ के
वसुनः	धनस्य	धन का
इनः	स्वामी	स्वामी
पतिः	पालक	रक्षा करने वाला
शिच्चाऽनरः	दानस्यनेता (शिक्षतिर्दानवर्मा निघं०३।२०)	दान वीर

प्रऽदिवः	प्रगता दिवो दिव सा यस्मिन् सः प्राचीन इत्यर्थः	प्राचीन काल से
{ अकामऽ- कर्षनः	कामान्कर्षयति नाशयतीतिकाम- कर्षनः, न काम- कर्षनः, अकाम कर्षनः	कामनाओं को न तोडने वाला
सखा	सखा	मित्र
सखिऽभ्यः	मैत्री युक्तेभ्यः	मैत्री वालोंके ताई
तम्	तम्	उसको
इदम्	इदम्	यह
गृणीमसि	स्तुमः	हम स्तुति करते हैं

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! (त्वम्) अश्वस्य दाता, गोदाता, यव-
(आदिधान्यस्य च)दाताऽसि (त्वम्) धनस्य स्वामी
रक्षकः(चाऽसि, त्वम्)प्राचीनो दानस्यनेता कामानाम

मोघयिता मैत्री युक्तेभ्यः सुहृत् (चाऽसि) तम् (भव-
न्तम्प्रति) इदं स्तुमः ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र! (आप) घोड़े के देने वाले, गौ के देने वाले, (और) यव (आदि धान्य) के देने वाले हैं आप धन के स्वामी, (और) रक्षक (हैं) आप प्राचीन काल से दानवीर, कामनाओं को न तोड़ने वाले (और) मैत्री रखनेवालों के लिये मित्र (हैं) उस (आप के प्रति) हम यह स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२॥

शचीवद्भुन्द्रपुरुक्कद्दुमत्तम तवे-
दिदमभितप्रचेकितेवसु । अतःसं-
गृभ्याऽभिभूतआभर मात्वायतोव-
रितुःकाममूनयीः ।३।

शचीऽवः	हे प्रज्ञावन् (शचीतिप्रज्ञानाम • नियं०३।९)	हे बुद्धिमान्
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
पुरुऽकृत	हे घहूनाम[कर्म- णाम्] कर्तः !	हे बहुत (कामोंके) करने वाले
द्युमत्ऽतम	हे अतिशयेन दीप्तिमन्	हे सबसे अधिक दीप्ति वाले
तव	तव	तेरा
इत्	एव	ही
इदम्	इदम्	यह
अभितः	सर्वतः	चारों ओर
चेकिते	ज्ञायते (कितधाने, अस्माद्यङ् न्ताद्वसंमाने लिट्)	हम से जाना जाता है
वसु	धनम्	धन
अतः	अतः	इससे

सम्पृग्भ्य	संपृह्य (ह्रप्रहोमंदछन्दसीति हस्यमत्वम्)	इकट्टा करके
अभिभूते	हे अभिभवितः ! (सुपामितिशेआदेशः)	हे जयशील
आ	आ +	-
भर	आ + भर, आहर	ले आओ
मा	मा	मत
त्वाऽयतः	त्वामिच्छतः (क्यजन्ताल्लटःशतृ, आत्प्रञ्छान्दसम्)	तुझ को चाहते हुए की
जरितुः	स्तोतुः	स्तोता की
कामम्	अभिलापम्	कामना को
ऊनयीः	ऊनं कुरु (लोड्यैल्ङ्)	हीन करो

संस्कृतार्थः ।

हे प्रज्ञावन् ! ब्रहूनाम् (कर्मणाम्) कर्तः ! अति-
शयेन वीप्सितमन् ! इन्द्र ! सर्वत इदंधनं तवैव

ज्ञायते, अतः संश्ल (अस्मभ्यम्) आहर, स्वामिच्छतः
स्तोतुरभिलाषं मा हीनंकुरु ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

हे बुद्धिमान बहुत (कर्मों) के करने वाले, सब
से अधिक प्रकाश वाले इन्द्र, चारों ओर यह धन
आपका ही जाना जाता है, इस में से इकट्ठा करके
हमारे लिये लाओ, आपको चाहते हुए स्तोता की
कामना को हीन मत करो ॥ ३ ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२॥

एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिः
निरुन्धानी अमतिंगोभिरश्विना ।
इन्द्रेणादस्युन्दरयन्त इन्दुभि र्युत-
वैषसः समिषारभेमहि । ४।

एभिः	एभिः	इन से
द्युभिः	दीप्तैः	चमकते हुआँ से

सु॒ऽमनाः	प्रीतः	प्रसन्न
ए॒भिः	एभिः	इन से
इ॒न्दु॒ऽभिः	सोमैः	सोमों से
{ नि॒ऽरु॒न्धा	निवर्तयन्	हटाता हुआ
नः		
अ॒मति॑म्	दारिद्र्यम्	दारिद्र्यता को
गो॒भिः	गोभिः	गौओं से
अ॒श्वि॒वना	अश्ववता(धनेन)	घोड़ों से युक्त [धन] से
इ॒न्द्रे॑ण	इन्द्रेण	इन्द्र द्वारा
द॒स्यु॑म्	शत्रुम्	शत्रु को
द॒रय॑न्तः	विदारयन्तः	छिन्न भिन्न
इ॒न्दु॒ऽभिः	सोमैः	करते हुए सोमों से
	(मा०को०)	

युतऽद्वेषसः	पृथग्भूतद्वेषाः (यु-अमिश्रणे)	द्वेषसे रहितहुए २
सम्	सम्+	-
द्वेषा	वलेन	वलं से
रभेमहि	सम्+रभेमहि संयुक्ताभवेम	हमं संयुक्त हों

संस्कृतार्थः ।

एभिर्दीप्तैः (हविर्भिः) एभिःसोमैः (च) प्रीतः
(इन्द्रः)गोभिरद्वययुक्तेन (धनेन चाऽस्माकम्) दारिद्र्यं
निवर्त्तयन् (तिष्ठतु) (यतोवयम्) सोमैः (प्रीतेनाऽनेन)
इन्द्रेण शत्रुं विदारयन्तो द्वेष रहिताः(सन्तः) वलेन
संयुक्ता भवेम ॥ ४ ॥

माथार्थः ।

(इन्द्र देव) चमकती हुई इन (हवियों और) इन
सोमोंसे प्रसन्न होकर गौओं से (और) घोड़ों से युक्त
(धन) से (हमारी) दरिद्रता को हटाते हुए (ठेरें)
(जिस से) हम (इस) इन्द्र के द्वारा शत्रु को छिन्न
भिन्न करते हुए द्वेष से रहित (होकर) वलसे संयुक्त
हों ॥ ४ ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२॥

समिन्द्ररायासमिषारभेमहि सं-
वाजभिःपुरुप्रचन्द्रैरभिद्युभिः । संदे-
व्याप्रमत्यावीरशुष्मया गोअग्रयाऽ-
प्रवावत्यारभेमहि । ५ ।

सम्

सम्

-

इन्द्र

हे इन्द्र !

हे इन्द्र

राया

धनेन

धन से

सम्

सम्(युक्ताभवेत्)

हम सं(युक्त होवें)

इषा

अन्नेन

अन्न से

रभेमहि

सम्+रभेमहि
संयुक्ताभवेत्

हम संयुक्त होवें

सम्

सम्(युक्ताभवेत्)

हम सं(युक्त होवें)

वाजिभिः	चलैः	बलों से
प्रसूचन्द्रैः	बहूनामाहादकैः	बहुतों के प्रसन्न करने वालों से
{ अभिः- दुभिः	अभितोदीप्य- मानैः	चारों ओर प्रकाश वालों से
सम् देव्या	सम् + द्योतमानया	- प्रकाश वाली से
प्रसंत्या	प्रकृष्टयावुद्ध्या	उत्तम बुद्धि से
{ वीरःशु- चमया	वीरसम्बन्धिवल युक्तया	शूर वीरों के बल वाली से
गोऽग्रया	गावोऽप्रामुख्या यस्यांतादृश्या	जहां गौएं मुख्य हैं ऐसी से
{ अप्रवऽव- त्या	अश्वोपेतया	घोड़ों वाली से
रभेमहि	सम् + रभेमहि संयुक्ताभवेम	हम संयुक्त हों

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! (वयम्) धनेनाऽन्नेन (च) संयुक्ताभवेम
(तथा) अभितोदीप्यमानैर्वहूनामाहादकैर्वलैः (च)
सं-(युक्ताभवेम, अपि च) द्योतमानया, वीरसम्ब-
न्धिवलवत्या, अश्वोपेतया, गोमुख्यया प्रकृष्ट बु-
द्ध्या(च) संयुक्ताभवेम ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र हम धन से (और) अन्न से संयुक्त होवें
हम चारों ओर प्रकाशित बहुतोंके प्रसन्न करने वाले
बलों से(संयुक्त होवें और) प्रकाश वाली शूरवीरों के
बल वाली, घोड़ों से युक्त, और जिसमें गौएं प्रधान हैं
ऐसी उत्तम बुद्धि से संयुक्त होवें ॥ ५ ॥

इन्द्रोदेवतां जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२॥

ते॒त्वाम॒दा॑श्च॒मद॒न्तानि॒वृष॒णया॒

ते॒सो॒मा॒सो॒वृ॒त्र॒हृ॒त्येषु॒सत्प॒ते । य-

त्का॒र॒वे॒द॒श॒हृ॒त्रा॒ण्य॒पति॒ वृ॒हि॒ष्म॒ते-

नि॒स॒ह॒स्रा॒गि॒वृ॒ह्यः॑ । ६ ।

ते	ते	उन
त्वा	त्वाम्	तुझ को
मदाः	हर्षाः	आनन्दों ने
अमदन्	मदयुक्तंकृतवन्तः	मद युक्त किया
तानि	तानि	उन
वीर्याणां	वीर्याणि	वीर्यों ने
ते	ते	उन
सोमासः	सोमाः	सोमों ने
वृत्रहृत्पु	वृत्रस्य हत्यायेषु	वृत्र हत्यावालों में
सत्पते	हे सतां पते !	हे सज्जनों के
यत्	यत्	जो
कारवे	[स्तुति] कर्त्रे	[स्तुति] करने
		वाले के लिये

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! (वयम्) धनेनाऽन्नेन (च) संयुक्ताभवेम
(तथा) अभितोदीप्यमानैर्वहूनामाहादकैर्वलैः (च)
सं-(युक्ताभवेम, अपि च) द्योतमानया, वीरसम्ब-
न्धिवलवत्या, अश्वोपेतया, गोमुख्यया प्रकृष्ट बु-
द्ध्या(च) संयुक्ताभवेम ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र हम धन से (और) अन्न से संयुक्त होवें
हम चारों ओर प्रकाशित बहुतोंके प्रसन्न करने वाले
बलों से(संयुक्त होवें और) प्रकाश वाली शूरवीरों के
बल वाली, घोड़ों से युक्त, और जिसमें गौएं प्रधान हैं
ऐसी उत्तम बुद्धि से संयुक्त होवें ॥ ५ ॥

इन्द्रो देवतां जगती लन्दः । १२ । १२ । १२ । १२ ॥

ते त्वा मदा अमदन्तानि वृष्यया
ते सीमा सो वृत्र हृत्येषु सत्पते । य-
त्कारवेदेषु चाग्यप्रति वर्हिष्यते-
निसहस्राणि वर्ह्यः । ६ ।

ते	ते	उन
त्वा	त्वाम्	तुझ को
मदाः	हर्षाः	आनन्दों ने
अमदन्	मदयुक्तकृतवन्तः	मद युक्त किया
तानि	तानि	उन
वृष्या	वीर्याणि	वीर्यों ने
ते	ते	उन
सोमासः	सोमाः	सोमों ने
वृत्रहृत्पेषु	वृत्रस्य हृत्पायेषु	वृत्र हत्यावालों में
सत्पते	हे सतां पते !	हे सज्जनों के
यत्	यत्	जो पालक
कारवे	[स्तुति-] कर्त्रे	[स्तुति] करने वाले के लिये

दश	दश +	-
वृत्राणि	शत्रून् (लिङ्गव्यत्ययश्छान्दसः)	शत्रुओं को
अप्रति	नास्तिप्रतिद्वन्द्वी- यस्यसः (लिङ्गव्यत्ययश्छान्दसः)	जिसका कोई सामना नहीं कर सका
वर्हिष्मते	वर्हिर्युक्ताय	कुशा से युक्त के लिये
नि	नि +	-
सहस्राणि	दश + सहस्राणि	दश सहस्रों को
वर्हयः	नि+वर्हयः, हतवान् (लिङ्गव्यत्ययश्छान्दसः)	मारा

संस्तरार्थः ।

हे सतापते ! (इन्द्र !) वृत्रहत्या सम्बन्धिषु
(युद्धेषु) ते मदास्तानि वीर्याणि ते सोमाः (च) त्वां
मदयुक्तं कृतवन्तो यत् प्रतिद्वन्द्विरहितः (त्वम्, स्तुति-)

कर्त्रे बर्हिर्युक्ताय (च यजमानाय) दश सहस्र संख्या-
काञ्छत्रून् हतवान् ॥ ६ ॥

भाषार्थः ।

हे सज्जनों के पालक (इन्द्र) वृत्रकी हत्या वाले (युद्धों) में उन आनन्दों ने उन वीर्यों ने (और) उन सोमों ने आप को मद युक्त किया, जिसका कोई सामना नहीं कर सकता ऐसे (आपने स्तुति) करने वाले (और) कुशा से युक्त (यजमान के) लिए दस हजार शत्रुओं को मारा ॥ ६ ॥

उन आनन्दों और वीर्यों ने, जो इन्द्र में स्वभाव से ही विद्यमान हैं, और उन सोमों ने जो पृथिवी पर मनुष्य, और घुलोक में देवता, इन्द्र को पान कराते हैं इन्द्र को घृत्र के मारने के लिए सदैव मदयुक्त किया है, जिस इन्द्र ने अपने उपासक के दसहजार शत्रुओं को मारा है ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२ ।

यु॒धायु॒धमु॒घेदे॑षिधृ॒ष्णुया॑ पु॒रा
पु॒रं॒स॒मिदं॑हं॒स्योज॑सा । न॒म्याय॑दि-
न्द्र॒स॒ख्या॑प॒राव॑ति॒ निव॑र्ह्यो॒नमु॑चिं॒
नाम॑मा॒यिन॑म् ॥ ७ ॥

युधा	युद्धेन	युद्ध से
युधम्	युद्धम्	युद्ध
उप	प्रति	की ओर
घ	(पूरणः)	-
इत्	सलु	सचमुच
एपि	गच्छसि	जाते हो
धृष्णाऽया	प्रगल्भनया	बेधड़क होकर
परा	दुर्गंण (सह)	गढ़ के (साथ)
पुरम्	दुर्गम्	गढ़ की
सम्	सम्यक्	अत्यन्त
इदम्	इदम्	इसकी
हंसि	पिनाशयन्ति	नाश करने हैं।

ओजसा॑	बलेन	बल से
नम्या॑	नम्या(सह)	नमी के (साथ)
यत्	यत्	जो
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र !
सख्या॑	मित्रेण	मित्र से
पराऽवति॑	दूरदेशे	दूर देश में
निऽवर्ह्यः॑	हतवान्	मारा
नमुचिम्	नमुचिम्+	-
नाम॑	नमुचिम् +नाम नमुचिनामानम्	नमुचि नाम वाले को
मायिनम्	मायोपेतम्	कपटी को

ससृत्तार्थः ।

हे इन्द्र ! (त्वम्) युद्धेन (सह) युद्धं प्रति प्रग-
ल्भतया खलु गच्छसि (त्वम्) बलेनेदं दुर्गं दुर्गान्तरेण

युधा	युद्धेन	युद्ध से
युधम्	युद्धम्	युद्ध
उप	प्रति	की ओर
घ	(पूरणः)	-
इत्	खलु	सचमुच
एपि	गच्छसि	जाते हो
धृष्णाऽया	प्रगल्भनया	बेधड़क होकर
परा	दुर्गेण (सह)	गढ़ के (साथ)
पुरम्	दुर्गम्	गढ़ को
सम्	सम्यक्	अत्यन्त
इदम्	इदम्	इसको
हंसि	यिनाशयामि	नाश करते हो

त्वम्	त्वम्	तूने
करञ्जम्	करञ्जम्	करञ्ज को
उत	च	और
पर्णयम्	पर्णयम्	पर्णय को
वधीः	हतवान् (अडभावः)	मारा
तेजिष्ठया	अतिशयेन तेज- स्विन्या	बहुत प्रकाशवाला
{ अतिथिऽ- ऽग्वस्य	अतिथिग्वस्य	से अतिथिग्वनामी (राजा)के
वर्त्तनी	मार्गे (वर्तनी मार्गः, आ०को०) (विमकेलुक)	रस्ते में
त्वम्	त्वम्	तूने
शता	शतानि	सैकड़ों को

श्र०मं०१ सू०५३ मं०८ (१३५६)

(सह) सम्यग्विनाशयसि यत् (त्वम्) मित्रेण
नम्या मायोपेतं नमुचि नामानम् (असुरम्) दूर
देशे विनाशितवान् ॥ ७ ॥

मापार्थः ।

हे इन्द्र, सच मुच (आप) युद्ध से युद्ध की ओर
वेधड़क (होकर) जाते हैं आप बल से इस गढ को
(दूसरे) गढ के (सहित) अत्यन्त नाश करते हैं, जो
आपने नमी(नाम वाले अपने) मित्रके द्वारा मायावी
नमुचि नामी [असुर] को दूर देश में मारा ॥ ७ ॥

सत्य का पुत्र 'नमी' इन्द्र का मक्त था, जिस की स्तुति और
पूजा के बल से इन्द्र ने नमुचि को जो घृष्टि को रोकने वाला एक
मायावी असुर था दूर भन्तरिक्ष में मार कर अपने मित्र नमी को
वर्षा रूपी गौपं दी(दिखो) । श्र० ६।२० । ६ और १० । ४८ । ९ ।)

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२

त्वंकरञ्जमुतपर्णयंवधी स्तेजि-
ष्ठयाऽतिथिग्वस्यवर्त्तनी। त्वंशता-
वङ्गदस्याऽभिनत्पुरी ऽनानुदःप-
रिपूताऽऽजिप्रवना । ८ ।

ऐसे आपने अतिथिग्व (नामी राजा) के रस्तेमें (वर्तमान) करञ्ज (और) पर्णय को बहुत प्रकाश वाली (विद्युत् वा बर्छीसे) मारा, आपने ऋजिदवा (नामी राजा) से घिरे हुए बङ्गदके सैकड़ों गढोंको तोड़ा ॥८॥

अनार्यं करंज, और पर्णय राजा, अतिथिग्व अर्थात् विद्योवास के शत्रु प्रतीत होते हैं, जो किसी की बर्छी से अथवा बिजली के गिरने से मारे गए; ऋजिदवा (देखो क्र० १। ५१। ५) को शत्रु बंगद को जीतने में भी इन्द्र ने अपने आर्य उपासक की सहायता की थी ॥

इन्द्रो देवता जगती छन्दः । १२। १२। १२। १२

त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशाऽव-

न्धुनासुश्रवसोपजग्मुषः । षष्टिस-

हस्रानवर्तिनवश्रुतो निचक्रैणरथ्या

दुष्पदावृणक् । ९ ।

त्वम्	त्वम्	तूने
एतान्	एतान्	इन को

वड्गृदस्य	वड्गृदस्य	वड्गृद के
अभिनत्	विदारितवान् (लडिसिपि हल्ङघा भ्यइति सकारलोपः)	तोड़ दिया
पुरः	दुर्गाणि	गढ़ों को
अननुदः	नास्त्यनुदस्तुल्य दानीयस्यसः	जिसके तुल्य कोई और दानी नहीं हैं ऐसा
परिसूताः	परितोऽवष्टब्धाः	घिरे हुए
ऋजिप्रवना	ऋजिश्वाख्यराज्ञा	ऋजिश्वानामी राजा से

संश्रुतार्थः ।

(हे इन्द्र!) तुल्य दातृ रहितस्त्वमतिथिग्वस्य (राजः) मार्गे (वर्तमानम्) करञ्जं पर्णयञ्चाऽतिते-
जस्विन्या (त्रियुता शक्त्या वा) हतवान्, त्वम्, ऋजि-
श्वना (राज्ञा) परितो ऽवष्टब्धानि वड्गृदस्य शतानि
दुर्गाणि विदारितवान् ॥ ८ ॥

भाषार्थः ।

(हे इन्द्र!) जिसके तुल्य और कोई दानी नहीं है

नव	नवतिम्+नव	निन्नानवे को
श्रुतः	नव नवतिसङ्ख्याकान्	विख्यात
नि	विख्यातः	
चक्रेण	नि+	
रथ्या	चक्रेण	पहिये से
दुःपदा	रथसम्बन्धिना	रथ वाले से
अवृणक्	दुःप्राप्येन	जिस को कोई नहीं पहुँच सका
	नि+अवृणक्	हटाया
	निराकृतवान्	
	(घृजी वर्जने)	

संस्कृतार्थः ।

(हे इन्द्र!) विख्यातस्त्वं बन्धु रहितेन सुश्रवसा (राज्ञा)समीपे प्राप्नुवतो विंशति सङ्ख्याकानेताञ्जना ऽधिपान्(तथैतेषाम्)नवनवत्यधिक पण्डितसहस्र संख्या कान्(अनुचरांश्च) दुःप्राप्येन रथसम्बन्धिना चक्रेण

जनऽराज्ञः	जनाधिपान् (समासान्तविधेरनि- त्यवाच्यमाद्य)	राजाओं को
द्विः	द्विः+	-
दश	द्विः+दश,विंशति सङ्ख्याकान्	बीस को
अबन्धुना	बन्धुरहितेन	बन्धु हीनसे
सुऽश्रवसा	सुश्रवसा (राज्ञा)	सुश्रवा नामी (राजा) से
उपऽजग्मुषः	समीपे प्राप्नुवतः	समीप आते हुए को
षष्टिम्	षष्टिम्+	-
सहस्रा	षष्टिम् + सहस्रा, षष्टिसहस्रसङ्- ख्याकान्	साठ हजार को
नवतिम्	नवतिम्+	-

त्वम्	त्वम्	तूने
आविथ	ररक्षिथ	रक्षित किया
सुश्रवसम्	सुश्रवसम्	सुश्रवा को
तव	तव	तेरी
ऋतिऽभिः	रक्षाभिः	रक्षाओं से
तव	तव	तेरी
चामऽभिः	त्राणैः	पालनाओं से
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
तूर्वयाणम्	तूर्वयाणम्	तूर्वयाण को
त्वम्	त्वम्	तूने
अस्मै	अस्मै	इसके ताई
कुत्सम्	कुत्सम्	कुत्स को

१ (हे इन्द्र !) विख्यात आपने बन्धु हीन सुश्रवा (राजा)के द्वारा,समीप आते हुए इन बीस राजाओंको (औरइनके) साठ,हजार निन्नानवे(अनुचरों)को किसी से न पहुंचने योग्य रथ के पहिये से हटाया ॥ ९ ॥

(१) राजा सुश्रवा ने बन्धु रहित होने,पर भी इन्द्र की भक्ति के फल से बीस राजा और ६००८८ सेना को पराजय किया इन बीस राजाओं में तीन का नाम अगले मन्त्रमें दिया है जिससे प्रतीत होता है कि यह युद्ध भार्यव राजाओं में ही था ॥

(२) "किसी से न पहुंचने योग्य रथ का पहिया" अगले मन्त्र में और ऋ० ६।१८।१३ में "तूर्वयाण" राजा सुश्रवा का ही मामान्तर प्रतीत होता है, यह नाम इस लिये पड़ा होगा कि यह बहुत शीघ्र गामी थे, इन के रथ के पहिये ऐसे बने हुए थे कि कोई इनको पहुंच नहीं सकता था । तूर्वयाण का अर्थ शीघ्रगामी है (देखो आ०को०) ॥

इन्द्रोदेवता भुरिक् त्रिष्टुच्छन्दः १२।११।११।११

त्वमाविथसुश्रवसंतवोतिभि स्तव-

चामभिरिन्द्रतूर्वयाणम् । त्वमस्मै

कुत्समतिथिग्वमायुं महेराज्ञेयूनै

अरन्धनायः । १० ।

(१) फुल्ल, अतिथिग्र अर्थात् दिवोदास और भायु भी इन्द्र के उपासक थे, परन्तु इन्होंने अग्न्याय से सग्रह और राजाओं के साथ बन्धु रहित युवा राजा सुभ्रवा पर घदाई की इसलिये इन्द्र ने इन को दण्ड देने के लिए सुभ्रवा के अधीन किया ।

इन्द्रोदेवता निचृत्त्रिष्टुच्छन्दः १०।११।११।११

यउहचीन्द्रदेवगोपाः सखाय-
स्तेशिवतमाअसाम । त्वांस्तोषा-
मत्वयासुवीरा द्राघीयं आयुःप्रतरंद-
धानाः ॥११॥

ये	ये	जो
उत्सृष्टचि	उदकें	उत्तरकाल में
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
देवगोपाः	देवैरक्षिताः	देवताओं से रक्षा किये हुए

अतिथिऽ- ग्वम्	अतिथिग्वम्	अतिथिग्व को
आयुम्	आयुम्	आयु को
महे	महते	महान् के ताई
राज्ञे	राज्ञे	राजा के ताई
यूने	यूने	युवा के ताई
अरन्धनायः	वशमनयः (रथतिरंशगमनेऽपि दृश्यते, निघ०)	अधीन कराया

सस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! त्वं निजरक्षाभिः सुश्रवसं निज त्राणैः (च) तूर्वयाणम् रक्षितवान् त्वमस्मै महते यूनेराज्ञे कुत्स मतिथिग्वमायुम् (च) वशमनयः । १० ।

नापार्थः ।

हे इन्द्र ! आपने अपनी रक्षाओं से सुश्रवा को (और) अपनी पालनाओं से तूर्वयाणको रक्षित किया आपने इस महान् (और) युवा राजा के ताई कुत्स, (और) आयु को अधीन कराया ॥ १० ॥

हे इन्द्र! ये (वयम्) देवैरक्षिताः स्तव सखायः
(स्मः) ते (वयम्) उत्तर काले (अपि) अतिशयेन सुख
रूपा भवाम, स्वया (सह) अतिवीरोपेता अतिदीर्घ
मत्पुच्छुष्टमायुः (च) धारयन्तस्त्वास्तवाम ॥ ११ ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र ! जो (हम) देवताओं से रक्षा किए हुए
आप के मित्र (हैं) वे हम आगे (भी) बहुत सुखी रहें
(और) आपके साथ अति वीरों से युक्त (और) बहुत
लम्बी बहुत उत्तम आयु को धारण करते हुए आप
की स्तुति करते रहें ॥ ११ ॥

इति त्रिपञ्चाशं सूक्तम् ।

सखायः	सखायः	मित्र
ते	तव	तेरे
शिवऽतमाः	अतिशयेनसुख रूपाः	बहुत सुखी
असाम	भवाम	हम होवें
त्वाम्	त्वाम्	तुझ को
स्तोषाम	स्तवाम	हम स्तुति करें
त्वया	त्वया	तुझ से
सुऽवीराः	अति वीरोपेताः	अति वीरोंसे युक्त
द्राघीयः	अतिदीर्घम्	बहुत बड़ी को
आयुः	आयुः	आयु को
प्रऽतरम्	अत्युत्कृष्टम्	बहुत उत्तम को
दधानाः	धारयन्तः	धारण करते हुए

(१३६९) क० मं० १ सू० ५४ मं० १

इन्द्रो देवता जगती छन्दः १२।१२।१२।१२।

मानो अस्मिन्मघवन्पृथस्वंहसि
नहिते अन्तःशवसःपरीणशो । अन्त-
न्दयो नद्यो शोरो रुवद्वना कथानक्षी-
णीभिर्यसासमारत ॥१॥

मा

नः

अस्मिन्

मघऽवम्

१ पृत्ऽसु

१ अंहसि

मा

अस्मान्

अस्मिन्

हे धनवन् !

सहामे

(यवनव्यत्ययः)

कष्ट (रूपे)

(भा०की०)

मत

हमको

इसमें

हे धन वाले

युद्ध में

कष्ट (रूप) में

ऋ० सं० १ सू० ५४ ।

सव्य ऋषिः

यह सूक्त अतिरात्र यह के प्रथम पर्व्याय में अच्छावाक के शस्त्र में पढ़ा जाता है (भा० धौ० सू० ६।४।१०)

इस सूक्त में भी इन्द्रकी स्तुति है और उन की भक्ति का फल दिखाया है। जिस के भय से ध्रुलोक और पृथिवी कांपते हैं उस इन्द्र को हम अपना शत्रु न बनायें, जो शक्तिमान अपने बल से पाथापृथिवी को सुशोभित करते हैं, उस सुनने वाले इन्द्र को हम भादर से नमस्कार करते हुए स्तुति करें, जो स्थतन्त्र इन्द्र निडर मन वाले हैं, उस महान के ताई हम बल करने वाला वेदमंत्र रूप ध्वन उच्चारण करें, जो इन्द्र पूर्वकाल में वृत्र को मार कर इस देश की अनाधृष्टि को दूर करते रहे हैं, यदि वह अब भी ऐसा करे तो उन को कौन रोक सकता है। जिस इन्द्र ने हमारे प्राचीन मनुष्य हितकारी राजा तुर्वश, यदु, और तुर्वीति की रक्षा की और युद्ध में उन के शत्रुओं का नाश किया, वह अब भी हमारा परित्याग नहीं करेंगे ॥

जो इन्द्र को एषि देता हुआ उन के शासन पर चलता है या जो उनके स्तोत्रों को सुन कर स्तोताओं को दान देता है उसके लिए संपत्ति आकाश से वर्षा को न्याई बरसती है। जो सोम द्वारा दानी इन्द्र के महान बल और धीर्य को बढ़ाते हैं, उन का बल भवतुल है, और उन की युद्धि अतुल है। इन्द्र हमारे अर्पण किए हुए सोम को पोषे और फिर हम को धन देने के लिए मन करें, इन्द्र हम लोगों में सुख यश और मनुष्यों के दयाने वाले बड़े राज्य बलको स्थापन करें, हमारे धनिकों की और स्तोता ग्राहणों की रक्षा करें और हम को वेदपथ, उत्तम सन्तान और बल के लिए प्रेरण करें ॥

भियसा	भयेन	भय से
सम्	सम् +	-
आरत	सम् + आरत समगच्छत्	संगत होती

सस्यतार्थः ।

हे धनवन् ! (इन्द्र ! त्वम्) अस्मिन् कण्ठ रूपे युद्धेऽस्मान् मा (प्रेरय, यतोऽस्माभिः) तव बलस्य सीमा परितो व्याप्नु नहि (शक्यते त्वम्) जलानि शब्दयन्नदीरकन्दयः कथम् (पुनः) पृथिवी भयेन न समगच्छत् ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

हे धन वाले (इन्द्र) आप इस कण्ठ रूप युद्ध में हम को मत (प्रेरण करो) क्योंकि हम आपके बल के अन्त को नहीं पहुंच सके जलों को शब्द कराते हुए आपने नदियों को शब्द युक्त किया (फिर) कैसे पृथिवी भय युक्त न होती ॥ १ ॥

(१) कण्ठ रूप युद्ध में, अर्थात् ऐसे युद्ध में जिस में इन्द्र हमारे शत्रु की ओर हों, ऐसे युद्ध में विजय असम्भव है और कण्ठ ही कण्ठ होता है ।

इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
१ महयन्	आद्रियन् (भा०को०)	आदर करता हुआ
अभि	अभि+	-
स्तुहि	अभि + स्तुहि	स्तुति कर
यः	यः	जो
धृष्टाना	धर्षकेण	प्रगल्भ से
शवसा	बलेन	बल से
रोदसी०	द्यावापृथिव्यो	द्यो(और)
उभे	उभे	पृथिवीको दोनों को
२ वृषा	वृषा	नर
२ वृषऽत्वा	सेचनसामर्थ्येन (शिमकेपात्रम्)	सेचनसामर्थ्य से
वृषभः	(कामानाम्) वर्षयिता	(कामनाओंके), बरसाने वाला

(२) जब वर्षाऋतु में जलों के खोंखाट से नदियां भी शब्द युक्त हो कर भय से पुकारती हैं तौ पृथिवी के जीव कैसे भय युक्त न हों। मंत्र का तात्पर्य यह है कि जिस इन्द्र के भय से सब कांपते हैं उस को शत्रु बनाना बड़ी मूर्खता है ॥

इन्द्रो देवता जगती छन्दः । १२ । १२ । १२ । १२ ।

अर्चा॑ श॒क्राय॑ श॒क्तिने॑ श॒चीव॑ते शृ॒णव॑
न्त॒मिन्द्रं॑ म॒ह्यन्न॑भि॒ष्टुहि॑ । यो धृ॒-
ष्णु॒ना श॒वसा॑रो॒दसी॑ उ॒भे वृषा॑ वृष॒त्वा
वृष॒भोन्यु॑ञ्जते ॥२॥

अर्च	नमस्कुरु (मा०को०)	नमस्कार करो
श॒क्राय॑	समर्थाय	समर्थ के लिए
श॒क्तिने॑	शक्तियुक्ताय	शक्तिमानके लिये
श॒चीव॑ते	प्रज्ञावते	बुद्धिमान के लिये
शृ॒णव॑न्तम्	शृण्वन्तम्	सुनते हुए को

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

अर्चा॑द्वि॒वे॒बृ॒हते॑श॒ष्यं॑श्च॒ः स्व॒क्ष-
च॒यस्य॑धृ॒प्रतो॑धृ॒षन्मनः॑ । बृ॒हच्छृ॑वा-
असु॑रोव॒र्हणा॑कृतः पु॒री॒हरि॑भ्यां॒बृष-
भोरथो॒हिषः॑ ॥३॥

अर्च॑	आदरेणोच्चारय	आदर से कहो
द्वि॒वे	दीप्ताय	दीप्तिमानके ताई
बृ॒हते	महते	महान के ताई
श॒ष्यम्	वलकरम् (तत्रसाधुरितियत्,शूप मितियलनाम निघं०२।९)	वल करने वाले को
वचः॑	वचः	वचन को।
स्व॒क्ष॒त्रम्	स्वाधिपत्य युक्तम्	स्वतन्त्र
यस्य॑	यस्य	जिसका

३ {	निऽञ्ज- जते	नितरां प्रसा- धयति	अत्यन्त शोभाय मान करता है

संस्कृतार्थः ।

(हे आर्यगण!) समर्थाय शक्तियुक्ताय प्रज्ञावते (इन्द्राय) नमस्कुरु शृण्वन्तमिन्द्रमाद्रियन् (सन्) अभिष्टुहि, यः सेचनसामर्थ्येन वृषा (कामानाम्) वर्षयिता धर्षकेण बलेन द्यावा पृथिव्यौ नितरां प्रसाधयति ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

(हे आर्यगण) समर्थ शक्तिमान, (और) बुद्धिमान (इन्द्र) के ताई नमस्कार करो, (और) आदर करते हुए सुनने वाले इन्द्र की स्तुति करो, जो सेचनसामर्थ्य से नर और (कामनाओं को) बरसाने वाले (हैं) ऐसे इन्द्र) प्रगल्भ बल द्वारा द्यौं (और) पृथिवी को अत्यन्त शोभायुक्त करते हैं ॥ २ ॥

(१) यह समझ कर कि इन्द्र सुनते हैं, आदर पूर्वक उन की स्तुति करो ।

(२) जो सेचनसामर्थ्य से नर हैं, और मनुष्य की सब कामनाओं को पूर्ण करते हैं ।

(३) ऐसे इन्द्र द्यौं और पृथिवी को अपने बलद्वारा शोभायुक्त करते हैं ।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

अर्चा॑ दि॒वे॒ बृ॒ह॒ते॒ शृ॒ष्यं॑ श्व॒चः॑ स्व॒क्ष-
त्रं॑ यस्य॒ धृ॒ष॒ती॒ धृ॒ष॒न्म॒नः॑ । बृ॒ह॒च्छृ॒वा-
अ॒सुरो॑ ब॒र्ह॒णा॑ क्तः॒ पुरो॑ हरि॒भ्यां॑ बृष-
भोरथो॒ हिषः॑ ॥३॥

अर्चं॑	आदरेणोच्चारय	आदर से कहो
दि॒वे	दीप्ताय	दीप्तिमानके ताई
बृ॒ह॒ते	महते	महान के ताई
शृ॒ष्य॑म्	वलकरम् (तत्रसाधुरितियत्, शूष मितिवलनाम निघ० २।९)	बल करने वाले को
वचः॑	वचः	वचन को।
स्व॒क्ष॑त्रम्	स्वाधिपत्य युक्तम्	स्वतन्त्र
यस्य॑	यस्य	जिसका

धृषतः	धर्षणशीलस्य	शूरवीर का
धृषत्	धृष्टम्	निडर
मनः	मनः	मन
बृहत्श्रवाः	महायशस्वी	बड़े यश वाला
२ असुरः	असुःप्राणस्तद्वान् (रोमन्तर्धीयः निद०)	प्राण से युक्त
वर्हणा	वलवान् (भा०को० (विमकेडादेशः)	बलवान
कृतः	कृतः	किया गया
२ पुरः	पुरोवर्ती	अगवैया
३ हरिभ्याम्	अश्वाभ्याम्	घोड़ों द्वारा
वृषभः	सेचनसमर्थः	नर
४ रथः	रथरूपः	रथरूप
हि	यतः	जिससे
सः	सः	वह

संस्कृतार्थः।

धर्पणशीलस्य यस्य (इन्द्रस्य) धृष्टं मनः स्वाधि
पत्य युक्तम् (अस्ति) दीप्ताय महते (तस्मै) वलकर
वच आदरेणोच्चारय, यतो महायशस्वी प्राणवान्वल
वानश्रवाभ्यांपुरस्कृतः सेचनसमर्थः (सः) रथरूपः
(अस्ति) ॥ ३ ॥

भाषार्थः।

शूरवीर जिस (इन्द्र) का निडर मन स्वतंत्र (है)
दीप्तियुक्त (उस) महान के ताई वल करने वाले
वचन को आदरपूर्वक कहो क्योंकि वडे यश वाला
प्राण से युक्त, वलवान, घोड़ों द्वारा अगवैया किया
गया (वह) नर रथरूप है ॥ ३ ॥

(१) "वल करने वाला वचन" वेद मंत्र रूप स्तुति जिस के
करने से इन्द्र में वल उत्पन्न होता है।

(२) "प्राणसे युक्त" अर्थात् जीवन की चेष्टासे युक्त (Full of life)

(३) जिस के घोड़े सप से भागे रहते हैं।

(४) "रथरूप" अर्थात् इक्ष ससार के दुःख और पाप से पार
लंघाने वाला ॥

इन्द्रोदेवतां जगतीछन्दः १२।१२।१२।१२

त्वद्वि॒वोवृ॒ह॒तः॑ सा॒नु॒कोप॒यो ऽव॒-

त्मना धृषता शम्बरं भिनत् । यन्मा-
यिनो ब्रन्दिना मन्दिना धृष च्छितां-
गभस्ति मशनिं पृतन्यसि । ४ ।

त्वम्

त्वम्

तूने

दिवः

दुलोकस्य

दुलोक के

बृहत्तः

महतः

महान के

सानु

शिखरम्

शिखर को

कोपयः

अव + कोपयः
अकम्पयः

कंपाया हे

अव

अव +

—

त्मना

निजसामर्थ्येन
(मन्त्रेत्त्वित्याकारलोपः)

अपनी सामर्थ्य से

धृषता

धृष्टेन

प्रगल्भ से

शम्बरम्

शम्बरम्

शम्बर को

भि॒नत्

विदारितवान्

चीर डाला है

(पुरुषव्यत्ययोऽडमा-
षश्च)

यत्

यत्

जो

२ मा॒यिनः

मायोपेतान्

मायावियों को

२ ब्र॒न्दि॒नः

समूहवतः

समूह वालों को

म॒न्दि॒ना

दृष्टेन (मनसा)

हर्षित (मन) से

धृ॒षत्

धृष्टः

वेधड़क

शि॒ताम्

तीक्ष्णेन

तीखे से

(तृतीयार्धे द्वितीया)

ग॒भ॒स्ति॒म्

हस्तेन

हाथ से

(तृतीयार्धे द्वितीया)

अ॒श॒नि॒म्

वज्ररूपेण

वज्ररूप से

(तृतीयार्धे द्वितीया)

पृ॒त॒न्य॒सि

पृतनयेच्छसि

युद्ध में मारने की

सङ्ग्रामेहन्तु

इच्छा करते हो

मिच्छसीत्यर्थः

संस्कृतार्थः ।

(हे इन्द्र!) त्वं महतो द्युलोकस्य शिखरमकम्पयः,

धृष्टेन निज सामर्थ्येन शम्बरम्(च)विदारितवान् यद्-
हृष्टेन (मनसा) धृष्टः(त्वम्) समूहवतो मायोपेतान्
(वृत्रान्) तीक्ष्णेन वच्च रूपेण हस्तेन सङ्ग्रामे हन्तुमि-
च्छास ॥४॥

भाषार्थः ।

(हे इन्द्र) आपने महान् घुलोक के शिखर को कंपाया है, आपने अपनी प्रगल्भ सामर्थ्य से शम्बर को चीर डाला, जो हर्षित (मन) से वेधड़क आप समूह वाले मायावी (वृत्रों को) तीक्ष्ण वच्च रूप हाथ से युद्ध में मारने की इच्छा करते हो ॥ ४ ॥

(१) शम्बर भी वृत्र का नामान्तर है । (देखो निघं० १।१०)

(२) समूह बांधे हुए मायावी वृत्र, जल को घेरने वाला धूलि का कण समूह है जिस को इन्द्र विद्युत रूपी तीक्ष्ण वच्च से जो इन्द्र का हस्त है मार कर जल को छुडाते हैं ।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः १२।१२।१२।१२

नियद्दृष्ट्वाच्चिप्रवसनस्यसूर्धनि

शुष्णस्यचिद्ब्रन्दिनोरोरुवद्वना ।

प्राचीनेनमनसावर्हणावता यद्दद्या

चित्क्षणवःकस्त्वापरि ॥५॥

नि	नि +	-
यत्	यत्	जो
वृणक्षि	नि+वृणक्षि, नितरां हिंसितवान् (लट्घेंलट्)	मार डाला
प्रवसनस्य	वायोः	वायु के
मूर्धनि	उपरिप्रदेशे	ऊपर
शुष्णस्य	शुष्णम् (द्वितीयाथे पन्ठी)	शुष्ण को
चित्	अपि	भी
ब्रन्दिनः	समूहोपेतम् (द्वितीयाथे पन्ठी)	समूह वाले को
रोरुवत्	गर्जयन्	गर्जाता हुआ
वना	जलानि (नेलोंपः)	जलों को
प्राचीनेन	प्राचीनेन	प्राचीन से

मनसा	मनसा	मन से
बृहणाऽवता	बलवता (भा०को)	बल वाले से
यत्	यत्	जो
अद्य	अद्य	आज
चित्	अपि	भी
कृणवः	करोषि (कृदिकरणे, लेटिलि- प्यडागमः)	करते हो
कः	कः	कौन
त्वा	त्वाम्	तुझ को
परि	प्रति(वध्नाति)	रोक सक्ता है

संस्कृतार्थः ।

(हे इन्द्र!) यत् (त्वम्) वायोरुपरि प्रदेशे जलानि गर्जयन् (सन्) समूहोपेतमपि शुष्णं नितरांहिसितवान् (स त्वम्) बलवता प्राचीनेन मनसा यद्यपि (तत्कर्म) करोषि, कस्त्वां प्रति(वध्नाति) ॥५॥

भाषार्थः ।

(हे इन्द्र) जो वायु के ऊपर देश में जलों

को गर्जाते हुए आपने समूह बांधे हुए भी शुष्ण को मारा था (वह आप) बल वाले प्राचीन मन से जो आज भी (उस कर्म को) करें तो कौन आपको रोक सकता है ॥ ५ ॥

मत्र का अर्थ यह है कि शोषण द्वारा प्रजा को पीड़ित करने वाले देव और मनुष्य के शत्रु को जैसे इन्द्र ने प्राचीनकाल में मारा था, यदि उस को मार कर अब भी हमारे देश में अना-वृष्टि को दूर करें तो उन को रोकने वाला कौन है ।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुच्छन्दः ।११।११।११।११।

त्वमा विथनयितुर्वशयदुं त्वंतुर्वी-
तिवयंशतक्रतो॥ त्वंरथमेतशंकृतव्ये
धने त्वंपुरोनवतिदम्भयो नव ॥६॥

त्वम्	त्वम्	तूने
आविथ	ररक्षिथ	रक्षित किया
नयितुम्	नृभ्योहितम् (हिताऽर्थेयत्)	मुनियों के लिये हितकारी को

१ तुर्वशम्	तुर्वशम्	तुर्वश को
१ यदुम्	यदुम्	यदु को
१ त्वम्	त्वम्	तूने
१ तुर्वीतिम्	तुर्वीतिम्	तुर्वीति को
१ वयम्	वयकुलजम्	वयवंशी को
१ शतक्रतो०	हे बहु कर्मन्	हे बहुत कर्म वाले
१ त्वम्	त्वम्	तूने
१ रथम्	रथम्	रथ को
१ एतशम्	अश्वम् (निघं०१।१४)	घोडे को
१ कठव्ये	कर्मणि (निघं०।२।१)	कर्म में
१ धने	धनसम्बन्धनि	धन सम्बन्धी में
१ त्वम्	त्वम्	तूने

पुरः	पुराणि	गदों को
नवतिम्	नवतिम् +	-
दम्भयः	नाशितवान् (भङ्गभावः)	नाश किया
नव	नवतिम् + नव नवनवतिसङ्ख्याकानि	निन्नानवे को

संस्कृतार्थः :

हे बहुकर्मन् ! (इन्द्र !) त्वं मनुष्य हितकारिणं तुर्वशं रक्षितवान्, त्वं यदुम् (तथा) वय्यवंशोत्पन्नं तुर्वीतिम् (रक्षितवान्) (त्वम्) धन सम्बधिकर्मणि रथमश्वम् (च रक्षितवान्, त्वम्) नवनवति सङ्ख्या कानि पुराणि नाशितवान् । ६ ।

माषार्थः ।

हे बहुत कर्म वाले (इन्द्र) आपने मनुष्योंके हितकारी तुर्वश की रक्षा की, आपने यदु की (और) वय्यवंशी तुर्वीतिकी (रक्षा की) आपने धन सम्बन्धी कर्म में रथ (और) घोड़ों की (रक्षा की) आपने निन्ना-नवे गदों को नाश किया ॥ ६ ॥

(१) तुर्वश, यदु और तुर्वीति के लिये देखो पृ. १४०

(२) धन सम्बन्धी कर्म युद्ध है जिसमें शत्रु के धन की प्राप्ति होती है ॥

(३) निम्नानुरे गढ़ जो वृत्र ने चादल रूप में अपनी रक्षा के लिए बनाए हुए थे अथवा तुर्वश, यदु, और तुर्वीति, के शत्रु राजाओं के अनेक गढ़ जिन को इन्द्र ने नाश किया ॥

इन्द्रोदेवता जगती छन्दः । १२।१२।१२।१२।

सघाराजासत्पतिःशुश्रुवज्जनो
 रातहव्यःप्रतियःशासमिन्वति। उ-
 कथावायीअभिगृणातिराधसा दान
 रस्माउपरापिन्वतेदिवः। ७।

सः

सः

वह

घ

खलु

सचमुच

राजा

राजा

राजा

सत्पतिः

सतांपालयिता

सत्पुरुषोंकापालक

शुश्रुवत्

वृद्धिप्राप्नोति
 (दिवपृद्धौलङ्घ्येत्तद्
 भङ्गमायश्च)

वृद्धि को प्राप्त
 होता है

जनः	मनुष्यः	मनुष्य
रातऽह्वयः	दत्तहविष्कः(सन्)	हवि देकर
प्रति	प्रति +	-
यः	यः	जो
शासम्	शासनम्	नियम को
इन्वति	प्रति+इन्वति,अनु गच्छति (निघं० २।१४)	पीछे चलता है
उक्था	शस्त्राणि	स्तुति के गीतों को
वा	वा	अथवा
यः	यः	जो
{ अभिऽग- गाति	अभिनन्दयति (आ०को०)	सत्कार करता है
राधसा	धनेन	धन से
दानुः	समृद्धिः (आ०को०)	सम्पत्ति

अस्मै	अस्मै	इसके ताई
उपरा	अधस्तात् (भा०को०)	नीचे की ओर
पिन्वते	परिस्रवति (भा०को०)	बहती है
दिवः	दुलोकात्	दुलोक से

संस्कृतार्थः ।

स मनुष्यः खलु सतां पालयिता राजा (च भूत्वा) वृद्धिं प्राप्नोति यो दत्तहविष्कः (सन्) शासन मनुगच्छति अथवा यः शस्त्राणि धनेनाऽभिनन्दयति, अस्मै (पुरुषाय) दुलोकादधस्तात् समृद्धिः परिस्रवति ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

सचमुच वह मनुष्य सत्पुरुषों का पालक (और) राजा (होकर) वृद्धि को प्राप्त होता है जो हवि दे कर नियम पर चलता है, अथवा जो स्तुति के गीतों का धन से सत्कार करता है ऐसे (पुरुष) के लिये संपत्ति दुलोक से नीचे की ओर बहती है ।७।

जो देवताओं को हवि देता हुआ उन के शासन पर चलता है, अथवा जो यज्ञ में वेद के स्तोत्रों को सुनकर पढ़ने वाले

श्रद्धिजों का धन से सत्कार करता है यह मनुष्य सत्पुरुषों का पालक और राजा होकर वृद्धि को प्राप्त होता है और उसके लिये संपत्ति मूलधार वषों की न्याई आकाश से नीचे की ओर बहती है ॥

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुच्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११ ।

असमं च त्रमसमानीषा प्रसोम-
पा अपसासन्तुनेमे । येत इन्द्रदुषो-
वर्धयन्ति महि च त्रस्थविरं वृषय-
ञ्च ॥ ८ ॥

असमम्	अनुपमम्	अतुल्य
क्षत्रम्	राज्यबलम्	राज्य का बल
असमा	अनुपमा	अतुल्य
मनीषा	बुद्धिः	बुद्धि
प्र	प्र+	-

सोमऽपाः	सोमपाः	सोम पीने वाले
अपसा	कर्मणा (निघं० २।१)	कर्म से
सन्तु	प्र + सन्तु अग्रे भवन्ति (लङ्घेलोद्)	आगे होते हैं
नेमे	एते (सा० मा०)	ये
ये	ये	जो
ते	तव	तेरे
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
ददुषः	दत्तवतः	दानी के
वर्धयन्ति	वर्धयन्ति	बढ़ाते हैं
महि	महत्	बड़े को
क्षुत्रम्	राज्य घलम्	राज्य के घल को
स्थविरम्	स्थिरम्	निश्चल को

हृष्यम्	वृषत्वम्	पुंस्त्व को
च	च	और

ससृह्यतार्थः ।

एते सोमपाः कर्मणा (सर्वेषाम्) अग्ने भवन्ति
(एषाम्) राज्यबलमनुपमं बुद्धिः (च) अनुपमा
(भवति), ये (सोमपाः) हे इन्द्र ! दत्तवतस्तव महत्
राज्यबलं स्थिर पुंस्त्वं च वर्धयन्ति ॥ ८ ॥

भापर्यः ।

ये सोम पीने वाले कर्मद्वारा (सब के) आगे होते
हैं, (इनका) राज्य बल अतुल और बुद्धि अतुल (होती
है), जो (सोम पीने वाले) हे इन्द्र ! आप दाताके बड़े
राज्य बल और निश्चल पुंस्त्व को बढ़ाते हैं ॥ ८ ॥

“ ये सोम पीने वाले ” अर्थात् जो हम में से सोम यह करते
हैं और उसके द्वारा दानो इन्द्र के बल और वीर्य को बढ़ाते हैं ।
वे सब के अग्रगण्य होते हैं और उन का क्षेत्र बल और बुद्धि
अनुपम होती है ॥

इन्द्रो देवता त्रिष्टुच्छन्दः ११११११११११ ॥

तुभ्येदेतिवहुला अद्रिदुग्धा प्रच-

मूषदप्रचमसाद्गन्द्रपानाः । व्यग्रनु-
 हितर्पयाकाममेषा मथामनीवसुदे-
 यायकृष्व ॥ ६ ॥

तुभ्य	तुभ्यम् (छान्दसोमलोपः)	तेरे लिये
इत्	एव	ही
एते	एते	ये
बहुलाः	प्रभूताः	बहुत
{ अद्रिऽ दुग्धाः	ग्रावभ्योदुग्धाः	पथरों से दोहे हुए
चमूऽसदः	चमसेष्ववस्थिताः	चमस पात्रों में विद्यमान
चमसः	चम्यन्तेभक्ष्यन्त इतिचमसाःसोमाः	सोम

इन्द्रऽपानाः	इन्द्रस्यपान योग्याः	इन्द्रके पीने योग्य
वि	वि+	-
अश्नुहि	वि+अश्नुहि, भुङ्क्ष्व	भोगो
तर्पय	पूरय	पूर्ण करो
कामम्	अभिलाषम्	इच्छा को
एषाम्	एषाम्	इन की
अथ	अनन्तरम्	पीछे
मनः	मनः	मन को
वसुऽदेयाय	धनदानाय	धन देने के लिये
कृष्व	कुरुष्व (चिकरणस्यलुक्)	करो

ससृष्टार्थः ।

तुभ्यमेवैते प्रभूता प्रावभ्यो दुग्धा, श्वमसेष्व-
स्थिता इन्द्रस्यपानयोग्याः सोमाः (वर्तन्ते, तान्)

भुङ्क्ष्व (भुक्त्वा) एषाम् (सोमानाम्) अभिलाषं पूरय,
अनन्तरम् (अस्मभ्यम्) धनं दातु मनः करुष्व ॥९॥

भाषार्थः ।

आपके लिए ही ये पत्थरों से दोहे हुए चमस पात्रों में रखे हुए इन्द्र के पीने योग्य, बहुत सोम (हैं, इनको) भोगो, भोग कर इन (सोमों) की इच्छा को पूर्ण करो, फिर (हम को) धन देने के लिए मन को (प्रवृत्त) करो ॥ ९ ॥

इन्द्रो देवता जगती छन्दः ११२।१२।१२।१२॥

अपामतिष्ठद्भ्रूणह्वरंतमो ऽन्त

र्ष्वस्य जठरेषु पर्वतः । अभीमिन्द्रो-

नद्यो वत्रिणाहिता विप्रवा अनुष्ठिताः प्र-

वणेषु जिघ्रन्ते ॥१०॥

अपाम्	जलानाम्	जलों की
अतिष्ठत्	अतिष्ठत्	ठैरा हुआ था

ध॒रु॒गाऽद्व॒रम्	धारानिरोधकम्	प्रवाह के रोकने वाला
त॒मः	अन्धकारम्	अन्धकार
अ॒न्तः	मध्ये	बीच में
वृ॒त्रस्य	वृत्रस्य	वृत्र के
ज॒ठरेषु	उदरेषु	उदरों में
प॒र्वतः	मेघः (निघं० १११०)	बादल
अ॒भि	अभि +	-
इ॒म्	(पूरणः)	-
इ॒न्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
न॒द्यः	(अपः नदनात्) (द्वितीयार्थे प्रथमा)	जलों को
व॒त्रिणा	आवरकेण	रोकने वाले से

हिताः	धृताः	पकड़े हुए
विप्राः	सर्वाः	सब को
१ अनुऽस्थाः	अनुक्रमेण तिष्ठन्तीः	अनुक्रम से ठहरे हुओं को
२ प्रवणेषु	निम्नप्रदेशेषु	नीचे स्थानों में
३ जिघ्नते	अभि+जिघ्नते प्रापितवान् (लिङ्घेल्ड्) (अन्तर्भावितण्यर्थः)	पहुंचा दिया

संस्कृतार्थः ।

(पूर्व काले) जलाना धारानिरोधकमन्धकार-
मतिष्ठत्, वृत्रस्योदर प्रदेशेषु मेघः (अभूत्) इन्द्रो
ऽनुक्रमेण तिष्ठन्तीरावरकेण (वृत्रेण) धृताःसर्वा-
अपो निम्नप्रदेशेषु प्रापितवान् ॥ १० ॥

मापार्थः ।

(पूर्वकाल में) जलों की धारा को रोकने वाला
अन्धकार ठैरा हुआ था, (और) बादल वृत्र के उदर
प्रदेशों में थे, इन्द्र ने अनुक्रम से ठैरे हुए, रोकने
वाले(वृत्र) से पकड़े हुए सब जलों को नीचे स्थानों
में पहुंचा दिया ॥ १० ॥

इस मंत्र में ऋषि मनुष्यों की उत्पत्ति से पूर्व वृत्तान्तको देख रहे हैं, जिस का वर्णन सूक्त ३२ में है '(देखो पृ० ७४०)

(१) अनुक्रम से ऊँरे हुए अर्थात् जो बादलों की तरह पर यह लगी हुई थी उन सब को इन्द्रने नीचे स्थान अर्थात् जहाँ पर अब समुद्र हैं वहाँ पहुँचा दिया।

(२) हमें अपनी समझके लिये लट् का लिट् अर्थ करना पड़ता है, ऋषि तो पूर्व वृत्तान्त को मन द्वारा उपस्थित की न्याईं देख रहे हैं इस लिये लट् का प्रयोग करते हैं।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११

सशे॒वध॑मधि॒धाद्यु॑म्नम॒स्मे म॒हि

क्षत्रं॑जना॒षाळि॑न्द्र॒तव्य॑म् । रक्षा॑चनो

म॒घोःनः॑पा॒हिसू॑रीन् रा॒येच॑नःस्वप्नः

त्याद्गु॒षेधाः॑ ॥ ११ ॥

सः	सः	वह
शे॒वध॑म्	सुख॑म् (निघं०।३।६)	सुख॑ को
अधि॑	अधि +	

धाः	अधि+धाः, स्थापय (लोडयेंलुड, अड मावदच)	स्थापन करो
दाम्नम्	यशः	यश को
अस्मे०	अस्मासु	हम में
महि	महत्	बड़े को
क्षत्रम्	राज्यवलम्	राज्य बल को
जनाषाट्	मनुष्याणामभि- भावकम्	मनुष्यों के दवानेवाले को
इन्द्र	हे इन्द्र!	हे इन्द्र
तव्यम्	प्रवृद्धम् (तवतिर्द्वयर्थः)	बड़े हुए को
रक्ष	रक्ष	रक्षा करो
च	च	और
नः	अस्माकम्	हमारे
मघीनः	धनवतः	धनवानों को

पाहि

पाहि

पालन करो

सूरीन्

स्तोतन्
(निघ०३।१६)

स्तोताओं को

राये

ऐश्वर्याय
(को०)

ऐश्वर्यके लिये

च

च

और

नः

अस्मान्

हम को

सुसन्तत्यै

सुसन्तत्यै

उत्तम सन्तान
के लिये

वृषे

वलाय
(आ०को०)

बल के लिये

धाः

स्थापय
(लोडयेंलुङ्, भडभावश्च)

स्थापन करो

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! सः (त्वम्) अस्मासु सुखं यशो मनु-
प्याणामभिभावकं प्रवृद्धं महत्क्षत्रबलम् (च) स्थापय
अस्माकं धनवतो रक्ष स्तोतृश्च पाहि, अस्मानैश्व-
र्याय सुसन्तत्यै वलाय (च) प्रेरय ॥ ११ ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र ! वह (आप) हम में सुख को, यश को,
(और) मनुष्योंको दवाने वाले बड़े हुए महान राज्य
बल को स्थापन करो, हमारे धनवानों की रक्षा करो

और स्तोताओं का पालन करो, (और) हम को ऐश्वर्य्य उत्तम सन्तान और बलके लिए प्रेरण करो ॥११॥

(१) अपनी जाति के धनगनों की रक्षा के लिए भी प्रार्थना करनी चाहिये, क्योंकि वे विपत्ति के समय जाति की रक्षा करते हैं

(२) स्तोता ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिए भी प्रार्थना करनी चाहिए जो ऋषि द्वारा जाति के धन धर्म आदि सर्वस्व की रक्षा करते हैं।

इति चतुःपञ्चाशं सूक्तम् ।

ऋ०मं०१ सू०५५

सव्य ऋषिः

विनियोग—यह सूक्त भतिरात्र यज्ञ के प्रथम पट्याय में मैत्रा वरुण के शस्त्र में पढ़ा जाता है (आ०श्रौ० सू०६।४।१०) और दशरात्रके द्वितीय छन्दोम के निष्केवल्यशस्त्र में भी पढ़ा जाता है (आ० श्रौ० सू० ३।२।७।२३)

इस सूक्त में भी इन्द्र की स्तुति है—इन्द्र घुलोक से भी घौड़े और पृथ्वीसे भी बड़े हैं जो उन की आशा को उल्लघन करता है, उसके लिये वह भयानक और सन्ताप कारी हैं, शूरवीर इन्द्र सदासे बलकर्म द्वारा स्तुति की इच्छा करते हैं, वह सय धनादि पदार्थों के धारण करने वालों के स्वामी हैं, और घोर्य द्वारा सय देवताओं से बड़े हुये और सय के अगवैया हैं, जो इन्द्र से प्रेम करता है वा जो उन की पूजा करता है उस की कामनाए पूर्ण होती हैं, यानप्रस्थी भी इन्द्र की स्तुति करते हैं। इन्द्र ही मनुष्यों को सप्राप्त में प्रेरण करते है, जिससे वे गुस्स होकर इन्द्र में यज्ञा को धारण करें, मनुष्यों

को जल की प्राप्ति यश के चाहने वाले इन्द्र को ही धीर्ययुक्त कर्मों से हुई है, जय इन्द्र देने का मनसूया करके अपने स्तोता की ओर अपना रथ फेरते हैं तो उनके घतुर सारथि कमी भूल नहीं करते और उन को शीघ्र मत्त के पास पहुँचाते हैं, इन्द्र दोनों हाथोंमें धन को और शरीर में असह्य बल को धारण किये हुए हैं, यह बल स्तुति करने वालों की स्तुति से उत्पन्न होता है, ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः १२।१२।१२।१२।

दिव॑श्चि॒दस्य॑ वरि॒मा वि॒पप्रथ॑-

इन्द्रं॑ नम॒क्त्वा पृ॑थि॒वी च॒ न प्रति॑ । भीम-

स्तु॑ वि॒ष्माञ्च॑ चर्ष॒णिभ्य॑ आ॒ तपः॑ शि॒शो-

ते॒ वज॑न्ते॒ जसे॑ न॒ वंस॑ गः ॥१॥

दिवः	द्युलोकात्	द्युलोक से
चित्	अपि	भी
अस्य	अस्य	इस की
वरिमा	पृथुता	चौड़ाई

वि	वि +	-
पप्रथे	वि+पप्रथेविशेषेण विस्तृता	विशेष फैली है
इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
न	न	नहीं
मह्ना	महिम्ना	महिमा से
पृथिवी	पृथिवी	पृथिवी
चन	अपि	भी
प्रति	(सादृश्ये) (आ०को०)	सदृश
भीमः	भयङ्कर.	भयानक
तुविष्मान्	बलवान्	बली
वर्षाणिऽभ्यः	मनुष्येभ्यः (निघ०२३)	मनुष्यों के लिये
आऽतपः	सन्तापकारी	सन्ताप देने वाला

शिशीते

तनूकरोति

पैनाता है

(शो तनूकरणे व्यत्य-
येनाऽऽत्मनेपदम्,
विकरणस्यदलु-
दछान्दसः)

वज्रम्

वच्चम्

वज्र को

तेजसे

तैक्षण्याय

तीखाकरनेकोलये

न

इव

की न्याईं

वंसगः

वृषभः

बैल

ससृष्टतार्थः ।

अस्य(इन्द्रस्य) पृथुता द्युलोकादपि विशेषणे
विस्तृता, पृथिव्यपि महिम्नेन्द्र तुल्या न(अस्ति) भय-
ङ्करो बलवान् मनुष्येभ्यः (च) सन्ताप कारी (इन्द्रः)
वृषभ इव तैक्षण्याऽर्थं वच्चं तनूकरोति । १ ।

भाषार्थः ।

इस (इन्द्र) की चोडाई द्युलोक से भी विशेष
फैली है, पृथिवी भी महिमा से इन्द्रके तुल्य नहीं (है)
भयानक, बलवान (और) मनुष्यों के लिये सन्ताप
देने वाला (इन्द्र) बैल की न्याईं वज्र को तीखा
करने के लिए पैनाता है ॥१॥

(१) "मनुष्यों को संताप देने वाला" जो मनुष्य इन्द्र के शासन का उल्लंघन करते हैं उनके लिए वह ऐसे भयानक और संताप देने वाले हैं जैसे रुष्ट बैल साँगों को पैना कर संतापकारी होता है ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

सो अर्ण॑वो न नद्यः॑ समुद्रि॒यः॑ प्रति-
 गृ॒ह्णाति॑ वि॒श्रिता॑ वरी॒मभिः॑ । इन्द्रः॒
 सोम॑स्य पी॒तये॑व॒षाय॑ते स॒नात्स॒यु-
 धम॑ञ्जी॒जसा॑प॒नस्य॑ते ॥२॥

सः

अ॒र्ण॑वः

न

न॒द्यः॑

स॒मु॒द्रि॒यः॑

सः

समु॒द्रः

इव

नदीः

(द्वितीयाऽर्थे प्रथमा)

अन्तरिक्षे भवः

वह

समु॒द्र

की न्याइँ

नदियों को

अन्तरिक्ष में रहने
वाला

प्रति	प्रति+	-
गभ्णाति	प्रति+गभ्णाति	प्रहण करना है
विऽत्रिताः	प्रति+गह्णाति विऽत्रिताः (अपः)	केले हुए [जनों] को
वरीमऽभिः	उरः	विष्णुओं से
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र
सोमस्य	सोमस्य	सोम के
पीतये	पानार्थम्	पीने के लिए
हृषऽयते	हृषऽवाऽऽगरति	खेद ही न्याह भाषण करता है
सुनात	विरहात्	गदा से
मः	मः	मह
यधमः	यधमः	यधि
पोत्रसा	यधमः	यध के ३ सं से

पनस्यते

स्तुतिमिच्छति
(पनस्तुतो, व्यत्ययेना
ऽऽत्मनेपदम्)

स्तुति की इच्छा
करता है

ससृष्टार्थ ।

अन्तरिक्षे भवः स इन्द्रो विस्तृताः (अपः) समुद्रो
नदीरिव (स्वकीयैः) विस्तारैः प्रतिगृह्णाति, पुनः सोमस्य
पानार्थं वृषद्वाऽऽचरति, स योद्धा धिरकालाद् बल
कर्मणा स्तुतिमिच्छति ॥ २ ॥

भाषार्थ

अन्तरिक्षमें रहने वाले वह इन्द्र फैले हुए (जलों)
को (अपने) विस्तार द्वारा ग्रहण करते हैं जैसे समुद्र
नदियों को, फिर सोम पीने के लिए घैल की न्याईं
आचरण करते हैं वह जोधा सदा से बल कर्म द्वारा
स्तुति की इच्छा करते हैं ॥ २ ॥

जो प्राक् सोमरस में है, वह अन्तरिक्ष के जलों से ही
उतर कर सोमरस में प्रवेश हुई है । इसलिए कहा है कि इन्द्र
अन्तरिक्ष में फैले हुए जलों को ग्रहण करके उन जलों में जो सोम
है उसका घैल की न्याईं पी जाते हैं ।

इन्द्रो देवना जगती छन्द ११२।१२।१२।१२॥

त्वं तमिन्द्र पर्वतं नभोजसे मूर्ध्नि-

नृ॒णा॒स्य॒ध॒र्म॒णा॒मि॒र॒ज्य॒सि॒ । प्र॒वी॒र्ये॑ण॒दे॒वता॑ऽति॒चे॒किते॑ वि॒श्व॒स्मा॒-
 उ॒ग्रः॑ क॒र्म॒णो॑ पुरो॒हितः॑ ॥३॥

त्वम्

त्वम्

तू

तम्

तम्

उसके

इन्द्र

हे इन्द्र !

हे इन्द्र

पर्व॑तम्

मेघम्
(निघं०२।१०)

मेघ को

न

इव

जैसे

भोज॑से

भोगाय

भोग के लिये

महः॑

महतः

महान के

नृ॒णा॒स्य॑

धनस्य
(निघं०२।१०)

धन के

ध॒र्म॒णा॒म्

धारयितुम्
(द्वितीयाधेयन्ती)

धारण करने वालों
को

दूरज्यसि	राजाऽसि (हरिज्यतिरेश्वर्यकर्मि) (निघं० २।२१)	राजा हो
प्र	प्रकृष्टम्	अत्यन्त
वीर्येण	वीर्येण	बलसे
देवता	देवता	देवता
अति	अति+	-
चेकिते	अति+चेकिते अतिरिच्यते (कितजीवने, अतिजी- वति अतिरिच्यते । आ०को०)	बढ़कर है
विप्रवस्मै	सर्वस्मै	सब के ताई
उग्रः	भयानकः	भयानक
कर्मणो	कर्मणे	कर्म के ताई
पुरऽहितः	अग्नेनियुक्तः	अगवैयावनाया हुआ

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! त्वं तंमेघमिव भोगाय महतो धनस्य
धारयितुनिरज्यसि (सः) देवोवीर्येण प्रकृष्टमति
रिच्यते, (सः) उग्रः सर्वस्मै कर्मणेऽप्रेनियुक्तः ॥३॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र आप जैसे उस मेघ के स्वामी हैं वैसेही
भोग के लिए सब धन के धारण करने वालों के (भी)
हैं (वह) देवता, बल द्वारा (सब से) अत्यन्त बढ़ कर-
हैं, (वह) भयानक सब कर्मोंके लिए अगवैया बनाए
हुए हैं ॥३॥

(१) भोग के लिए जो धनादि पदार्थों के धारण करने वाले
हैं इन्द्र उन सब के स्वामी है जैसे जल रूपी धन को धारण
करने वाले उस ऊपर दीखते हुए मेघ के (ज्योति रूपी धन को
धारण करने वाले सूर्य के, सुवर्णादि धन को धारण करने वाले
पृथिवी के इत्यादि)

(२) इन्द्र देवता अपने महान वीर्य द्वारा सब से अत्यन्त
बढ़े हुए हैं ।

(३) जितने कठिन कर्म हैं, उन सब में बल द्वारा भयानक
इन्द्र को ही देवता अपना अगवैया बनाते हैं ।

इन्द्रो देवता जगती छन्दः ११२।१२।१२।१२।

सद्गुणैर्नमस्युभिर्वचस्यते चा-

रुजनेषु प्रव्रवाणद्दन्द्रियम् । वृषाच्छ-
न्दुर्भवति हृद्यतो वृषा क्षेमैराधेना
मघवायदिन्वति । ४ ।

सः	सः	वह
इत्	एव	ही
वने	वने	वन में
नमस्युऽभिः	पूजयितृभिः (नमस्यतिःपत्तिचरण कर्मा निघ०३।५)	पूजने वालों से
वचस्यते	स्तुयते (सा० मा०)	स्तुतिकिया जाता है
चारु	शोभनम्	सुन्दर
जनेषु	मनुष्येषु	गनुष्यों में
प्रव्रवाणः	प्रकटयन्	प्रकट करता हुआ

इन्द्रियम्

वीर्यम्
(भा०शे०)

बल को

वृषा

(कामानाम्)
वर्षयिता

(कामनाओंके)
घरसाने वाला

कृन्टः

अर्चनीयः
(सुन्दरतिरर्चनकर्मा
नियं०३।१४)

पूजने योग्य

भवति

भवति

होता है

हृद्यतः

कामयितव्यः
(हृद्यकान्ती)

कामना करने
योग्य

वृषा

(कामानाम्)
वर्षयिता

(कामनाओंके)
घरसानेवाला

क्षेमैण

सुखेन

सुख से

धेनाम्

वाचम्

वाणी को

मघऽवा

धनवान्

धनवान

यत्

यदा

जब

इन्वति

प्राप्नोति
(इन्वतिर्वादिहर्मा
नियं० २।१४)

प्राप्त होता है

संस्कृतार्थः ।

स एव (इन्द्रः) मनुष्येषु शोभन् वीर्यं प्रकटयन्
वने (स्थितैः) पूजयितृभिः स्तूयते, अर्चनीयः (सः)
(कामनाम्) वर्षयिता भवति, कामयितव्यः (सः)
(कामानाम्) वर्षयिता (भवति) यदा धनवान् (इन्द्रः)
सुखेन (स्तुतिरूपाम्) वाचं प्राप्नोति ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

वह (इन्द्र) ही मनुष्यों में सुन्दर वीर्यको प्रकट
करते हुए धन में पूजने वालों से स्तुति किए जाते
हैं, पूजने योग्य वह (कामनाओं के) वरसाने वाले
हैं, कामना करनेके योग्य वह (कामनाओं के) वरसाने
वाले हैं जब धनवान् (इन्द्र) सुख से स्तुति रूप वाणी
को प्राप्त होते हैं ॥४॥

(१) वानप्रस्थो भी इन्द्र की ही स्तुति करते हैं, जैसे ग्राम
में रहने वाले ।

(२) जब इन्द्र को स्तुति प्राप्त होती है, तब पूजने और
कामना करने के योग्य वह कामनाओं की वर्षा करते हैं ।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२।

सद्गन्महानिसमिथानिमज्मना

कृणोतियुधमञ्जसाजनेभ्यः । अ-

धाचनश्चद्वधतित्विषीमत इन्द्राय-

वज्रनिघनिघनतेवधम्।५।

सः	स.	वह
इत्	एव	ही
महानि	महतः	बड़ो को
सम्पद्धानि	सङ्ग्रामान् (निघ० २।१७)	युद्धों को
मज्जमना	शोधकेन (टम सजो शुद्धी)	शुद्ध करनेवाले से
वृणोति	करोति	करता है
युधमः	योद्धा	जोधा
ओजसा	बलेन	बल से
जनेभ्यः	मनुष्येभ्यः	मनुष्यों के लिए
अध	अनन्तरम्	पीछे

च॒नः	ए॒व	ही
अ॒त्	श्र॒द्धा॒म्	श्र॒द्धा को
द॒ध॒ति	धा॒र॒य॒न्ति	धा॒रण॒ करते हैं
दि॒व॒षि॒ऽम॒ते	दी॒प्ति॒म॒ते	दी॒प्ति॒मा॒न के लि॒एँ
इ॒न्द्रा॒य	इ॒न्द्रा॒य	इ॒न्द्र के॒ लि॒एँ
व॒ज्र॒म्	व॒ज्र॒म्	व॒ज्र को
{ नि॒ऽघ॒नि॒- घ्न॒ते	पुनः॑ पुनः॑ प्र॒हारां कुर्व॑ते	वा॒र॒वा॒र मा॒रने वा॒ले के॒ लि॒ये
व॒ध॒म्	व॒ध॒रूप॒म्	व॒ध रू॒प को :

संस्कृतार्थः ।

सएवयोद्धा (इन्द्रः) शोधकेन बलेन मनुष्येभ्यो महतःसङ्ग्रामान् करोति, अनन्तरमेव (मनुष्याः) दीप्तिमते वधरूपं वज्रं पुनः पुनः प्रहर्त्रे (तस्मै) इन्द्राय श्रद्धां धारयन्ति ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

वह ही योद्धा (इन्द्र) शुद्ध करने वाले बल से

मनुष्यों के लिए बड़े, युद्ध करते हैं इसके अनन्तर ही (मनुष्य) दीप्तिमान (और) वध रूप वज्र से बार बार मारने वाले (उस) इन्द्र के ताई श्रद्धा को धारण करते हैं ॥५॥

जब किसी मनुष्य जाति में अश्रद्धा रूपी अशुद्धि आजाती है तब इन्द्र उस को अपने शोधक बल द्वारा सप्राम में प्रेरण करते हैं, और जब उस जाति के लोग सप्राम में इन्द्र को मनुष्यों पर वध करते हुए देखते हैं तब उन में श्रद्धा उत्पन्न होती है, और यह जाति फिर शुद्ध हो जाती है ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्द. ११२।१२।१२।१२।

सहिश्चवस्युःसदनानिक्वचिमा

दमयावधानञ्जसाविनाशयन् ।

ज्योतीषिक्वणवन्नवकाणियज्यवेऽव

सुक्रतुःसर्तवाअपःसृजत् ॥६॥

सः	स	वह
हि	एव	ही

श्रवस्युः	यशोऽभिलाषी	यशकाअभिलाष
सदनानि	ग्रहाणि	घरों को
कृत्रिमा	कृत्रिमाणि	कृत्रिमों को
द्मया	पृथिव्या	पृथिवी से
वृधानः	वर्धमानस्य ("सुपांसुलुक्" अ० ७।१।३९)	वढते हुए के
ओजसा	बलेन	बल से
{ विनाश यन्	वनाशयन्	नाश करता हुआ
ज्योतीषि	ज्योतीषि	ज्योतियों को
कृण्वन्	कुर्वन्	करता हुआ
अवकाशि	आवरकेण रहि- तानि	ढांपने वाले से रहितों को
यज्यवे	यष्टू	यजमान के ताई

अव	अव +	-
सुकृत्:	सुकर्मा	सुकर्माने
सर्वे	प्राप्तुम् (सुगती तपे प्रत्यय)	प्राप्त होनेकेलिये
अपः	जलानि	जलों को
सृजत्	अव+सृजत् विसृष्टवान्	छोड़ा

संस्कृतार्थः ।

स एव यशोऽभिलाषी सुकर्मा (इन्द्रः) पृथिव्या
वर्धमानस्य कृत्रिमाणि गृहाणि घलेन विनाशयन् ज्यो-
तींषि (च) आवरण रहिनानि कुर्वन् यजमानाय प्राप्तुं
जलानि विसृष्टवान् ॥ ६ ॥

माषार्थः ।

उस ही यश के अभिलाषी सुकर्मा (इन्द्र ने)
पृथिवी से बढ़ने वाले के कृत्रिम घरों को तोड़ते हुए
(और) ज्योतिओं को आवरण रहिन करते हुए, यज-
मान के ताई प्राप्त होने के लिए जलों को छोड़ा । ६ ।

(१) पृथिवी से बढ़ने वाला पृथिवी पर ही कृत्रिम
घरों को तोड़ कर इन्द्र मनुष्य के लिए बढ़ने से घरों को तोड़
छोड़ते हैं ।

(२) इसी वृश्चने सूर्य चन्द्र थीर नक्षत्रादि ज्योतियों का प्रकाश पृथिवी तक पहुंचने से रोका हुआ था (देखो पृ० ७५६)

इन्द्रोदेवताजगती छन्दः ।१२।१२।१२।१२।

दा॒नाय॒मनः॑सोमपावन्नस्तु॒ते॒

ऽर्वाञ्चा॑हरीवन्दनश्रुदाकृधि । यमि-

ष्ठासः॑सारथयोयइन्द्रते॒ नत्वाके-

ता॒आद॑भ्नुवन्तिभूणयः ॥७॥

दा॒नाय॑	दानाय	देने के लिये
मनः॑	मनः	मन
सोम॑ऽपावन्	हे सोमस्पपातः!	हेसोमकेपीने वाले
अस्तु॑	अस्तु	हो
ते॑	तव	तेरा
अर्वाञ्चा॑	अभिमुखौ (विमक्तेरायम्)	सामने

हरी०	अद्वी	घोड़ों को
वन्दनऽश्रुत्	हे स्तुतीर्नाश्रोतः!	हे स्तुतियोंके सुनने वाले
आ	आ +	-
कृधि	आ + कृधि, परिवर्तस्व	फेरो
यमिष्ठासः	अतिशयेन यन्तार अपरनियमन कृशाला इत्यर्थः	घोड़ों को रोकने में चतुर
सारथयः	सारथयः	सारथी
ये	ये	जो
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
ते	ते	वे
न	न	नहीं
त्वा	त्वाम्	तुझ को
केताः	ज्ञातारः (फिलजानने)	जानने वाले
आ	आ +	-

दभ्नुवन्ति	आ + दभ्नुवन्ति	भरमाते हैं
भृगयः	भ्रमयन्ति	शीघ्रकारी
	शीघ्रकारिणः	
	(क्र०१।७३।४)	

संस्कृतार्थः ।

हे सोमस्यपातः ! तवमनोदानायाऽस्तु, हे स्तुती-
नांश्रोतः ! (निज-)अश्वौ (अस्मद्-) अभिमुखौकुरु,
हे इन्द्र ! ये (अश्व-) नियमन कुशलाः तत्र सार-
थयः (सन्ति, अत्रविद्यायाः) ज्ञातारः शीघ्र कारिणः
(च) ते त्वाम् (मार्गं) न भ्रमयन्ति ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

हे सोम के पीने वाले ! आपका मन दान के लिये
हो, हे स्तुतियों के सुनने वाले ! (अपने) घोड़ों को
(हमारे) सामने फेरो, हे इन्द्र ! घोड़ों को रोकने में
चतुर जो (आपके) सारथी हैं (अश्व विद्या को) जानने
(और) शीघ्रकारी वे आपको (रस्ता) नहीं भुलाते ७
इन्द्रो देवता जगती छन्दः । १२।१२।१२।१२।

अप्र॑क्षितं॑ वसु॑ विभ॑र्षि॑ हस्त॑यो रषा॑-

ह्वं॑ सह॑स्त॑न्वि॑श्रु॑तो॑ दधे॑ । आ॑वृ॑तां

सोऽवतासो न कर्तृभिः स्तनूषुतेक्रांत

वद्वन्द्वभूरयः ॥८॥

अप्रऽक्षितम्	प्रक्षयरहितम्	क्षय से रहित को
वसु	धनम्	धन को
विभर्षि	धारयसि	धारण करते हो
हस्तयोः	हस्तयो.	हाथों में
अप्राह्ळम्	असह्यम् (पहमर्षणे)	न सहारे जाने वाले को
सहः	बलम्	बल को
तन्वि	शरीरे	शरीर में
श्रुतः	विख्यातः	विख्यात
दधे	धारयति (लडधैलिद्)	धारण करता है

आऽवृतासः	आविष्टानि (आ०को० (जसोऽसुगागमः)	भरेहुए
अवृतासः	जलाशयाः (आ०को०)	सरोवर
न	इव	जैसे
कर्तृऽभिः	(स्तुति-)कर्तृभिः	(स्तुति)करनेवालों से
तनूषु	शरीरेषु	अंगों में
ते	तव	तेरे
क्रातवः	बलानि	बल
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
भूरयः	बहूनि	बहुत

संस्कृतार्थः

हे इन्द्र ! (स्वम्) हस्तयोःक्षयरहितं धनं धारयसि
विष्यातः(भवान्) शरीरेऽसह्यं बलं धारयति, (अपिच)

च०मं० २६-३० अङ्गयोः शुद्धयशुद्धि पत्रम्

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१२३१	१३	द्रष्टुम्	द्रष्टुम्	१२५३	२	बल	बलै
१२३३	४	भुरणयन्तम्	भुरणयन्तम्	१२५७	६	द्वये	द्वये
१२३७	१८	युक्तिभिः	युक्तिभिः	१२६२	८	मायाभ	मायाभि
१२३८	१६	पुत्रि	पुत्री	१२६३	१६	शुष्णऽ	शुष्णऽ
१२३९	८	सर्व्यं	सर्व्यीं	१२६४	२	रक्षा की	रक्षा की
१२४०	३	उत्तऽतः	उत्तऽतः	१२६५	२२	करकयुक्	करकयुक्
१२४१	११	ज्योतिरूपम्	ज्योतीरूपम्	१२६६	१२	रात्वम्)	रात्वम्)
१२४२	८	अथवा	अथवा	१२७०	६	शाकी	शाकी
१२४३	१०	दादादा	दादादा	१२७१	११	उनका	उनकी
१२४४	१२	दुलोकम्	दुलोकम्	१२७२	११	आऽभूमिः	आऽभूमि
१२४५	१६	दुलोक	दुलोक	१२७८	२	स्रोतसा	स्रोतसा
१२४६	८	भाचुकी	भाचुका	१२७९	१०	वङ्ग०	वङ्ग०
१२४७	२	स्थापन	इमस्थापन	१२८०	७	वृषणः	वृषणः
१२४८	१४	सारिकासु	सारिकासु	१२८१	११	रत्नाकम्	रत्नाकम्
१२४९	१८	मनाभी	मैनाभी	१२८२	१३	रीडसे	रीडसे
१२५०	१८	शंसूतम्	शंसूतम्	१२८३	१४	कुर्वत	कुर्वत
१२५१	१८	इन्द्रं	इन्द्रं	१२८४	१५	यपः	यपः
				१२८५	११	इससे	इससे

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१२८२	५	शत्सूक्तम्	शंसूक्तम्	१३०८	१३	वणे	प्रवणे
१२८३	१३	सुऽभ्रः	सुऽभ्रः	१३१२	३	येन	यस्य
१२८७	४	जर्हपाणः	जर्हपाणः	"	२१	दन्द्र	इन्द्र
१२८८	३	वत्र	वत्र	१३१४	११	धारण	स्थापन
"	४	बुधनी	बुधनी	१३१६	१२	(सुगा	(असुगा
१३०१	८	मुद्रन्	मुद्रन्	१३१८	१४	वज्रन	वज्रने
१३०२	७	अपने	अपने	१३२३	४	विऽऽ	विऽशु
"	१४	कृतयः	कृतयः	"	८	शवसा	शवसा
३०४	३	मरुदण	मरुदगण	कठ०स० अद्र २० २८ ।			
१३०८	७	बुधनम्	बुधनम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
				१२२३	१०	शत्सूक्तम्	शंसूक्तम्

पुस्तक मिलने का पता—

मुन्शी जयराम, मैनेजर

कठर्वेद संहिता मुलतान

अंक ३३-३४]

[ज्येष्ठ-आषाढ १९६६]

ऋग्वेद संहिता

(वैदिकजीवनभाष्ययुता)

पदपाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और भाषा अनुवाद
टिप्पणी और मन्त्रों के आशय पर
व्याख्यान से युक्त

शिसको मुलतान नियासी पं० शङ्करदत्त
शास्त्री की सहायता से शिवनाथ
भाहिताग्नि ने सम्पादन किया

लाहौर

पञ्जाब एकाग्रीमीकल यन्त्रालय में प्रिण्टर खासा
खालमम के अधिकार से छपा ।

१२ अंकों का मूल्य २)

पहले २४ अंकों का मूल्य ५०)

तव शरीरेषु बहूनि बलानि (स्तुतिं) कर्तृभिरावि-
ष्टानि (सन्ति) यथा जलाशयाः (बहुभिर्मनुष्यैरा-
विष्टा भवन्ति) ॥८॥

मापार्थः।

हे इन्द्र ! आपदोनों हाथों में क्षय रहित धन
को लिए हुए हो, विख्यात (आप) शरीर में
असह्य बल को धारण करते हैं (ओर) आपके शरीरों
में बहुत बल (स्तुति) करने वालों द्वारा भरे हुए (हैं)
जैसे सरोवर (बहुत मनुष्यों से घिरे हुए होते हैं) ।८।

अनेक स्तोताओं को स्तुति द्वारा इन्द्र के शरीरान्वय इतने
बलों से भरे हुए हैं जैसे सरोवरों को तट मनुष्यों से भरे हुए होते
हैं। यह प्राचीन समय की बातें हैं आज फल ही स्तोताओं
के शमाय से इन्द्र बलों से ऐसे शून्य हैं जैसे शुष्क सरोवर
मनुष्यों से शून्य होता है।

इति पञ्चपञ्चाशं सूक्तम् ।

ऋ०मं०१ सू० ५६।

सव्य ऋषिः ।

विनियोग—यह सूक्त विपुषत् के निकेवद्वयशास्त्र में पढ़ा
जाता है (आ० श्रौ० सू० उ० २। ६। १३) ।

इस सूक्त में भी इन्द्र की स्तुति है। जय इन्द्र का अर्थ उन के
लिये सोम की चमत् पात्र में रगना है, तो यह अत्यन्त सामना
पूर्वक उसके घर पर आते हैं और अपने रथको ठहरा कर सोमपान

करते हैं। जैसे धन की इच्छा करने वाले को समुद्रयात्रा में उद्योग करना पड़ता है वैसेही इन्द्रकी इच्छाकरने वालेको स्तुतिऔर पूजन में उद्योग करना पड़ता है। इन्द्र लोहे के शरीर वाले हैं और युद्ध में प्रहार करते हुए उनका चल पर्वत के शिखर की न्यारि प्रकाशित होता है, इन्होंने पृथिवी को सुकाने वाले शुष्ण को बेल से बांध कर कारागारमें रंथाया,जिस से फिर अनावृष्टि न हो। जब मृक की स्तुति से इन्द्र का चल बढ़ता है तब वह अपने तीव्र प्रकाश से मन्धकार को नाश करते हैं और मेघों की उत्पत्ति के लिए धूलको आकाश में उठाते हैं। आकाश की दिशाओं में जलों के धारण करने वाले वृद्ध अन्तरिक्ष को इन्द्र ने ही स्थापन किया है और वही वृत्र को मार कर जलों को बाढ़ को पृथिवी पर छोड़ते हैं। इन्द्र सोमके मद में वृत्र के पयरीले कोटों को तोड़ते हैं और उस से घिरे हुए जलों को छोड़ते हैं ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ११२।१२।१२।१२।

एषप्रपूर्वीरवतस्यचमिषोऽत्यो-
 नयोषामुदयस्तभुर्वणिः । दक्षमहे
 पाययतेहिरण्ययं रथमावृत्याहरि-
 योगमृभवसम् । १।

एषः	एषः	यह
प्र	प्रकर्षेण	अत्यन्त
पर्वीः	पूर्णानि (पृ पूरणे कु प्रत्यय.)	पूर्ण
अव	अव +	-
तस्य	तस्य	उसके
चमिषः	चमूषु चमसेष्वव- स्थिताइषः, सोम रूपाणिहवीषि (वकारस्यरेफइलां०)	चमसों में रखेहुए सोमरूप हवियों को
अथः	अथः (निघं० १।१४)	घोड़ा
न	इव	जैसे
योषाम्	(निज)पत्नीम् (घडवाम्)	घोड़ी को
उत्	उत् +	-
अयंस्त	उत् + अयस्त उत्तिष्ठति (लडर्थे लट)	उठता है

भूर्वाणिः	शीघ्रकारी (सुर्यप्रति क्षिप्र नाम नि० २।१५)	शीघ्रता करने वाला
दक्षम्	बलरूपम् (सोमम्)	बलरूप (सोम) को
महे	महते (स्वारमने)	महान (अपने) ताई
पाययते	पाययते	पिलाता है
हिरण्यम्	सुवर्णमयम्	सुवर्णमय को
रथम्	रथम्	रथ को
आऽवृत्त्य	अवस्थाप्य	ठैरा कर
हरिऽयोगम्	हृद्यो रश्चयो यो गो योजनं यस्मिंस्तम्	दो घोड़ों से जुड़े हुए को
ऋभवसम्	उरु भासम् (वृषोदरादित्याद्यभ्यस्ता देशः)	विस्तीर्ण दीप्ति वाले को

संस्कृतार्थः ।

एषः (इन्द्रः) तस्य (यजमानस्य) चमसेष्ववस्थितानि
प्रकर्षेण पूर्णानि सोमरूपाणि हर्वाणि (प्रति) शीघ्रकारी

(सन्) उत्तिष्ठति यथा वडवाम्(प्रति) अश्वः[शीघ्रतयो
त्तिष्ठति] (तदनन्तरं तस्य गृहे) अश्वभ्यां युक्तं
सुवर्णमयमुहभासं रथमवस्थाप्य महते [स्वात्मने]
बल रूपम्(सोमम्) पाययते ॥१॥

भाषार्थः ।

यह [इन्द्र]इस[यजमान]के चमस पात्रोंमें रखे
हुए अत्यन्त पूर्ण सोमरूप हवियों के प्रति [ऐसी]
शीघ्रता करते हुए उठते हैं जैसे घोड़ा घोड़ी(के प्रति
शीघ्रतासे उठता है)[फिर उसके घर पर]दो घोड़ों से
जुड़े हुए सुवर्णमय विम्बित दीप्ति वाले रथ को ठहरा
कर महान्[अपने]को बलरूप (सोम) पान कराते हैं ॥१॥

यह मन्त्र इन्द्र की सोमप्रियता को वर्णन करता है ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः।१२।१२।१२।१२।

तंगूर्तयो॑नेम॒न्निषः॑परी॒णसः॑ स-

मु॒द्रंन॑स॒ञ्चर॑णो॒सनि॒ष्यवः॑ । पति॒न्द-

क्ष॑स्यवि॒दथ॑स्य॒नूस॑ही गि॒रिंन॒वेना-

अधि॑री॒हृते॑जसा । २ ।

तम्

गर्तयः

नेमन्ऽद्रुषः

परीणसः

१ समुद्रम्

न

सम्ऽचरणे

१ सनिष्यवः

पतिम्

दक्षस्य

विदथस्य

नु

तम्

स्तोतारः

(शृणन्तिस्तुवन्ति)

नीत हविष्काः

वहवः

(निघं० १११)

समुद्रम्

इव

प्रवासे

धनमिलन्तः

स्वामिनम्

बलस्य

(निघं० २१९)

यज्ञस्य

(निघं० ३१७)

क्षिप्रम्

उस को

स्तुति करनेवाले

जिन्होंने हवियें
पहुँचाई हैं

बहुत

समुद्र को

जैसे

परदेस यात्रा में

धन की इच्छा

करते हुए
स्वामी को

बलके

यज्ञ के

शीघ्र

सहः	बल रूपम्	बलरूप को
२ गिरिम्	पर्वतम्	पर्वत को
न	इव	जैसे
३ वेनाः	मेधाविनः (निघ० ३।१५)	बुद्धिमान
अधि	अधि +	-
रोह	अधि + रोह	बढ़
तेजसा	ओजसा	बल से

संस्कृतार्थः ।

नीतहविष्का बहवः स्तोतारी बलस्य यज्ञस्य(च) स्वामिनंतम् (इन्द्रं प्राप्नुवन्ति) यथा धनमिच्छन्तः प्रवासे समुद्रम् (प्राप्नुवन्ति) [त्वमपि तम्] बल रूपं क्षिप्रमोजसाऽधिरोह यथा मेधाविनः पर्वतम् (अधिरोहन्ति) ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

जिन्होंने ने हवियें दी हैं ऐसे बहुत स्तोता लोग बल (और) यज्ञ के स्वामी उस (इन्द्र) को (प्राप्त

श०मं०१ सू०५६ मं०३ (१४३०)

होते हैं) जैसे धनको चाहनेवाले परदेसकी यात्रा में समुद्र को (प्राप्त होते हैं) (तू भी उस) बल रूप को शीघ्र बल पूर्वक चढ़ कर प्राप्त हो जैसे बुद्धिमान पर्वत को (प्राप्त होते हैं) ॥ २ ॥

(१) जैसे धन की इच्छा करने वालों की शरण समुद्र है (बहुत धन की प्राप्ति तमी होती है जब समुद्र को पार जा कर परदेसों में व्यवहार किया जावे) वैसे ही हवि देने वाले, स्तोताओं की शरण इन्द्र हैं ॥

(२) बल रूप इन्द्र की प्राप्ति बल पूर्वक प्रयत्न से ही हो सकती है जैसे पहाड़ की चढ़ाई को बुद्धिमान बल पूर्वक प्रयत्न द्वारा तय कर लेते हैं

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः ।१२।१२।१२।१२॥

सतुर्वणिर्म॑च्छा॑अ॒रेणु॑पौ॒स्ये गि॒रे-

भृ॒ष्टिर्न॑भ्रा॒जते॑तु॒जाश॑वः । येन॒शु-

ष॑ण्मा॒यिन॑माय॒सोम॑दे दु॒धआ॒भूषु-

रा॒मय॑न्नि॒दाम॑नि ॥३॥

सः	सः	बह
सुर्वणिः	शीघ्रकारी (निघ० ४१३)	शीघ्रकारी
महान्	महान्	बड़ा
अरिणु	अनवद्यम्	दोष रहंत
पौंस्ये	सङ्ग्रामे (निघ० २१७)	युद्ध में
गिरेः	पर्वतस्य	पर्वत के
भृष्टः	शिखरम्	शिखर
न	इव	की न्याई
भ्राजते	दीप्यते	चमकता है
तुजा	प्रहारेण (आ०को)	प्रहार से
श्वः	बलम्	बल
येन	येन	जिस से
शुष्णम्	शुष्णम्	शुष्ण को

मायिनम्	मायोपेतम्	मायावी को
आयसः	लोहमयः (शत्रूणां)	लोहे के शरीर वाला
मदे	मदे (सति)	मद के होने पर
दुध्रः	(शत्रूणां) अवरोधकः	(शत्रुओं को) रोक रखने वाला
आभूष	काराग्रहेषु	कारागारों में
रमयत्	नि+रमयत् व्यवासयत्	रखा था
नि	+ नि	
दामनि	बन्धके निगडे	बांधने की वेल में

संस्कृतार्थः

सः शीघ्रकारी महान् [चाण्डस्ति] संग्रामे प्रहा-
रेण [तस्य] अनवर्यं चलं पर्वतस्य शिखरमिव
दीप्यते, येन [वलेन] लोहमयः [शत्रूणां] अवरोधकः
[इन्द्रः] मायोपेतं शुणं काराग्रहेषु बन्धके निगडे

भाषार्थः ।

१३ उवह (शीघ्रकारी) (और) महान है, युद्ध में प्रहार से (उनका) निर्दोष बल पर्वत के शिखरकी न्याई चमकता है जिस (बल) से लोहे के शरीर वाले (शत्रुओं को) रोक कर रखने वाले (इन्द्र ने) मायावी शुष्ण को कारागारों में बेल से (बांध कर) रखा था ॥ ३ ॥

शुष्ण के लिए देखो पृ० २४९—शुष्ण को बेल में बांध कर कारागार में रखना अपि की कल्पना है जिसका आशय पढ़ने या सुनने वाले के मन पर शत्रु को सब प्रकार से दवाने का संस्कार दृढ़ करने का है, वास्तव में न इन्द्र ने कोई युद्ध किए हैं न कोई उनका शत्रु हुआ है देखो अ० १० । ५४ । २ ।

१४ 'मायेत्साले यानि युद्धान्याहुर्नाथ शत्रुं न पुरा विधिते' ॥

इन्द्रो देवता जगती छन्दः । १२ । १२ । १२ । १२ ॥

देवीयदितविषीत्वावधोतय इन्द्रं

सिषक्त्युषसंनसूर्यः । योधृष्णुना-

शवसावाधतेतम इयतिरेणुं वृहदह-

रिष्वणिः । ४ ।

दिवी	दीप्यमानम्	चमकता हुआ
यदि	यदा	जब
तविषी	बलम्	बल
त्वाऽवधा	त्वयावर्धितम् (विभक्तोरात्वम्)	तुझसे बढ़ाये हुए को
ऊतये	रक्षाऽर्थम्	रक्षा के लिए
इन्द्रम्	इन्द्रम्	इन्द्र को
सिसक्ति	सेवते (यास्कः)	सेवन करता है
उपसम	उपसम्	उपा को
न	इव	जैसे
सूर्यः	सूर्यः	सूर्य
यः	यः	जो
धृष्टगुना	धर्षकेण	दधाने वाले से
शवसा	बलेन	बल से

बाधते	नाशयति	नाश करता है
तमः	अन्धकारम्	अन्धकार को
द्वयति	प्रेरयति	उठाता है
रेणुम्	धूलिम्	धूलि को
वृहत्	प्रभूतम्	बहुत
अर्हुरिऽ- स्वनिः	अरो गच्छन्तो ह- रन्तीत्यर्हरयः श- त्रवः तेषां व्यथो- त्पादनेन स्वन- यिता शब्दयिता	शत्रुओं में आर्त नाद को उठाने वाला

ससृष्टतार्थः ।

(हे स्तोतः!) रक्षाऽर्थं त्वया वर्धितं दीप्यमानं बलं
यदा सूर्य्यउपसमिवेन्द्रं सेवते (तदा सः) शत्रूणां
शब्दयिता धर्षकेण बलेन अन्धकार नाशयति प्रभूतं
धूलिम् [च] प्रेरयति ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

[हे स्तोता] रक्षा के लिए तुझ से बढ़ाया हुआ
दीप्यमान बल जब इन्द्र को सेवन करता है जैसे

सूर्य उपा को, [तव वह] शत्रुओं में धार्तनाद को
उठाने वाले दवाने वाले बले से अन्धकार को नाश
करते हैं-[और] बहुत धूलि को प्रेरण करते हैं ॥ ४ ॥

जब स्तोता की स्तुति से इन्द्र में बल होता है, तब वह उस
बल से अन्धकार को नाश करके तीव्र प्रकाश से वायु के घेग को
यदा कर बहुत धूलि को आकाश में प्रेरण करते हैं, जिससे बादलों
की उत्पत्ति होकर वृष्टि हो ॥

इन्द्रो देवता जगती छन्दः । १२ । १२ । १२ । १२ ।

वियत्तिरोधरुणमच्युतरजोऽति-

ष्ठिपोदिवआतासुबर्हणाणाः स्वर्मी-

ह्लेयन्मदइन्द्रहृष्याऽहन्वृचनि-

रपामौर्वजोअर्णवम् । ५ ।

वि	वि	जो
यत्	यत्	जो
तिरः	तिरः	आर. पार

धरुणम्	धारकम्	धारण करने वाले
अच्युतम्	दृढम्	दृढ को
रजः	अन्तारक्षम्	अन्तरिक्ष को
अतिस्थिपः	वि+अतिस्थिप स्थापितवान्	स्थापन किया
दिवः	आकाशस्य	आकाश को
आतासु	दिक्षु (निघ० १६)	दिशाओं में
बर्हणा	बलवान् (आ०को०) (विभक्तोर्वादेश)	बलवान्
स्वःऽमी हृळे	ज्योतिपेकृते सङ्ग्रामे (मीहृळे इतिसङ्गः प्रामनाम निघ० २।१०)	ज्योति के लिए किये हुए युद्ध में,
यत्	यत्	जो
मदे	मदे (संति)	मद के होने पर
इन्द्र	हे इन्द्र!	हे इन्द्र!

हृष्या	हर्षेण (सा०भा०)	हर्ष से
अहन्	हतवान्	तूने मारा
वृत्रम्	वृत्रम्	वृत्र को
निः	निः+	-
अपाम्	अपाम्	जलों के
औञ्जः	निः+औञ्जः	नीचे गिराया
	अधः पातितवान् (भा० को०)	
अर्गावम्	आप्लावम् (भा०को०)	वाढ को

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! यद्बलवान् [त्वम्] आकाशस्य दिक्षु
[जलोंनाम्] धारकं दृढमन्तरिक्षं तिरः स्थापितवान्
यन्मदे [सति] ज्योतिषे कृते संग्रामे हर्षेण वृत्रं हत-
वान्, जलाप्लावम् [च] अधः पातितवान् ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र ! जो बलवान् (आपने) आकाशकी दिशाओं
में (जलों-के) धारण करने वाले दृढ अन्तरिक्ष-को

आर पार स्थापन किया, जो मद के होने पर, ज्योति के निमित्त किए हुए युद्ध में हर्ष से वृत्र को मारा और जलों की बाढ को नीचे गिराया ॥ ५ ॥

(१) "आर पार" अर्थात् पृथिवी के चौकरे ॥

(२) ज्योति के निमित्त किया हुआ युद्ध जो प्रथमज वृत्र से करके सूर्य के प्रकाश को पृथिवी तक पहुंचाया था ॥

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२।

त्वंदि॒वो॒ध॒रु॒णां॑धि॒ष॒ञ्चो॒जसा॑ । पृ-

थि॒व्या॑इन्द्र॒सद॑नेषु॒माहि॑नः । त्वं-

सु॒तस्य॑मद॒अरि॑णा॒अपो॑ वि॒ह्वस्य॑स-

मया॑पा॒ष्या॒रुजः॑ । ६ ।

त्वम्

दिवः

धरुणम्

त्वम्

द्युलोकात्

उदकम्

(निघ० १।११)

तूने

आकाश से

जल को

धिषे	स्थापितवान्	स्थापन किया
ओजसा	बलेन	बल से
पृथिव्याः	पृथिव्याः	पृथिवी के
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
सदनेषु	प्रदेशेषु	प्रदेशों में
माहिनः	प्रवृद्धः	बड़ा हुआ
त्वम्	त्वम्	तूने
सुतस्य	निष्पीडितस्य	सोम के
मदे	(सोमस्य) मदे	मद में
अरिणाः	वि+अरिणाः, विमोचितवान्	छुड़ाया
अपः	जलानि	जलों को
वि	वि +	-

वृत्रस्य	वृत्रस्य	वृत्र के
समया	सीमारूपाणि (आ को०) (शैलोप)	सीमारूप
पाष्या	पाषाणवेष्टनानि (शैलोप)	पत्थर के कोटोंको
अरुजः	खण्डितवान् (दजोमहे)	तोड़ दिया

सस्वतार्यः

हे इन्द्र ! प्रवृद्धस्त्वं बलेन द्युलोकात् पृथिव्याः प्रदेशेषु जलं स्थापितवान् त्वं निष्पीडितस्य [सोमस्य] मदं [वृत्र सकाशात्] जलानि विमोचितवान् वृत्रस्य सीमा [रूपाणि] पाषाणवेष्टनानि [च] खण्डितवान् ॥ ६ ॥

मापार्य ।

हे इन्द्र ! बड़े हुए आपने बल द्वारा थो से पृथिवी के स्थानों में जल को स्थापन किया, आपने निचोड़े हुए (सोम) के मद में (वृत्र) से जलोंको छुड़ाया और वृत्र के सीमा रूप पत्थर के कोटों को तोड़ दिया ॥ ६ ॥

इति षट् पञ्चाङ्गं सूक्तम् ।

ऋ० मं०१ सू०५७ ।

सव्यऋषिः ।

विनियोग—यह सूक्त विपुवत् के निष्केवल्य शस्त्र में पढ़ा जाता है (भा० धौ० सू० उ० २।६।१३)

इस सूक्त में भी इन्द्र की स्तुति है। इन्द्र सब से अधिक दानी सब से अधिक धन वाले और सच्चे बल वाले हैं हम उन्हीं को अपनी बद्धि भेट करें। इन्द्र के ही धन दान से सब मनुष्यों को बल मिलता है । जब से इन्द्र का वज्र घृन को प्रहार करने में कटियद्द है तब से लोग उनके पूजने में प्रवृत्त हुए हैं । इन्द्र का नाम, स्थान, बल और दीप्ति दूसरों के उपकार के लिए हैं, जिनको सुन कर मनुष्य बल को प्राप्त करें । हम इन्द्र को हैं और उन्हीं के आशय पर चिन्तते हैं उन से दूसरा लौकिक राजायादि हमारी स्तुति को नहीं प्राप्त हो सकता, हमारी घणो उन को प्रिय हो। इन्द्र में बहुत बोर्य ह, यह अपने उपासक की कामना को पूर्ण करेंगे, महान ध्रुलोक ने भी इन्द्र के वीर्य को माना है और पृथिवी उन के बल के सामने झुकी है । सबमुच इन्द्र का बल अद्वितीय है ।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२

प्रमं॑हि॒ष्ठाय॑वृ॒हते॑वृ॒हद्र॑ये स॒त्य-

शु॑ष्मा॒यत्॒वस॑म॒तिंभ॑रे । अ॒पा॒मि॒व-

प्रव॒णी॒य॒स्य॒दु॒र्ध॒रं॒ रा॒धो॒वि॒प्र॒वा॒यु॒श॒व॒से॒

अ॒पा॒व॒त॒स् ॥१॥

प्र	प्र +	-
सं॒हि॒ष्ठा॒य	अतिशयनदान युक्ताय (महतिदानवर्मा निघ० ३।२०)	अत्यन्त दानी के ताई
वृ॒ह॒ते	महते	महान के ताई
वृ॒ह॒त्॒ऽर॒थे	महाधनिने	महाधनी के ताई
{ स॒त्य॒ऽशु॒- ष्मा॒य	सत्यबलाय	सच्चे बली के ताई
त॒व॒से	प्रश्लाय	घहुन घडे हुण के ताई
स॒ति॒म्	घुद्धिम्	घुद्धि को
भ॒रे	प्र+भरे, नियेद- यामि	भेट करता हूं

अपाम्ऽइव	उदकानामिव	जैसे जलों का
प्रवणे	निम्नप्रदेशे	नीचे स्थान में
यस्य	यस्य	जिसका
दुऽधरम्	धर्तुमशक्यम्	धारण करने को अशक्य
राधः	धनम्	धन
विप्रवऽआयु	सर्वमनुष्यसम्बन्धि (भायुरिति मनुष्यनाम निघं० २।३)	सब मनुष्यों सम्बन्धी
शवसे	चलाय	चल के लिए
अपऽहतम्	आवरणरहितं कृतम्	प्रकाशित किया गया

संग्रहार्थः ।

(अहम्) अतिशयेन दानयुक्ताय महाधनिने सत्य-
चलाय महते प्रवृद्धाय (चेन्द्राय) बुद्धि निवेदयामियस्य
(चलम्) निम्नप्रदेशे (गच्छताम्) उदकानाम् (वेगः)
इव धर्तुमशक्यम् (येन च) सर्वमनुष्य सम्बन्धि धनं
चलायाऽऽवरणरहितं कृतम् । १।

भाषार्थः ।

अत्यन्त दानी महाधनी सञ्चे बली महान (और) बढे हुए (इन्द्र को) ताई मैं बुद्धि को भेट करता हूँ, जिस का (बल) नीचे स्थान में (जाते हुए) जलों के (वेग) की न्याई धारण नहीं किया जा सकता और जिस ने सब मनुष्यों के धन को बल के लिये प्रकाशित किया है ॥१॥

१ जो सब से अधिक धन वाले, सब से अधिक बल वाले और सब से अधिक दानी हूँ । ऐसे इन्द्र को अपनी बुद्धि समर्पण करने में क्या भय है, नय तो दूसरे मनुष्य को अपनी बुद्धि भेट करने में है, चाहे वह कैसा ही विद्वान और महात्मा क्यों न हो, इन्द्र को भद्रा पूर्वक ऐसा कहने से कि 'हे देव मैं अपनी बुद्धि आप को समर्पण करता हूँ मुझे आदेश दें मैं उस पर चलूँगा, भयश्य शनैः शनैः ज्ञान की स्फूर्ति होती है उसी पर चलना मनुष्यके लिए भयस्कर है, चाहे यह ज्ञान लौकिकबुद्धि से विपरीत भी हो।

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२॥

अध॑ते॒वि॒श्व॒मनु॑हा॒सदि॒ष्टय॑ आ-
 पो॑नि॒म्ने॒व॒सव॑नाह॒विष्म॑तः । यत्पर्व॑-
 तेन॑स॒मशी॑त॒हृद्य॑त इन्द्र॑स्य॒वजूः॒प्र॒न-

थिताहिरण्ययः ।२।

अध	अध, अनन्तरम् (यस्यधत्वंछान्द०)	पीछे
ते	तुभ्यम्	तेरे लिये
विप्रवम्	जगत्	जगत
अनु	अनु +	-
ह	खलु	सचमुच
असत्	अनु + असत्, प्रवृत्तोऽभवत्	प्रवृत्त हुआ
दृष्टये	यागाय	यज्ञ के ताई
आपः	आपः	जल
निम्नाऽइव	अधोदेशंगच्छ- न्त्यइव (शैलोपः) ;	नीचे जाते हुए जैसे
सवना	यज्ञाः (शैलोपः)	यज्ञ

हृविष्मत्:	हविर्युक्तस्य	हवि से युक्त के
यत्	यदा	जब
पर्वते	वृत्रे (निघ० १।१०).	वृत्र पर
न	न	नहीं
सम्प्रशीत	संसुप्तोऽभवत्	सोया
हृर्यतः	शोभनः सा०भा०)	सुन्दरं
इन्द्रस्य	इन्द्रस्य	इन्द्र का
वज्रः	वज्रः	वज्र
प्रनथिता	हिंसकः	मारने वाला
हिरण्ययः	सुवर्णमयः	सुवर्णमय

संस्कृतार्थः ।

(हे इन्द्र!) यदा हिंसकः सुवर्णमयः शोभनस्तव वज्रो
वृत्रे (प्रहाराय) संसुप्तो नाऽभवत् (तद्-) अनन्तरं जगत्

त्वंदर्थं यागाय प्रवृत्तो वभूव. हविर्युक्तस्य (यजमान समूहस्य) यज्ञाः (च) अधोदेशं गच्छन्त्य आपं इव (त्वां प्राप्नुवन्) ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र! जब आपका नारने वाला सोने का सुन्दर वज्र वृत्र पर (प्रहार के लिये) नहीं सोया. (तिससे) पीछे जगत् आपके लिए यज्ञ में प्रवृत्त हुआ, (और) हवि से युक्त (यजमानों) के यज्ञ नीचे की ओर जाते हुए जलों की न्याईं (आप को प्राप्त हुए) ॥२॥

जब से इन्द्र का वज्र वृत्र पर प्रहार करने के लिये नहीं सोया अर्थात् जागृत रह कर प्रहार करता रहा है तब से अर्थात् सृष्टिके आदि से ही लोग इन्द्र के पूजन में प्रवृत्त हुए हैं । क्योंकि इन्द्र का वज्र मनुष्य सृष्टि से पहले ही वृत्र पर पड़ने लगा है । (देखो पृष्ठा७४७)

इन्द्रो देवता जगती छन्दः ।१२।१२।१२।१२। .

अ॒स्मै॒भी॒मा॒य॒न॒म॒सा॒स॒म॒ध्व॒र उ॒-

षो॒न॒शु॒भ्र॒आ॒भ॒रा॒प॒नी॒य॒से । य॒स्य॒धा॒-

म॒श्र॒व॒से॒ना॒मे॒न्द्रि॒यं॒ ज्यो॒ति॒रका॒रि॒हृ॒-

रि॒तो॒ना॒य॒से ।३।

अस्मै	अस्मै	इसके लिये
भीमाय	भयङ्कराय	भयानक के लिये
नमसा	नमस्कारेण	नमस्कारके साथ
सम्	सम्+	-
अध्वरे	यज्ञे	यज्ञमें
१ उषः	हे उपः!	हे उषा
न	सम्प्रति (अस्युपमार्थस्य सम्प्र त्यर्थेप्रयोगइतियास्क')	अब
शुभ्रे	हे उज्ज्वल रूपे!	हे उज्ज्वल रूप वाली
द्या	आ+	-
भर	आ+भर,सम्पादय	सम्पादन करो
पनीयसे	अतिशयेन स्तोत व्याय	अतिशय करके स्तुतिके योग्य के लिये

यस्य	यस्य	जिसका
धाम	स्थानम्	स्थान
श्रवसे	श्रवणाय (भा०की०)	सुनने के लिये
नाम	नाम	नाम
इन्द्रियम्	बलम्	बल
ज्योतिः	दीप्तिः	प्रकाश
अकारि	अकारि	किया गया
हरितः	अश्वाः	घोड़े
न	इव	जैसे
अयसे	गमनाय	जाने के लिये

मंस्कृतार्थः ।

हे उज्ज्वलरूपे ! हे उपः ! अतिशयेन स्तोतव्याय
भयङ्करायाऽस्मै (इन्द्राय) सम्प्रति यज्ञे नमस्कारेण

(हविः) सम्पादय, यस्य नाम, स्थानं बलं दीप्तिः
(च) श्रवणार्थं मकारि यथाऽश्वा गमनाय (कृताः) ॥३॥

भाषार्थः ।

हे उज्ज्वल रूप वाली उषा ! अतिशय करके स्तुति के योग्य इस भयानक (इन्द्र के) ताई अत्र यज्ञ में नमस्कार के साथ (हवि को) सम्पादन करो, जिस का नाम स्थान, बल (और) दीप्ति सुनने के लिये बनाए गए हैं जैसे घोड़े चलने के लिये ॥३॥

१ उपकाल में हमारी हवि को उपादेवो इन्द्र के लिए सम्पादन करें, अर्थात् हमें नित्य हविः सम्पादन करने के लिए प्रेरण करें ।

२ इन्द्र का स्थान, नाम, बल और दीप्ति ये सब दूसरों के उपकार के लिये बनाए गए हैं जिससे मनुष्य इन को सुन कर देवी गुणों से युक्त हों । जैसे घोड़े इसलिये बनाए गए हैं कि मनुष्य उनके द्वारा गमन करें, और जैसे घोड़ों को यात्रा का फल चढ़ने वालों के लिए है वैसे ही इन्द्र के गुण इस लिए हैं कि उनके भवण और कीर्तन से मनुष्य लाभ उठावें ।

इन्द्रो देवता जगती छन्दः । १२ । १२ । १२ । १२ ।

इमे त इन्द्र ते वयं पुरुषटुत ये त्वा-

रभ्य च रामसि प्रभूवसो । न हितवद्-

यस्य	यस्य	जिसका
धाम	स्थानम्	स्थान
श्रवसे	श्रवणाय (भा०फी०)	सुनने के लिये
नाम	नाम	नाम
इन्द्रियम्	बलम्	बल
ज्योतिः	दीप्तिः	प्रकाश
अकारि	अकारि	किया गया
हरितः	अश्वाः	घोड़े
न	इव	जैसे
अयसे	गमनाय	जाने के लिये

संस्तरार्थः ।

हे उज्ज्वलरूपे ! हे उपः ! अतिशयेन स्तोतव्याय
भयङ्करायाऽस्मै (इन्द्राय) सम्प्रति यज्ञे नमस्कारेण

प्रभुऽवसो०	हे प्रभूतधन !	हे बहुत धन वाले
नहि	नहि	नहीं
त्वत्	त्वत्तः	तुझसे
अन्यः	अन्यः	और
गिर्वणाः	हे स्तुतिभिः सं- सेव्य !	हे स्तुतियों से सेवन करने योग्य
गिरः	स्तुतीः	स्तुतियों को
सघत्	प्राप्नोति (पघतेलेटिरूपविकरण- स्यचलुक्)	प्राप्त होता है
क्षोणीऽद्भुव	पृथिवीव (सुलोपाऽभाच इछान्दसः)	पृथिवी की न्याई
प्रति	प्रति+	-
नः	अस्माकम्	हमारे
हृद्य	प्रति+हृद्य काम यस्व	प्यार करों

न्योगिर्वणोगिरःसघत्

क्षीणीरिव-

प्रतिनोहृद्यतवचः ।४।

इ॒मे

इ॒मे

ये

ते

तव

तेरे

इन्द्र

हे इन्द्र !

हे इन्द्र

ते

ते

वे

वयम्

वयम्

हम

पुरुऽस्तुत

हे बहुभिःस्तुत !

हे बहुतों से स्तुति
किये गए

ये

ये

जो

त्वा

त्वाम्

तुझ को

आऽरभ्य

आश्रित्य

आश्रय बनाकर

चरामसि

विचरामः

विचरते हैं

(एदलोमनीतिमम्-
एकराऽऽगमः)

(१४५५) ल० सं० १२०५७ सं० ८

इन्द्रोदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२ ।

भूरि॑त॒ इन्द्र॑वी॒र्यै॑श्च॒ तव॑स्मस्य॒ स्य-

स्तो॑तु॒र्मघ॑व॒न्काम॑मा॒पृण॑ । अ॒न्ते-

द्यौ॑र्ब॒हती॑वी॒र्यै॑मम॒ इयं॑च॒तेपृथि॑वी-

ने॒मञ्जी॑से । ५ ।

भूरि॑	प्रभू॒तम्	बहु॒त
ते॒	तव	ते॒रा
इन्द्र॑	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
वी॒र्यै॑म्	वी॒र्यम्	वी॒र्यम्
तव॑	तव	ते॒रे
स्मसि॑	स्मः	हम॑ हे
	(मसङ्काराऽऽगमः)	

तत्	तत्	उसको
वचः	वचः	वचन को

संस्कृतार्थः ।

हे बहुभिःस्तुत ! प्रभूतधन ! इन्द्र ! ये [वयम्] त्वामाश्रित्य विचरामस्तइमं वयं तव(स्मः)हे स्तुतिभिः संसेव्य ! त्वत्तोऽन्यः (अस्मत्-) स्तुतीर्नहि प्राप्नोति (त्वम्) अस्माकंतत् (स्तुतिरूपम्) वचः कामयस्व, यथापृथिवी (स्वकीयानि भूतानि कामयते) ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

हे बहुतों से स्तुति किये गये, बहुत धन वाले इन्द्र ! जो हम आपको आश्रय बना कर विचरते हैं वे ये हम आप के हं हे स्तुतियों से सेवन करने योग्य ! आपसे दूसरा (हमारी) स्तुतियोंको नहीं प्राप्त होता आप उस (स्तुतिरूप) हमारे वचन को प्यार करो जैसे पृथिवी (अपने जीवों को प्यार करती है) ॥ ४ ॥

(१) पृथिवी अपने जीवों को प्यार करती है, इसीलिए उनको अपने ऊपर धारण करती है और उनके पोषण के लिए मन्मन् आदि को उत्पन्न करती है।

(२) दूसरा अर्थात् लौकिक राजा आदि।

इयम्	इयम्	यह
च	च	और
ते	तव	तेरे
पृथिवी	पृथिवी	पृथिवी
नेमे	प्रह्वीवभूव	झुकी है
ओजसे	बलाय	बल के सामने

हे धनवन् ! (वयम्) तव स्मः (त्वम्) अस्य
 स्तोतुरभिलापं पूरय, हे इन्द्र ! तव बलं प्रभूतम्
 (अस्ति, यतः) महान् (अपि) धुलोकस्तव बलमन्व-
 मंस्त, इयं पृथिवी च तव बलाय प्रह्वीवभूव ॥५॥

भाषार्थः ।

हे धनवाले ! हम आपके हैं, आप इस स्तोता
 की कामना को पूर्ण करो हे इन्द्र ! आपका बल
 बहुत (है क्योंकि) महान् धुलोक ने (भी) आपके
 बल को माना है, और पृथिवी आपके बलके सामने
 झुकी है ॥ ५ ॥

अस्य	अस्य	इसकी
स्तोतुः	स्तोतुः	स्तोता की
मघऽवन्	हे धनवन् !	हे धनवाले
कामम्	अभिलाषम्	कामना को
आ	आ+	-
पृण	आ+पृण, पूर्य	पूर्ण करो
अनु	अनु+	--
ते	तव	तेरे
द्यौः	द्युलोकः	द्युलोक ने
बृहती	महान्	महान
वीर्यम्	पराक्रमम्	पराक्रम को
ममे	अनु+ममे, अन्वमस्त	माना है..

वज्रेण	वज्रेण	वज्र से
वज्रिन्	हे वज्रिन्	हे वज्रधारी
पर्वणः	पर्वणि पर्वणि	प्रत्येक जोड़ में
चकतिथ	छेदितवान् (छनीछेदने)	काट डाला
अव	अव +	-
असृजः	अव+असृजः, विसृष्टवान्	छोड़ा है
निवृत्ताः	निरुद्धाः	रुके हुआंको
सर्वै	(अधः) गमनाय (स्रगतौ तथै प्रत्ययः)	गिरने के लिए
अपः	अपः	जलों को
सुत्रा	वस्तुतः	सच मुच
विश्वम्	सर्वम्	सम्पूर्ण को
दधिषे	धारितवानसि	तूने धारणकिया

इन्द्रो देवता जगती छन्दः १२।१२।१२।१२।

ह्वं॑ तमिन्द्र॑ पर्व॑ तं म॒हा॒सु॒रं व॒र्ज॑ण-
व॒ज्रि॒न्पर्व॑श॒श्च॑ क॒र्ति॒थ । अ॒वा॒सृ॒जो-
नि॒वृ॒ताः स॒र्त॒वा अ॒पः स॒त्रा॒वि॒श्वं॑ दधि
षे॒के॒वलं॑ स॒हः । ६।

त्वम्

त्वम्

तूने

तम्

तम्

उसको

इन्द्र

हे इन्द्र !

हे इन्द्र

पर्वतम्

वृत्रम्
(निघं० १। १०)

वृत्र को

महाम्

महान्तम्
(नकारतकारयोर्लोपा-
श्छान्दसः)

महान को

उरुम्

विस्तीर्णम्

फैले हुए को

ऋ० मं० १ सू० ५८ ।

नोधा ऋषिः ।

विनियोग—यह सूक्त अभिप्लवपदह के पांचवें दिन आग्नि
माकत शस्त्र में पढ़ा जाता है (भा० श्रौ० सू० उ० १।७।८)

पहले पांच मंत्र प्रातरत्वाक में आग्नेय क्रतु के आश्विन शस्त्र
सम्यन्धी जगतीछन्द में भी पढ़े जाते हैं (भा० श्रौ० सू० ५।१३।७)

इस सूक्त में अग्नि की महिमा और उन की भक्ति के फल
का वर्णन है। जय यजमान अग्नि को यथाविधि स्थापन करके उन
को होता ओर दूत रूप से बरचुका, तौ उसके लिये क्लेश में पड़ना
असम्भव है। अग्निही सूर्यरूपमें अन्तरिक्ष को प्रत्यक्ष करते हैं, यही
यजमान के लिए देवताओं का पूजन करते हैं। उत्पन्न होतेही अग्नि-
देव तृणआदि भोजनसे बल को प्राप्त करके काष्ठोंमें प्रवेश करते हैं,
और घों से सींची हुई इन की चिकनी पीठ घोड़े की पीठ की न्यारै
घमकती है यह अग्निदेव, वसु रुद्रआदि सब देवताओं के अग-
धैया होकर यज्ञ में होता बन कर बैठते हैं, और जैसे प्रजामों
में राजा का रथ दौड़ कर सब से कर इकट्ठा करता है इसी
प्रकार अग्निदेव मनुष्यों से उत्तम हवियों को प्राप्त करते
हैं। जय अग्निदेव वायु से प्रेरित होकर बन में प्रवेश
करते हैं, तो बड़ा शब्द करते हुए दरांती रूपी जिह्वाओं
से सारे बन को मक्षण कर जाते हैं और जहां पहले बन
था वहां एक काला रस्ता रह जाता है। गौओं में सांड की न्यारै
जय अग्निदेव बन में पैरते हैं तौ स्थावर और जंगम सब भयभीत
होजाते हैं। देवताओं के इन सुखकारी मित्र और मनुष्यों के पूज्य
भतिथि को भृगुओं ने एक सुन्दर धन के कोश की न्यारै मनुष्यों
में स्थापन किया है। जिस अग्नि को सात अतिवज्र पदों में बरते

केवलम्	अद्वितीयम्	अद्वितीय को
सहः	बलम्	बल को

संस्कृतार्थः

हे वज्रिन् ! इन्द्र ! त्वं तं विस्तीर्णं महान्तं वृत्रं पर्वणि पर्वणिच्छेदितवान् (तेन) निरुद्धा अपः (चाऽधो देशे) गमनाय विसृष्टवान्, वस्तुतः (त्वमेव) सर्व-मद्वितीयं बलं धारितवानसि ॥६॥

भाषार्थः ।

हे वज्रधारी इन्द्र ! आपने फँसे हुए उस महान वृत्र को प्रत्येक जोड़ में काट डाला (और उस से) रुके हुए जलों को गिरने के लिए छोड़ा सच मुच (आपने ही) सम्पूर्ण अद्वितीय बल को धारण किया हुआ है ॥ ६ ॥

इति सप्त पञ्चाशं सूक्तम् ।

नि	नि+	-
तुन्दते	नि+तुन्दते, व्यथयति	केश देना है
होता	होता	होता
यत्	यदा	जब
दूतः	दूत.	दूत
अभवत्	अभवत्	हुआ
विवस्वतः	परिचरतः (यजमानस्य)	यजमान का
वि	वि +	-
{ साधिष्ठे	समीचीनै	उत्तमों से
भिः	(नितरेसभाषदृष्टादस)	
पथिऽभिः	मार्गैः	रस्तों से
रजः	अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्ष को
ममे	वि + ममे, सा-	प्रत्यक्ष किया
आ	क्षातकृतवान् समन्तात्	चारों ओर से

हैं इस धनके प्राप्त कराने वाले को पूज कर उस से रमणीय धन मांगने चाहिये । बल के पुत्र मित्रनन्दन भग्नि हमको छिद्र रहित शरण देवे और दृढ रक्षा करते हुए हम को पाप से बचावे भग्नि हमारे स्तोताओं और धनियों के आश्रय दाता हों स्तुति करने वाले को पापसे रक्षा करें और प्रातःकालमें शीघ्र निरय गपने संघकों को प्राप्त हों ।

अग्निदेवता जगतीछन्दः । १२।१२।१२।१२।

नूचित्सहोजाअमृतोनितुन्दते
 होतायद्दूतोअभवद्विवस्वतः । वि-
 साधिष्ठेभिःपथिभीरजोमम् आदे-
 वताताह्विषाविवासति ॥ १ ॥

१ नु	किम्	क्या
१ चित्	खलु	सचमुच
सहःऽजाः	बलेन जातः	बल से प्रकट हुआ २
अमृतः	मरणरहितः	मरण से रहित

नि	नि+	-
१ तुन्दते	नि+तुन्दते, व्यथयति	क्लेश देता है
होता	होता	होता
यत्	यदा	जब
दूतः	दूतः	दूत
अभवत्	अभवत्	हुआ
विवस्वतः	परिचरतः (यजमानस्य)	यजमान का
वि	वि +	-
१ { साधिष्ठे भिः	समीचीनैः (निसपेसभायश्छान्दसः)	उत्तमों से
२ प्रधिष्ठिभिः	मार्गैः	रस्तों से
२ रजः	अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्ष को
ममे	वि + ममे, सा- क्षात्कृतवान्	प्रत्यक्ष किया
आ	समन्तात्	चारों ओर से

देवताता	यजे (निघं० ३।१७) (विमकेडी)	यज्ञ में
हविषा	हविषा	हविसे
विवासति	परिचरति	सेवा करता है

ससृत्तार्थः ।

बलेनजातो मरण रहितः (अग्निः) व्यथयति किं खलु ? यदा (सः) होता (हविर्वहनाय) यजमानस्य दूतोऽभवत्, (सएव) समीचीनैर्मार्गैरन्तरिक्षं साक्षात्कृतवान् (सएवसाम्प्रतमस्मद्-) यजे (देवान्) समन्ताद् हविषा परिचरात् । १ ।

भाषार्थः ।

बल से प्रकट हुए मरण रहित (अग्नि) क्या सचमुच क्लेशकारी हो सकते हैं? जब (वह) होता (हवि पहुंचाने के लिए) यजमानके दूत बन चुके, उन्होंने ही उत्तम मार्गों से अन्तरिक्ष को प्रत्यक्ष किया, (वह ही अब हमारे) यज्ञ में (देवताओं की) चारों ओर हवि से सेवा करते हैं । १ ।

(१) जब अग्नि देव भरणि द्वारा मधे जाकर किसी यजमान के लिये देवताओं के पुराने घाले घन चुके, तो क्या वह उस को हंस दे सकते हैं ? अर्थात् ऐसा होना असम्भव है ।

(२) अन्तरिक्ष को जो पूर्वकाल में अन्धेरे में था अग्नि ने ही भादि सृष्टि में प्रवेश करके प्रत्यक्ष किया, और वही सूर्य रूप में उस को अब भी प्रत्यक्ष करते हैं ॥

अग्निर्देवता जगतीछन्दः १२।१२।१२।१२

आस्वमद्भयुवमानोअजरस्तुष्व-

विष्यन्नतसेषुतिष्ठति। अत्यीन-

पृष्ठंमुषितस्यरोचते दिवीनसा

स्तनयन्नचिक्रदत् ॥२॥

आ	आ +	-
स्वम्	स्वकीयम्	अपने को
अद्भ्य	अदनीयम्	भक्षण करने योग्य
यवमानः	अर्जयन् (भा०को०)	को इकट्टाकरता हुआ
अजरः	जरारहितः	बुढापे से रहित

तषु ८७	क्षिप्रम् (नियं० २।१५)	शीघ्र
अविष्यन्	भक्षयन् (नियं० २।८)	भक्षण करता हुआ
अतसेषु	काष्ठेषु (अत्राऽतसशब्दः का- ष्ठराची, 'अतसंत- शुष्कम्' इति श्रु- ० ४।४।४। दर्शनात्)	काष्ठों में
तिष्ठति	आ+तिष्ठति, आरोहति	चढ़ता है
अत्यः	अत्यः (नियं० १।१४)	घोड़ा
न	इव	जैसे
पृष्ठम्	पृष्ठम्	पीठ
प्रुष्रितस्य	स्निग्धस्य (प्रुष्रस्नेहने)	चिकने की
रोचते	दीप्यते	चमकती है
द्विवः	द्विलोकस्य	द्विलोक के
न	इव	जैसे

सानु	मस्तकम्	मस्तक को
स्तनयन्	शब्दयन्	गर्जाता हुआ
अचिक्रदत्	गम्भीरशब्द- मकरोत्	गम्भीर शब्द को किया है

संस्कृतार्थः ।

जरा रहितः (अघमग्निः) स्वकीयमदनीय-
मर्जयन् क्षिप्रं भक्षयन् (च) काण्ठेऽवारोहति (घृतसेच-
नेन) स्निग्धस्य (अस्य) पृष्ठमश्व इव दीप्यते
(अयम्) द्युलोकस्य मस्तकं शब्दयन्निव गम्भीरशब्द
मकरोत् । २ ।

भाषार्थः ।

बुढापे से रहित (यह अग्नि) अपने भोजन को
इकट्ठा करके शीघ्र भक्षण करते हुए काण्ठों पर
चढ़ते हैं (घी सींचनेसे) चिकनी हुई २ (इन) की पीठ
घोड़े की न्याईं चमकती है (इन्होंने) द्युलोक के
मस्तक को गर्जाते हुए की न्याईं गम्भीर शब्द को
किया है । २ ।

भरणी द्वारा मघन किए जाने पर शुष्क गोमय या तृण आदि
भोजन को खा कर अग्निदेव काण्ठों में प्रवेश करते हैं और जब

आ० मं० १ सू० ५८ मं० ३ (१४६८)

उन पर घी की आहुति डाली जाती है, तब अग्नि को पीठ घोड़े की पीठ को न्याई चमकती है ।

(२) अग्नि का गम्भीर शब्द को करना यजमान के लिये अथ श्वनि को सूचन करता है ।

अग्निर्देवता जगती छन्दः । १२ । १२ । १२ । १२ ॥

क्रा॒णा रु॒द्रेभि॒र्वसु॑भिः पुरो॒हितो

हो॒ता निष॑त्तो रयिषाळम॒र्त्यः । रथो-

न वि॒द्वच्च॑ज॒सान॒ आयु॑षु॒ व्यानु॑ष॒ग्वा-

र्या॑ दे॒व ऋ॑णवति । ३ ।

क्रा॒णा	कुर्वाणः (निघं० ४१)	करता हुआ
रु॒द्रेभिः	रुद्रैः	रुद्रों से
वसु॑भिः	वसुभिः	वसुओं से
पुरः॑ह॒तः	पुरस्कृतः	आगे किया हुआ

होता	होता	होता
निऽसत्तः	निपण्णः	वैठा हुआ
रयिषाट्	(शत्रु-)धनाना- मभिभविता	(शत्रुओं के) धनों को दवाने वाला
अमर्त्यः	मरण रहितः	मरण रहित
रथः	रथः	रथ
न	इव	की न्याईं
विक्षु	प्रजासु	प्रजाओं में
कृञ्जसानः	धावन् (आ०को०)	दौड़ता हुआ
आयुष	मनुष्येषु (निघं०२३)	मनुष्यों में
वि	वि+	-
आनुषक्	सततम्	निरन्तर
वाट्या	वरणीयानि	वरने योग्यों को
देवः	देवः	देवः

कृ॒ण॒व॒ति	वि + ऋणवति प्राप्नोति तिघं२।४)	प्राप्त करता है
-----------	--------------------------------------	-----------------

संस्कृतार्थः ।

(शब्दम्) कूर्वाणो रुद्रैर्वसुभिः (च) पुरस्कृतः
(यज्ञशालायाम्) निषण्णो होता (शत्रु-)धनानामभि-
भविता मरण रहितः (अग्निः-) देवः प्रजासु रथ
इव मनुष्येषु धावन् चरणीयानि (हवींषि) सततं
प्राप्नोति ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

(शब्द को) करते हुए, रुद्र (और) वसुओं से आगे
किये हुए, (यज्ञ शालामें) बैठे हुए होता (शत्रुओं के)
धनों को दवाने वाले (और) मरण रहित (अग्नि), देव
प्रजाओं में रथ की न्याईं मनुष्यों में दौड़ते हुए चरने
योग्य (हवियों) को निरंतर प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

(१) जैसे प्रजाओं में राजा का रथ दौड़ता हुआ कर को लेता
है इसी प्रकार अग्निदेव मनुष्यों से उत्तम उत्तम हवि को लेते हैं ॥

अग्निदेवता जगतीछन्दः १२।१२।१२।१२

वि॒वा॒त॒जू॒तो॒ अ॒त॒से॒षु॒ति॒ष्ठ॒ते॒ व॒था॑

जुहूभिःसृगयातुविष्वणिः । तृषुयद-
ग्नेवनिनोवृषायसे कृष्णांतएमरुश-
दूर्मेअजर ।४।

वि	वि+	—
वातऽजुतः	वायुना प्रेरितः	वायु से प्रेरणा किया हुआ ..
अतसेषु	काण्ठेषु	काण्ठों में
तिष्ठते	वि + तिष्ठते, व्याप्नोति	फैल जाता है
वृथा	अनायासेन	सहज से
जुहूभिः	जिह्वाभिः	जिह्वाओं से
सृगया	दाग्ररूपाभिः (यवन इत्ययः)	दरांती रूपों से
तुविऽस्वनिः	महास्वनः	बड़े शब्द वाला
तृषु	क्षिप्रम्	शीघ्र

यत्	यदा	जत्र
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
वनिनः	वनसम्बन्धिनो- वृक्षान्	वन के वृक्षों को
वृष्यसे	वृषइवाऽऽचरसि	वैलकी न्याई आ- चरण करते हो
कृष्णाम्	कृष्णवर्णः	काले रंगवाला
ते	तव	तेरा
एम	गमनमार्गः (आ०को०)	ज्ञाने का रस्ता
रुशत्ऽजर्मे	हे दीप्तोर्मे !	हे चमकती हुई लहरों वाले
अजर	हे जरारहित !	हे बुढ़ापेसे रहित

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! वायुना प्रेरितो महास्वनः (भवान्) दात्ररूपाभिर्जिह्वाभिः काष्ठेष्वनायासेन व्याप्नोति, हे जरा रहित ! हे दीप्तोर्मे ! यदा (त्वम्) शीघ्रतया वनसम्बन्धिनो वृक्षान् (प्रति) वृषइवाऽऽचरसि

(तदा) तत्र गमनमार्गः कृष्णवर्णः (भवति) ॥ ४ ॥

भाषार्थः

हे अग्नि, वायुसे प्रेरित हुए २ बड़े शब्द वाले (आप) दरांती रूप जिह्वाओसे सहज ही काष्ठों में फैल जाते हैं, हे वुढापे से रहित ! हे चमकती हुई लहरों वाले ! जब आप शीघ्रता से वन के वृक्षों (के-प्रति) बैलकी न्याड आचरण करते हो (तत्र) आप के चलने का रस्ता काले रंग वाला (होजाता है) । ४।

इस मंत्र में ऋषि अग्नि की वनको जलाने की शोभा को देख रहे हैं । 'वृषायसे' का यह तात्पर्य्य है कि जैसे साढ़ बैल गौओं में पैर जाता है, इसी प्रकार अग्निदेव वृक्षों में पैर जाते हैं । इसी बात को अगले मंत्र में स्पष्ट किया है ॥

अग्निदेवता जगती छन्दः । १२।१२।१२।१२॥

तपुर्जम्भोवनत्रावातचीदितो यू-

थेनसाह्वात्रववातिवसंगः । अभिव्र-

जन्नक्षितंपाजसारजः स्यातुप्रत्तरथं

भयतेपतत्रिणः । ५।

तपुःऽजम्भः	तपूपिज्वालाएव जम्भादन्तायस्य सः	ज्वालारूपी दांतों वाला
वने	वने	वन में
आ	समन्तात्	चारों ओर से
{ वातऽचो- दितः	वायुना प्रेरितः	वायु से प्रेरित हुआ २
यथे	(गो-) समूहे	[गोओं के] समूह में
न	इव	की न्याईं
सहान्	जयशाली (निपातनात्साधुः, ह्रस्वश्छान्दसः)	जीतने वाला
अव	अव+	-
वाति	अव+वाति, व्याप्नोति	पैरता हैं
वंसगः	वृषः	बैल
अभिऽव्रजन्	अभिमुखंगच्छन्	सामने जाता हुआ

अक्षितर	अक्षीणम्	न छीजने वाले को
पाजसा	बलेन (निघ०२।९)	बल से
रजः	अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्ष को
स्थातुः	स्थावरात्	स्थावर से
चरथम्	जङ्गम (पर्यन्तम्)	जङ्गम (पर्यन्त)
भयते	विभेति (व्यत्ययेनाऽऽमन पदम् इलोरभाष)	डरता है
पतत्रिणः	पतनवत.	उड़ने वाले से

ससृत्तार्थ ।

ज्वालारूपदन्तयुक्तो जयशालो (अग्निः) वायुना प्रेरित (सन् यदा) अक्षीणमन्तरिक्षं प्रति गच्छन् (गो) यूथे वृषड्व वने व्याप्नोति (तदा) पतनवतः (अस्मादग्ने) स्थावरात् (आरभ्य) जङ्गम-पर्यन्त सर्वभूतजातम्) विभेति ॥ ५ ॥

मापार्थः ।

ज्वालारूप दातों से युक्त, जीतने वाले (अग्नि-देव) वायुसे प्रेरित(होकर जब) न छीजने वाले अन्त-

रिक्ष के प्रति बल से जाते हुए वन में पैरते हैं, जैसे बैल (गौओं के) समूह में (पैर जाता है) (उस समय) उड़ने वाले (इस अग्नि से) स्थावर से (लेकर) जंगम (तक सब प्राणी) डरते हैं ॥ ५ ॥

धग्नि का मयानक रूप वन को जलाते समय प्रतीत होता है।

अग्निदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११

द॒धु॒ष्ट्वा॒भृ॒ग॒वो॒मा॒नु॒षे॒ष्वा र॒यिं-

न॒चा॒रु॑सु॒ह॒व॑ज॒ने॒भ्यः॑ । ची॒ता॒र॒म॒ग्ने

अ॒ति॒थि॑व॒रे॒ण्यं मि॒त्रं॑ न॒शे॒वं॒दिव्या॑य-

ज॒न्म॑ने ।६।

द॒धुः	आ + दधुः, स्थापितवन्तः	स्थापन किया है
त्वा	त्वाम्	तुझ को
भृ॒ग॒वः	भृगवः	भृगुओं ने
मा॒नु॒षे॒षु	मनुष्येषु	मनुष्यों में

आ	+आ	-
रयिम्	धनम्	धन को
न	इव	जैसे
चारुम्	शोभनम्	सुन्दर को
सुऽह्वम्	सुखेनाऽऽह्वातुं- शक्यम्	सहज से बुलाए जाने वाले को
जनेभ्यः	मनुष्येभ्यः	मनुष्यों के लिये
होतारम्	होतारम्	होता को
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
अतिथिम्	अतिथिम्	अतिथि को
वरण्यम्	वरणीयम्	वरने योग्य को
मित्रम्	मित्रम्	मित्र
न	इव	की न्याई
शेवम्	सुखकरम्	सुखदेने वाले को

दिव्याय	दिव्याय +	-
जन्मने	दिव्याय + जन्मने देवजातये	देवजातिके लिए

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! मनुष्येभ्यो सुखेनाऽऽह्वातुं शक्यं होतारं वरणीयमतिथिं देवजातये मित्रमिव सुखकरं त्वां भृगवो मनुष्येषु शोभनं धनमिव स्थापितवन्तः ॥ ६ ॥

भावार्थः ।

हे अग्नि ! मनुष्यों के लिए सुख से बुलाए जाने वाले, होता, वरने योग्य अतिथि [और] देव जाति के लिए मित्रकी न्याईं सुखके देने वाले आपको भृगुओं ने मनुष्योंमें सुन्दर धनकी न्याईं स्थापन किया है ॥ ६

भृगुओं ने भार्यजाति में अग्नि की एक धन के फौज की न्याईं स्थापन किया है जिससे उनका ऐदर्य पूर्वकाल में सब जातियोंसे बढ़ कर रहा है ॥

अग्निदेवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११ ।

होतारं सप्तजुहोश्य जिष्ठं यं वाष-
तोष्ठुणते अथ वरेषु । अग्निं विप्रवेषा-

मरति॑वसू॒नां सप॒ठर्या॑मिप्रय॑सा॒यामि॑-

रत्न॑म् ।७।

हो॒तार॑म्	हो॒तार॑म्	हो॒ता को
स॒प्त	स॒प्त	सा॒त
जु॒ह्वः	आ॒ह्वा॒तारः	बु॒झाने॑ वाले
यजि॑ष्ठम्	यज्ठृ॑नमम्	सब॑ से अधिक पू॒जने॑ वाले को
यम्	यम्	जिस॑ को
वा॒घतः	ऋ॒त्विजः (निघ० ३। १८)	ऋ॒त्विज
वृ॒णत॑	वृ॒णव॑न्ति	वर॑ते हैं
अ॒ध्वरे॑षु	यज्ञे॑षु	यज्ञों॑ में
अ॒ग्नि॑म्	अ॒ग्नि॑म्	अ॒ग्नि को
वि॒श्वे॑षाम्	सर्व॑षाम्	सब॑ के

दिव्याय	दिव्याय+	-
जन्मने	दिव्याय+जन्मने देवजातये	देवजातिके लिए

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! मनुष्येभ्यो सुखेनाऽऽह्वातुं शक्यं होतारं वरणीयमतिथिं देवजातये मित्रमित्र सुखकरं त्वां भृगवो मनुष्येषु शोभनं धनमित्र स्थापितवन्तः ॥ ६ ॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि ! मनुष्यों के लिए सुख से बुलाए जाने वाले, होता, वरने योग्य अतिथि [और] देव जाति के लिए मित्रकी न्याईं सुखके देने वाले आपको भृगुओं ने मनुष्योंमें सुन्दर धनकी न्याईं स्थापन किया है ॥ ६

भृगुओं ने आर्यजाति में अग्नि को एक धन के कोश की न्याईं स्थापन किया है जिससे उनका पेट्रयं पर्वकाल में सय जातियोंसे बढ़ कर रहा है ॥

अग्निर्देवता त्रिष्टुष्टन्दः । ११ । ११ । ११ । ११ ।

होतारं सप्तजुह्वोश्च यजिष्ठं यं वाघ-
तो हृणाते अथ वरेषु । अग्निं विप्रवेपा-

अन्न से मैं सेवा करता हूँ (और) रमणीय धनको मांगता हूँ । ७ ।

(१) सात होता ऋत्विज मर्षात् होता, मैत्रावरुण, भच्छावाक, ब्राह्मणाच्छसी, भाम्नीध्र, पोता और नेप्ता ॥

अग्निदेवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११ ।

अच्छिद्रासूनोसहसोनोअद्य स्तो-
तृभ्योमित्रमहःशर्मयच्छ । अग्ने
गणन्तमंहसउरुष्यो जौनपात्पूर्भि-
रायसीभिः । ८ ।

अच्छिद्रा	छिद्ररहितम् (विमकेरायम्)	छिद्ररहित को
सूनो०	हे पुत्र !	हे पुत्र
सहसः	बलस्थ	बलके
नः	अस्मभ्यम्	हमारे ताई

अ॒र॒ति॒म्	प्रा॒प॒यि॒ता॒र॒म् (ऋ॒प्रा॒प॒णे-औ॒णादि- कोऽति॒प्रत्ययः)	प्राप्त॑ कराने वाले को
व॒सू॒ना॒म्	ध॒ना॒ना॒म्	धनों के
स॒प॒थ्या॑मि	प॒रि॒च॒रा॒मि	में सेवा करता हूँ
प्र॒य॒सा	[ह॒वी॒ रू॒पेण] अ॒न्ने॒न	[ह॒वि॒ रू॒प] अ॒न्न॒से
या॒मि	या॒चा॒मि (घ॒र्ण॒लो॒प॒द॒छा॒न्द॒सः)	मांगता हूँ
र॒त्न॒म्	र॒म॒णी॒यं॑ ध॒न॒म्	रमणीय धन को

संस्कृतार्थः ।

आह्वातारः सप्तर्षिजो यज्ञेषु यष्टृतमं होतारं
यमग्निं वृण्वन्ति सर्वेषां धनानां प्रापयितारम् [तमहं-
हवीरूपेण] अन्नेन परिचरामि रमणीयं धनम् (च)
याचामि ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

बुलाने वाले सात ऋषिज यज्ञों में सब से
अधिक पूजने वाले जिस होता अग्नि को चरते हैं
सब धनों के प्राप्त कराने वाले (उस की हविरूप)

पूऽभि	रक्षाभिः	रक्षाओं से
आयसीभिः	लोहमयीभिः, दृढाभिरित्यर्थः	दृढ़ों से

ससकृतार्थः ।

हे बलस्य पुत्र ! हे मित्रनन्दन ! हे अग्ने !
अथाऽस्मभ्यं स्तोतृभ्यश्छिद्रराहंतं शरणं देहि,
हे बलस्य पुत्र ! स्तुवन्तम् (माम्) दृढाभीरक्षाभिः
पापाद्रक्ष ॥८॥

भाषार्थः ।

हे बल के पुत्र ! हे मित्रों को आनन्द देने वाले
हे अग्नि ! आज हम स्तोताओं के ताई छिद्र रहित
शरण को दीजिए, हे बल के पुत्र ! स्तुति करते हुए
मुझ को दृढ़ रक्षाओं के द्वारा पाप से बचाइये ॥ ८ ॥

अग्निदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११।

भवावरूयंगुणतेविभावो भवाम-
घवन्मघवद्भ्यःशर्म । उरुप्याग्ने
अहसोगुणन्तं प्रातर्मक्षुधियावसु-
र्जगम्यात् ।९।

अद्य	अद्य	आज
स्तोतृभ्यः ^१	स्तोतृभ्यः	स्तोताओं के ताई
मित्रमहः	हे मित्रनन्दन !	हे मित्रों को आ- नन्द देने वाले
शर्म ^१	शरणम्	शरण को
यच्छ	देहि	दीजिए
अग्ने ^१	हे अग्ने !	हे अग्नि
गणन्तम् ^१	स्तुवन्तम्	स्तुति करतेहुएको
अंहसः ^१	पापात्	पाप से
उरुष्यं ^१	रक्ष (उरुष्यतीरक्षाकर्मैति- यास्कः, निरु०५।२३)	बचाओ
ऊर्जः ^१	बलस्य	बलको
नपात् ^१	हे पुत्र !	हे पुत्र

पूःऽभि	रक्षाभिः	रक्षाओं से
आयसीभिः	लोहमयीभिः, दृढाभिरित्यर्थः	दृढ़ों से

सस्कृतार्थः ।

हे बलस्य पुत्र ! हे मित्रनन्दन ! हे अग्ने !
अद्याऽस्मभ्यं स्तोतृभ्यश्छिद्रराहंतं शरणं देहि,
हे बलस्य पुत्र ! स्तुवन्तम् (माम्) दृढाभीरक्षाभिः
पापाद्रक्ष ॥८॥

भाषार्थः ।

हे बल के पुत्र ! हे मित्रों को आनन्द देने वाले
हे अग्नि ! आज हम स्तोताओं के ताई छिद्र रहित
शरण को दीजिए, हे बल के पुत्र ! स्तुति करते हुए
मुझ को दृढ़ रक्षाओं के द्वारा पाप से बचाइये ॥ ८ ॥

अग्निदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११।

भवाव॒रू॒थंगुण॑ते॒ विभा॑वो भवाम-

घवन्म॒घवद्भ्यः॑ श॒र्म । उ॒रु॒ष्याऽग्ने॑

अ॒ह॒सो॒गुण॑न्तं प्रा॒तर्म॑क्षु॒धिया॑व॒सु-
र्जग॑म्यात् ।९।

भव	भव	तू हो
वरुथम्	ग्रहम्, आश्रय इत्यर्थः निघ० ३१४)	आश्रय
गणते	स्तुक्ते	स्तोताके लिए
विभाऽवः	हे प्रकाश युक्त !	हे प्राकश वाले
भव	भव	तू हो
मघऽवन्	हे धनवन् !	हे धनवाले
{ मघवत् ऽभ्यः	धनवद्भ्यः	धनवानोंके लिये
शर्म	शरणम्	शरण
उरुथ	रक्ष	वचाये
अग्ने	हे अग्ने !	हे आग्न
अंहसः	पापात्	पाप से

गणन्तम्	स्तुवन्तम्	स्तुति करते हुएको
प्रातः	प्रातःकाले	प्रातःकाल में
मक्षु	शीघ्रम्	शीघ्र
धियाऽवसुः	ध्यानेन धनवान्	ध्यान द्वारा धन
जगम्यात्	आगच्छतु (शपःइत्युः)	प्राप्त हो वाला

संस्कृतार्थः :

हे प्रकाशयुक्त ! (त्वम्) स्तुवत आश्रयोभव हे धनवन् ! धनवद्भ्यः शरणं भव, हे अग्ने ! स्तुवन्तम् (माम्) पापाद्रक्ष, ध्यानेन धनवान् (भवान्) शीघ्रं प्रातरागच्छतु ॥ ९ ॥

भाषार्थः । .

हे प्रकाश से युक्त ! आप स्तोताके लिए आश्रय हों हे धनवाले ! आप धनवानों के लिए शरण हों हे अग्नि ! आप (मुझ) स्तोता को पापसे बचावें ध्यान से धन वाले (आप) प्रातःकाल में शीघ्रप्राप्त हों ॥ ९ ॥

(१) अग्नि देवता को मनुष्यों की न्याईं धन के लिए पुरुषार्थ की आवश्यकता नहीं है वह ध्यान मात्र से धन को प्राप्त करने वाले हैं ॥

इत्यष्टपञ्चाश सूक्तम्

15

ऋ० मं० १ सू० ५६

नोधाम्नापिः ।

विनियोग—दूसरा मन्त्र अर्थात् "मूर्धा दिवो" इत्यादि सत्र के विपुवत दिन में अग्नि मारुत शस्त्रमें स्तोत्रियानुरूप है—(भा०श्री० सू० ३०२ । ६ । २३) अर्थात् स्तोत्रिय तृच के पीछे पढा जाता है ॥

इस सूक्त में भी अग्नि की स्तुति है—पाथिव अग्निसे अन्य जो अग्निया हैं वे सब इसी की शाखा हैं, यही अग्नि वैश्वानर रूप में मनुष्यों को सहारे हुए है, दुल्लोक के मस्तक स्थानीय जो सूर्य भगवान हैं वह भी अग्नि हैं पृथिवी के गर्भमें भी यही अग्नि हैं ऐसे अग्नि देव की देवताओं ने अर्थ के लिए ज्योतिरूप बनाया है और देवताओं ने सब धन अग्नि में स्थापन किये ह जो धन परंतों में, औषधियों में, जलों में, और मनुष्यों में है उन सब धनों को अग्नि राजा हैं ऐसे सच्चे बली वैश्वानर अग्नि के तारि महान स्तुतिया उच्चारण करो, अग्नि देव मनुष्य मात्र के राजा हैं और देवताओं की समृद्धि के कारण भी यही हैं इन्होंने घृत्र को मार कर दिशाओंको कम्पाया और शम्बर को छिन्न भिन्न किया, मनुष्य मात्र के स्वामी भरद्वाजों के पूज्य वैश्वानर अग्नि शतवनि के पुत्र राजा प्रहणोपके कुल म सत्रों स्नात्रों से स्तुति किये जाते थे ॥

वैश्वानरोऽग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ॥ ११ ॥ ११ ॥ ११ ॥ ११ ॥

व॒या इ॒द॒ग्ने॑ अ॒ग्नय॑स्ते॒ अन्ये॑ । त्वे
वि॒भू॒वे॑ अ॒मृता॑मा॒दय॑न्ते । वै॒श्वान॑रं
नाभि॑रसि॒द्धिती॑नां॒ स्थू॒र्णै॒व॒जना॑ उ॒-
प॒मि॒दय॑न्थ ॥१॥

व॒याः	शाखाः (यास्क०)	शाखा
इ॒त्	एव	ही
अ॒ग्ने	हे अग्ने !	हे अग्निं
अ॒ग्नयः॑	अग्नयः	अग्नियां
ते॒	तव	तेरी
अ॒न्ये	अन्ये	और
त्वे०	त्वयि	तुझ में

विभवे	सर्वे	सब
अमृताः	मरण रहिताः	मरण रहित
मादयन्ते	हृष्यन्ति	हर्षित होते हैं
वैश्वानर	विश्वेषु नरेषु भव- स्तत्सम्बुद्धौ (मयार्थभण्)	हे सब मनुष्यों में होने वाले
नाभिः	नाभिः	नाभि
असि	असि	तू है
क्षितीनाम्	मनुष्याणाम् (निघं० ३३)	मनुष्यों का
स्थूणाऽइव	(गृह-) स्तम्भइव	(घरके) खंभे की न्याई
जनान्	मनुष्यान्	मनुष्यों को
उपऽमित्	निखातः	गड़े हुए
ययन्थ	आधारयः (यमउपरमे)	सहारा है

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! अन्येऽग्नयस्तव शाखा एव (सन्ति)

त्वयि सर्वे मरणरहिताः (देवाः) हृष्यन्ति हे वैश्वानर !
 (त्वम्) मनुष्याणां नाभिरसि (त्वंमेव) निखातः (गृह-)
 स्तम्भइव मनुष्यान्धारयः ॥१॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि, और अग्नियां आपकी शाखा ही हैं आपके कारण मरण रहित सब (देवता) हर्षित हैं, हे सब मनुष्यों में होने वाले ! आप मनुष्यों के नाभि हैं, गडे हुए (घर के) खंवे की न्याईं आप (ही) मनुष्यों को सहारे हुए हैं ॥१॥

और अग्निया जैसे मनुष्यमादि जीवों में रहने वाली, सूर्य और पृथिवी के गर्भ में रहने वाली, अन्तरिक्ष और तारागण में रहने वाली इत्यादि सब अग्निया पाथिय अग्नि की ही शाखा हैं, सब देवता अग्नि के कारण हर्षित हैं, जैसे चन्द्रमा की छवि का कारण, वायु के वेग का कारण और नदिया के खोंखाट का कारण भी सूर्य की किरणें हैं, जो समुद्र से जल को उठा कर पर्वत पर गिराती हैं इसी प्रकार आकाश में तारागण की प्रभा के और पृथिवी में वृक्ष, पत्र, पक्षी, और मनुष्यों की सम्पूर्ण चेष्टाओं के कारण अग्नि ही मनुष्य का जीवन उस क भीतर रहने वाले वैश्वानर अग्नि पर ही निर्भर है, जैसे घर की छत खम्भों पर निर्भर होती है ॥

वैश्वानरोऽग्निदेवता त्रिष्टुच्छन्द १११ १११ १११ १११

सूर्धादिवोनाभिरग्निः पृथिव्या

अथाभवदरतीरीदस्योः । तंत्वादे-
 वासोऽजनयन्तदेवं वैश्वानरुज्योति
 रिदाठर्याय ।२।

मूर्धा	मूर्धा	मस्तक
दिवः	द्युलोकस्य	द्युलोक का
नाभिः	नाभिः	नाभि
अग्निः	अग्निः	अग्नि
पृथिव्याः	पृथिव्याः	पृथिवी का
अथ	अनन्तरम्	पीछे
अभवत्	अभवत्	हुआ
अरतिः	अधिपतिः	स्वामी

रोदस्योः	द्यावापृथिव्योः	धौ और पृथिवी का
तम्	तम्	उसको
त्वा	त्वाम्	तुझ को
देवासः	देवाः (जसोऽसुगामः)	देवताओं ने
अजनयन्त	उत्पादितवन्तः	उत्पन्न किया
देवम्	दीप्यमानम्	दीप्तिमान को
वैश्वानर	हे वैश्वानर !	हे सब मनुष्यों में होने वाले
ज्योतिः	ज्योतिः	ज्योति को
इत्	(पूरणः)	-
आर्थाय	आर्थाय	आर्य के लिए

संस्कृतार्थः ।

बृलोकस्थ मूर्धापृथिव्या नाभिः (त्राऽयमग्निः)

अनन्तरं द्यावापृथिव्योरधिपतिरभवत्, हे वैश्वानर !

तं दीप्यमानं त्वां देवा आर्ययि ज्योतीरूपमुत्पा-
दितवन्तः ॥२॥

भाषार्थः ।

इस के अनन्तर द्युलोक के मस्तक (और) पृथिवी के नाभि (यह अग्नि) द्यौं और पृथिवी के स्वामी बने, हे सत्र मनुष्यों में होने वाले, उस दीप्तिमान् आपको देवताओं ने आर्य के लिये ज्योति रूप उत्पन्न किया है ॥ २ ॥

अग्नि सूर्यरूप में द्युलोक के मस्तक हैं और पृथिवी के गर्भ में रहने से पृथिवी के नाभि या केन्द्र है, चाया पृथिवी के शासक भी अग्निदेव ही हैं क्योंकि पृथिवी पर जो कुछ होता है उस का कारण भूगर्भअग्नि या सूर्य की किरणें ह इसी प्रकार आकाश में भी जो कुछ घटनाएँ होती हैं जैसे आंधी, चर्चा, धंध इत्यादि सब का हेतु अग्नि है इस लिये आकाश के शासन कर्ता भी अग्नि हैं ॥

आर्य के लिये देवताओं ने अग्नि को ज्योतिरूप बनाया, अर्थात् आर्योंकी सारी उन्नति और सभ्यता परमात्माको अग्नि या ज्योति रूप में मनन और पूजन करने में हुई है ॥

वैश्वानरोऽग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ॥११॥११॥११॥११॥

आसू०र्ये०नर०प्र०मयो०ध्रु०वा०सो० वैप्र०वा-

न०रे०द०धि०रे०ऽग्ना०व०सू०नि० । या०प०र्व०ते०ष्वो-

प्रधीष्वप्सु यामानुषेष्वसितस्य-

राजा ।३।

आ	आ +	-
सूर्ये	सूर्ये	सूर्य में
न	इव	जैसे
रश्मयः	किरणाः	किरणें
ध्रुवासः	निश्चलाः	निश्चल
वैश्वानरे	वैश्वानरे	वैश्वानर में
दधिरे	आ + दधिरे, स्थापितवन्तः	स्थापन किया है
अग्ना	अग्नौ	अग्नि में
वसूनि	(सूपामितिभिन्नोऽर्थां) धनानि	धनों का
या	यानि (नेर्लोपः)	जो

पर्वतेषु	पर्वतेषु	पर्वतों में
ओषधीषु	ओषधीषु	ओषधियों में
अप्सु	अप्सु	जलोंमें
यानि	यानि	जो
मनुष्येषु	मनुष्येषु	मनुष्यों में
असि	असि	तू है
तस्य	तस्य	उसका
राजा	राजा	राजा

संस्कृतार्थः ।

(देवाः) वैश्वानरेऽग्नौ सूर्ये निश्चलाः किरणा इव धनानि स्थापितवन्तः (हे अग्ने !) यानि (धनानि) पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु यानि(च) मनुष्येषु(विद्यन्ते) तस्य (धनसमूहस्य त्वमेव) राजाऽसि ॥३॥

भाषार्थः ।

(देवताओं ने) सूर्य में निश्चल किरणों की न्याईं वैश्वानर अग्नि में धनों को स्थापन किया है

(हे अग्नि) जो (धन) पर्वतों में ओषधियों में जलों में (और) जो मनुष्यों में (विद्यमान हैं) आप(ही) उनके राजा हैं ॥३॥

जो सब धर्मों के राजा हैं उन्हीं से सब धन मांगते चाहियें ॥

वैश्वानरोऽग्निदेवता त्रिष्टुच्छन्दः ।११।११।११।११।

बृहती॑ इ॒व॒सू॒न॒वे॒रो॒द॒सी॒ गि॒री॒हो-

ता॑ म॒नु॒ष्यो॒श्न॒द॒क्षः॑ । स्व॒र्व॒ते॒स॒त॒य-

शु॒ष्मा॒य॒पूर्वो॑ वै॒श्वान॒रा॒य॒न॒त॒मा॒य-

य॒क्षीः॑ ।४।

बृहती॑ऽइ॒व॒	महत्याविव	घड़ों की न्याई
सू॒न॒वे॑	पुत्राय	पुत्र के लिए
रो॒द॒सी॑०	द्यावापृथिव्यौ	दुलोक और
गि॒रः॑	स्तुतयः	पृथिवी
		स्तुतियां

हीता	होता	होता
मनुष्यः	मनुष्यः	मनुष्यः
न	इव	की न्याई
दक्षः	कर्मकुशलः	कार्य में चतुर
स्वःऽवते	ज्योतिष्मते	प्रकाश वाले के लिए
{ सत्यऽशु-	सत्यबलाय	सच्चे बली के लिए
{ ष्माय		
पूर्वीः	पुरातनीः	प्राचीनों को
वैश्वानराय	वैश्वानराय	वैश्वानर के लिए
नऽत्तमाय	नरोत्तमाय	सर्वोत्तम नर के लिए
यज्ञीः	महतीः	महानों को

(निघ० ३३)

संस्कृतार्थः ।

महत्यौ यावापृथिव्याविव (तयोः) पुत्राय स्तुतयः

(अपि महत्यः सन्ति, सः) होता (अग्निः) मनुष्य इव
कर्म कुशलः (अस्ति) ज्योतिष्मते सत्यबलाय नरो-
त्तमाय(तस्मै) वैश्वानराय पुरातनीर्महतीः (स्तुतीः
कुरुत) ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

महान् धावापृथिवी की न्याई (उनके) पुत्र के
लिये स्तुतियां(भी महान हैं वह)होता(अग्नि)मनुष्य
की न्याई कर्म में चतुर (हैं) प्रकाश वाले, सच्चे-
बली सर्वोत्तम नर (उस) वैश्वानर के लिए प्राचीन
और महान (स्तुतियों को करो) ॥४॥

जैसे धावापृथिवी महान हैं वैसे ही उनके पुत्र अग्नि के
लिये स्तुतियां भी महान हैं मनुष्य की अपेक्षा अत्यन्त अधिक
महान होनेपर भी अग्नि देवताओं के लिए होएकर्म को मनुष्य होता
की न्याई चतुराई से करते हैं, उन्हीं नरोत्तम सच्चे बली वैश्वा-
नर अग्नि के लिये प्राचीन अर्थात् वेद विहित और महान स्तुतियां
का उच्चारण करना चाहिये ।

वैश्वानरोऽग्निदेवता त्रिष्टुप्ठुन्दः ।११।११।११।११।

द्वि॒व॒श्चि॒त्ते॒षु॒हृ॒तो॒जा॒त॒वे॒दे॒ वैश॒वा-

न॒र॒प्र॒रि॒रि॒चे॒म॒हि॒त्त्व॒म् । रा॒जा॒कृ॒ष्टो-

नामसिमानुषीणां युधादेवेभ्योवरि-
वप्रचकर्थ ॥५॥

दिवः	द्युलोकात्	द्युलोक से
चित्	अपि	भी
ते	तव	तेरी
बृहत्तः	महतः	महान से
जातऽवेदः	हेजातानां वेदितः!	हे उद्यन्त हुआंके जानने वाले
वैश्वानर	हे वैश्वानर !	हे सब मनुष्यों में होने वाले
प्र	प्र +	-
रिरिचे	प्र+रिरिचे, ववृधे	बढी
महिऽत्वम्	महत्त्वम्	महिमा
राजा	राजा	राजा

कृ॒ष्टी॒नाम्	प्र॒जा॒नाम् (निघं०२।१)	प्र॒जाओं का
अ॒सि॒	अ॒सि	तूँ हैं
मा॒नु॒षी॒णाम्	म॒नो॒र्जा॒ता॒नाम्	म॒नु से उत्पन्न हुई का
२ यु॒धा	यु॒द्धे॒न	यु॒द्ध से
दे॒वे॒भ्यः	दे॒वे॒भ्यः	दे॒वताओं के लिये
व॒रि॒वः	ध॒नम् (निघं०२।१०)	ध॒न को
च॒क॒र्ष्यं	कृ॒त॒वान्	किया

संस्कृतार्थः ।

हे जातानावेदितः ! हे वैश्वानर ! तव महत्त्वं महतो द्युलोकादपि ववृधे (त्वम्) मनोर्जातानां प्रजानां राजाऽसि (त्वम्) युद्धेन देवभ्यो धनम् (प्रादुः-) कृतवान् ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

हे उत्पन्न हुआओं के जानने वाले ! हे सब मनुष्यों में होने वाले ! आपकी महिमा महान द्युलोक से भी षढी हुई है आप मनु से उत्पन्न हुई प्रजाओं के

राजा हैं, आपने युद्ध से देवताओं के लिए धन को उत्पन्न किया है ॥ ५ ॥

(१) अग्निदेव मनुष्य मात्र के राजा है, वह राजाओं के भी राजा हैं इसलिये हमारी राजनिष्ठा अग्नि में ही होनी चाहिये।

(२) जो वृत्र के साथ इन्द्र के युद्ध हैं, वे अग्नि के भी हैं जैसे अगली ऋचा में स्पष्ट वर्णन किया है, क्योंकि जो कुछ अन्तरिक्ष में विद्युत् शक्ति का प्रभाव है उस का हेतु सूर्य की अग्नि ही है, इसलिये वृत्र से जलों को छुड़ा कर पृथिवी पर गिराना और उस के द्वारा देवताओं के हर्ष के हेतुरूप सोम, और हवि रूप अन्नमादि को उत्पन्न करना अग्नि का ही कर्म है ॥

वैश्वानरोऽग्निर्देवता त्रिष्टुच्छन्दः ।११।११।११।११

प्र॒नू॒म॒हि॒त्त्वं॑ वृ॒ष॒भ॒स्य॑ वी॒चं॑ यं॒पर॑वी-

वृ॒त्र॒ह॒णं॑ स॒च॒न्ते॑ । वै॒श्व॒ान॒रो॒द॒स्यु॑म-

ग्नि॑र्ज॒घ्न॑न्ना॒ अधू॑नी॒त्का॑ष्ठा॒ अव॒श-

स्व॑रं॒भेत् ॥६॥

प्र	प्र+	-
न	इदानीम् (मा०को०)	अव

महिऽत्वम्	महत्त्वम्	महिमा को
वृषभस्य	नरश्रेष्ठस्य	नर श्रेष्ठ की
वोचम्	प्र+वोचम्, प्रव्रवीम (सङ्घर्षेणुङ्, षडभाव)	वर्णन करता हूँ
यम्	यम्	जिसको
पूरवः	मनुष्या. (निघ० २।३)	मनुष्य
वृत्रऽहनम्	वृत्रस्यहन्तारम्	वृत्र के मारने वाले को
सचन्ते	सेवन्ते	सेवन करते हैं
वैश्वानरः	वैश्वानरः	वैश्वानर
दस्युम्	चौरम्	चोर को
अग्निः	अग्निः	अग्नि ने
जघन्वान्	हतवान्	मारा

अधूनीत्	अकम्पयत्	कंपाया
काण्ठाः	दिशः (निघं० ११६)	दिशाओं को
अव	अव+	-
शम्बरम्	शम्बरम्	शम्बर को
भेत्	अव+भेत्, व्यदा- रयत्	चीर डाला

संस्कृतार्थः ।

इदानीम् (अहम्) नरश्रेष्ठस्य महत्त्वं प्रव्रवीमि, वृत्रस्य हन्तारं यं मनुष्याः सेवन्ते, (सः) वैश्वानरोऽग्निः (जलानाम्) चौरं हतवान् दिशोऽकम्पयत्, शम्बरम् (च) व्यदारयत् ॥ ६ ॥

मायार्थः ।

अब मैं नरों में श्रेष्ठ की महिमा का वंशोत्तर करता हूँ, वृत्र के मारने वाले जिस को मनुष्य सेवन करते हैं, (उस) वैश्वानर अग्नि ने (जलों के) चोर को मारा, दिशाओं को कंपाया (और) शम्बर को चीर डाला ॥ ६ ॥

शम्बर भी वृत्र का ही नामान्तर है (देखो निघं० १११०) यही जलों का चोर है, जिस के साथ विघ्न रूप में युद्ध करके मन्त्रिदेव जलों को छुड़ा कर नीचे गिराते हैं ।

वैश्वानरोऽग्निदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ११११११११११॥

वैश्वानरो महिम्ना विश्वक्वष्टि-

भरद्वाजेषु यजती विभावा । शातवने-

ये शतिनीभिरग्निः पुरुणीथे जरते सू-

नृतावान् ॥७॥

वैश्वानरः	वैश्वानरः	वैश्वानर
महिम्ना	महिम्ना	महिमा से
{ विश्वः क्वष्टिः	विश्वेसर्वे क्वष्टयो मनुष्याः यस्यसः	सब मनुष्य जिस के हैं
{ भरतः वाजेषु	भरद्वाजेषु	भरद्वाजों में
यजतः	यज्यः	पजनीय

विभाऽवा	विशेषेण प्रकाश- यिता	खूब प्रकाश करने वाला
शातऽवनेये	शतवनेः पुत्रे	शतवनि के पुत्रमें
शतिनीभिः	शतैः (स्तोत्रैः) (शतशब्दादिनिस्ततो- डीप्)	सैंकड़ों (स्तोत्रों)से
अग्निः	अग्निः	अग्नि
पुरुऽनीथे	पुरुणीथे (राजनि)	पुरुणीथ (राजा)में
जरते	स्तुयते (व्यत्ययेन कर्मणि नर्तृ प्रत्ययः)	स्तुतिकिया जाता है
नुताऽवान्	प्रियसत्यवाण्या- युक्तः	प्यारी और सच्ची वाणी से युक्त

संस्कृतार्थः।

(निज-) महिम्ना सर्वेषां मनुष्याणामधिपतिर्वि-
भरद्वाजेषु यष्टव्यः प्रियसत्यवा
वैश्वानरोऽग्निः शातवनेद्य पुरुणीथस्य कुले
(स्तोत्रैः) स्तुयते ॥ ७ ॥

भाषार्थः।

(अपनी) महिमा से सब मनुष्यों के स्वामी,

खूब प्रकाश करने वाले, भरद्वाजों में पूजनीय, प्यारी और सच्ची वाणी से युक्त वैश्वानर अग्नि, शनवनि के पुत्र (राजा) पुरुणीथ (के कुल) में सैंकड़ों (स्नोत्रों) से स्तुति किये जाते हैं ॥ ७ ॥

भरद्वाजगोत्र और शनवनि के पुत्र राजा पुरुणीथ के कुल में अग्नि की विशेष भक्ति थी ऐसा इस मंत्र से प्रतीत होता है ॥

इत्येकोनषष्टितम सूक्तम् ।

ऋ०मं०१ सू०६० ।

नोधा ऋषिः

विनियोग—यह सक्त प्रातरनुवाक सम्यन्धी आग्नेयभक्त के आश्विन शस्त्र में पढ़ा जाता है (भा०श्रौ० सू० ४।१।१७)

इस में भी अग्नि की स्तुति है। मातरिश्वा अर्थात् धातु ने आर्यों के नेता, यज्ञ के पति और अरणियों से उत्पन्न हुए अग्नि को भृगु के तारों में डाल दिया। मेधावी और हृदि देने वाले, दोनों प्रकार के मनुष्य अग्नि का सेवन करते हैं। यह देवता युवाक से भी प्राचीन, देवहोता, प्रजा के पालक और अन्वेषण करने के योग्य है। जिस अग्नि को मनुष्य ऋत्विज अरणीद्वारा अहा से उत्पन्न करते हैं उसका हमारी यह नवीन स्तुति प्राप्त हो। मनुष्यों में प्रेम रखने वाले पवित्रकारक धनवान और करने योग्य वह अग्नि हमारे घरों में स्थापन किए गए हैं। यह घर में आसक्त मन वाले हैं और हमारे धन के पालन करने वाले हैं। धनों के स्वामी इस अग्नि को घोड़े की न्याईं स्वच्छ करते हुए हम गोतमवशी मंत्रों से स्तुति करते हैं वह शीघ्र प्रातः काल में हमारे पास आवें।

अग्निदेवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११ ।

व॒क्त्रि॒य॒श॒सं॒वि॒दथ॑स्य॒के॒तुं॑ सु॒-

प्रा॒व्यं॑दू॒तं॒सं॒द्यो॑अर्थ॒म् । द्वि॒ज॒न्भा॑नं॒र-

यि॒मि॒व॒प्र॒श॒स्तं॑ रा॒तिं॒भ॒र॒द्भृ॒ग॒वे॒मा-

त॒रि॒श्र॒वा॑ । १ ।

व॒क्त्रि॒म्	ने॒तार॒म्	ने॒ता॒ को
य॒श॒स॒म्	य॒श॒स्वि॒न॒म् (वि॒नो॒त्त॒म्)	य॒श॒स्त्री॒ को
वि॒दथ॑स्य	य॒ज्ञ॒स्य	य॒ज्ञ॒ के
के॒तु॒म्	अधि॒पति॑म् (आ०को०)	स्वामी॒ को
सु॒प्र॒ऽअ॒व्य॑म्	प्र॒कर्ष॑णरक्षितार॒म्	खू॒ब र॒क्षा॒ कर॒ने वा॒ले॒ को
दू॒त॒म्	दू॒त॒म्	दू॒त॒ को

सद्यःऽअर्थम्	तत्क्षणे गन्तारम् (सद्य एव चर्योगन्ता तम्, धर्मैः कर्तारियन्प्रत्ययः)	तत्काल पहुंचने वाले को
{ द्विऽजन्मा नम्	द्वाभ्याम् (अरणि भ्याम्) जायमानम्	दोनों(अरणियों)से उत्पन्न होने वाले को
रयिम्ऽइव	धनमिव	धन की न्याईं
प्रऽशस्तम्	प्रशस्तम्	प्रशंसनीय को
रातिम्	उपहारम्	भेट को
भरत्	अहरत् (दृश्यमत्वमडमावद्त्)	ले गया
भृगवे	भृगवे	भृगु के ताईं
मातरिऽपूवा	मातरिऽश्वा	मातरिऽश्वा

संस्कृतार्थः।

नेतारं यशस्विनं यज्ञस्याऽधिपतिं प्रकर्षेणरक्षितारं
श्रीभ्रगामिनं दूतं द्वाभ्याम् (अरणिभ्याम्)

श्र० मं० १ सू० ६० मं० २ (१५०८)

धनमिव प्रशस्तम् (चाऽग्निम्) मातरिश्वा भृगव-
उपहारमहरत् ॥१॥

भाषार्थः ।

नेता, यशस्वी, यज्ञ के स्वामी शीघ्रगामी, दूत,
दोनों (अरणियों) से उत्पन्न होने वाले (और) धन
की न्याईं प्रशंसनीय (अग्नि) को मातरिश्वा भृगुके
ताईं भेट ले गया । १ ॥

यहां पर आदिमानरिश्वा से तात्पर्य नहीं होसका जिस
का वर्णन पृ० ६९७ में है, परन्तु अन्तरिक्ष में द्वास लेने वाले वायु
से होसका है; वन में वायु के चलने के कारण वांस आदि वृक्षों की
परस्पर रगड़ से अग्नि की उत्पत्ति को देख कर भृगु ऋषि ने
अरणियों में से अग्नि को मथन करके निकाला और उसको देव-
पूजन के लिए स्थापन किया, इसलिये यह कहा गया है कि धन
की न्याईं प्रशंसनीय इस अग्नि को वायु ने भृगुके ताईं भेट किया ।

अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११११११११११

अस्यशासुरुभयासःसचन्ते हवि-
ष्मन्तउग्निजोयेचमर्ताः । दिवश्चि-
त्पूर्वोन्यसादिहीता ऽऽपृच्छयोवि-
प्रपतिर्विचुवेधाः । १२ ।

अस्य .	एतम् (द्वितीयार्धेपठ्ठी)	इसको
शासुः	शासितारम् (द्वितीयार्धेपठ्ठी)	आज्ञा करने वाले को
उभयासः	उभये (असुगागमः)	दोनों
सचन्ते	सेवन्ते	सेवन करते हैं
हविष्मन्तः	हविर्भिर्युक्ताः	हवियोंसे युक्त
उशिजः	मेधाविनः (निघ०।३।१५)	मेधावी
ये	ये	जो
च	च	और
मर्ताः	मनुष्याः	मनुष्य
द्विवः	द्वुलोकात्	द्वुलोक से
चित्	अपि	भी
पूर्वः	पुरातनः	प्राचीन

नि	नि +	-
असादि	नि + असादि, न्यधायि	स्थापन किया गया
होता	होता	होता
आऽपृच्छयः	अन्वेष्टव्यः	खोजने योग्य
विप्रपतिः	प्रजानांपालयिता	प्रजाओंका पालन करने वाला
विक्षु	प्रजासु	प्रजाओं में
वेधाः	विधाता	रचने वाला

संस्कृतार्थः ।

शासितारमेतं (अग्निम्) मेधाविनो हविर्भिर्यु-
काश्चये मनुष्याः (ते) उभये सेवन्ते, द्युलोकादपि
पुरातनः प्रजानां विधाता पालयिता (च) अन्वेष्टव्यः
(सः)होता प्रजासु न्यधायि ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

इस (अग्नि) को मेधावी और जो हवियों से युक्त
मनुष्य (हैं वे) दोनों सेवन करते हैं, द्युलोकसे प्राचीन
प्रजाओं की उत्पत्ति (और) उनका पालन करनेवाले,

अन्वेषण करने योग्य (वह) होता प्रजाओं में स्थापन किये गये हैं ॥ २ ॥

(१) जो मेधायी हैं अर्थात् विद्या में रत हुए २ जो कर्मकाण्ड से निवृत्त होचुके हैं । और जो हविसे पूजन करने वाले हैं वे दोनों प्रकार के मनुष्य आज्ञा करने वाले इस अग्नि का सेवन करते हैं कारण यह है कि उन मेधावियों को धारणाशक्ति भी प्रकाश और ऊष्मा को न्य.ई अग्नि से उत्पन्न होती है ।

यह देवताओं का मनुष्यों पर परम उपकार है कि उन के बीच में ऐसे महान देव स्थापन किए गए हैं, जो द्युलोक से भी प्राचीन हैं, जो देवदेता है, जो प्रजाओं की उत्पत्ति और उनका पालन करते हैं और जो सब से खोजने योग्य हैं ।

अग्निर्देवता त्रिष्टुच्छन्दः । ११११११११११ ।

तं न व्यसीहृद्भ्राजायमान मरुम-

तसुकीर्त्तिर्मधुजिह्वमश्रयाः । यमृत्वि-

जोह्वजनेमानुषासः प्रयस्वन्तश्राय-

वोजीजनन्त । ३ ।

तम्

| तम्

| उसको

नव्यसी	नवीयसी (ईकारलोपश्छान्दसः)	अतिशय करके नवीन
हृदः	हृदयात्	हृदयसे
आ	आ +	-
जायमानम्	जायमानम्	उत्पन्न होते हुए को
अस्मत्	अस्मदीया	हमारी
सुऽकीर्त्तिः	स्तुति	स्तुति
मधुऽजिह्वम्	मधुरजिह्वोपेतम्	मीठी जिह्वा वाले को
अग्र्याः	आ+अग्र्याः, सम्मुखं व्याप्नोत् (विक्रमणस्यलृक्, ष्यत्य येनपरस्मैपदमभ्यमौ)	सम्मुख प्राप्त हो
यम्	यम्	जिसको
ऋत्विजः	ऋत्विजः	ऋत्विजों ने
वृजने	प्राकारे (आ०को०)	घिरे हुए स्थान में

मानुषासः	मनुवंशीयाः	मनुवंशी
प्रयस्वन्तः	(हवीरूप-अन्न- युक्ताः	(हविरूप) अन्नसे युक्त
आयवः	मनुष्याः (निघं०२।३।)	मनुष्यों ने
जीजनन्त	प्रादुष्कृतवन्तः (अडभाषः)	उत्पन्न किया

संस्कृतार्थः ।

हृदयाज्जायमानं मधुरजिह्वोपेतम् (अग्निम्)
अस्मदीया नवतरा स्तुतिराभिमुख्येन प्राप्नोतु, यम्
(हवीरूप-) अन्नयुक्ता मनुवंशीया मनुष्या ऋत्विजः
प्राकारे प्रादुष्कृतवन्तः ॥३॥

भाषार्थः ।

हृदय से उत्पन्न मीठी जिह्वावाले उस (अग्नि)
को हमारी अतिशय करके नवीन स्तुति सम्मुख प्राप्त
हो, जिसको (हविरूप) अन्न से युक्त, मनुवंशी
मनुष्य ऋत्विजों ने घिरे हुए स्थान में उत्पन्न किया
है ॥ ३ ॥

जिस अग्नि को यज्ञों में चटाई का घेरा बना कर ऋत्विजों
ने हृदय से अर्थात् यज्ञ से मथन द्वारा उत्पन्न किया है उसको
हमारी यह अति नवीन सूक्त रूप स्तुति प्राप्त हो ।

अग्निदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ।११।११।११।११।

उ॒शिक्ष॑पा॒व॒को॒व॒सु॒र्मानु॑षे॒ष॒ व॒रे॒ण्यो॑
 हो॒ताऽध्या॑यि॒विक्षु॑ । द॒मू॒ना॒गृ॒ह॒प॒तिर्द॑-
 म॒त्रा अ॒ग्नि॒र्भु॒व॒द्रयि॑पती॒रयी॑याम् ।४।

उ॒शिक्ष॑

कामयमानः

कामना करता

हुआ

पा॒व॒कः

पावकः

पवित्र करने वाला

व॒सु

धनवान्
(भा०को०)

धनवान

मा॒नु॒षे॒षु

मनुष्येषु

मनुष्यों में

व॒रे॒ण्यः

वरणीयः

वरने योग्य

हो॒ता

होना

होता

अ॒ध्या॒यि

स्थापितोऽभूत्

स्थापन किया गया

वि॒क्षु	प्रजासु	प्रजाओं में
१ द॒म॒नाः	गृहासक्तमनाः (निघ०४।१)	घरमें आसक्त मन वाला
गृ॒हऽप॒तिः	गृहाणांपालयिता	घरों की रक्षा करने वाला
द॒मे	गृहे	घर में
आ	आ +	-
अ॒ग्निः	अग्निः	अग्नि
भ॒व॒त्	आ+भुवत्, भवतु (लेटिरूपम्)	हो
र॒यिऽप॒तिः	धनपालकः	धन पालक
र॒यी॒णाम्	धनानाम्	धनों का

सस्यतार्थः ।

मनुष्येषु कामयमानिः पावको धनवान् (अग्निः)
प्रजासुवरणीयो होता स्थापितोऽभूत्, गृहासक्तमना
गृहाणां पालयिता (सोऽस्मद्-) गृहे धनानां पालको
भवतु ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

मनुष्यों में कामना करने वाले, पवित्रकारी, (और) धनवान, (अग्नि) प्रजाओं में धरने योग्य होता स्थापन किये गये हैं, घर में आसक्त मन वाले घरों की रक्षा करने वाले (वह हमारे) घर में धनों के पालक हों ॥४॥

(१) अग्निदेव घर में मोह रखने वाले हैं इसलिए घर में मोह रखना देवगुण होने से प्रशंसनीय है ।

अग्निदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ॥१११११११११॥

तंत्वावयंपतिमग्नेरयीणां प्रशंसा-
मोमतिभिर्गीतमासः । आशुंनवाजं-
भरंमर्जयन्तः प्रातर्मक्षुधियावसुर्ज-
गम्यात् ॥५॥

तम्

तम्

उसको

त्वा

त्वाम्

तुझ को

वयम्

वयम्

हम

पतिम्	स्वामिनम्	स्वामी को
अग्ने	हे अग्ने !	हे अग्नि
रथीणाम्	धनानाम्	धनों के
प्र	प्र +	-
शंसामः	प्र + शंसामः	प्रशंसा करते हैं
मतिऽभिः	मननीयैः (स्तोत्रैः)	स्तोत्रों से
१ गोतमासः	गोतमवंशीयाः (जसोऽनुगागमः)	गोतमवंशी
आशुम्	अश्वम् (निघ० ११४)	घोड़े को
न	इस	जैसे
वाजम्ऽभरम्	(हवीरूप) अन्न- स्य वोढारम्	(हविरूप) अन्न के ढोनेवाले को
२ मर्जयन्तः	मार्जयन्तः (वृद्धमायः)	मार्जन करते हुए
प्रातः	प्रातः	प्रातः काल में

म॒क्षुः	शीघ्र॑म्	शीघ्र॑
धियाऽव॑सुः	ध्या॑नेन धनवान्	ध्यान॑ द्वारा धन वाला
जग॑म्यात्	आगच्छ॑तु (गमेलिङि शप.श्लु- इजान्दसः)	आवे

संस्कृतार्थः ।

हे अग्ने ! गोतमवंशीया वयं धनानां स्वामिनम्
(हवीरूप-) अन्नस्य वोढारम् (च) तं त्वामश्वमिव
मार्जयन्तः स्तोत्रैः प्रशंसामः, ध्यानेन धनवान् (स भ-
वान्) शीघ्रं प्रातरागच्छतु ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

हे अग्नि! गोतमवंशी हम धनों के स्वामी (और
हविरूप-) अन्न के ढोने वाले उस आप को घोड़े की
न्याईं मार्जन करते हुए स्तोत्रों से प्रशंसा करते हैं
ध्यान द्वारा धन वाले (वह आप) शीघ्र प्रातःकाल
में आवें ॥५॥

(१) नोधा ऋषि गोतमवंशी है।

(२) जिस प्रकार घोड़े को मार लादने से पहले रगड कर
पोंछते हैं इसी प्रकार हवि देने से पहले यज्ञ में अग्नि का सम्मार्जन
करते हैं ॥

इतिषण्डितमं सूक्तम् ।

ऋ० सं० ३१-३२ अङ्कयोः शुद्धयशुद्धिपत्रम्

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१३३३	५	भष्टि	भृष्टि	१३८६	१०	दान	दानु
१३४०	१३	पालक	पानकः	॥	१०	(शिवसुद्धी)	(शिवसुद्धी)
१३४८	४	वाजभिः	वाजेभिः	१३८२	१३	चमसः	चमसाः
१३५१	१४	सि	सिये	१३८३	१६	सेष्व-	सेष्व
१३५२	०	ज्जादसः)	दकान्दसः	१३८४	४	कसुष्व	कुरुष्व
॥	१३	ज्जादसः)	दकान्दसः)	१३८५	१२	इन्द्र	इन्द्र ने
१३५४	८	पुरा	पुरा	॥	१३	(अपःनद	अपः(नद
१३५७	१४	लुक्)	लुक्)	१३८६	१२	जलाना	जलाना
१३६०	३	रचिताः	रचिता	१३८७	५	वह	तह
१३७५	३	गुण्यं	गुण्यं	१३८८	५	द्युम्नम्	द्युम्नम्
१३७७	२१	इव	इव	१३८९	६	०की०)	(घा०की०)
१३७८	१३	(मन्वेष्टि	(मन्वेष्टि	१४०२	१५	आस्तपः	आस्तपः
१३७९	१४	अयनिम्	अयनिम्	१४०३	२	मिथीते	मिथीति
॥	१६	प्रतन्यसि	प्रतन्यसि	१४०५	१२	सुनात	सुनात्
१३८२	१२	(वचनोति)	(वचनाति)	१४१६	२	लाप	लापी
				॥	१६	यष्ट	यष्टे

विज्ञापन ।

अंक ३५-३६ के साथ तीसरा साल पूरा हो जायगा जिन ग्राहकों का इस सालका चन्दा नहीं आया है उनकी सेवा में अंक ३५, ३६ वी०पी० द्वारा भेजा जायगा, जो पंडित लोग चौथे सालके लिये स्वाध्याय करना अंगीकार करें वे भी कृपा करके सूचना दें जिससे उनका नाम रजिस्टरमें लिखा जावे ॥

पुस्तक मिलने का पता—

मुन्शी जयराम, मैनेजर

ऋग्वेद संहिता मुलतान

अंक ३५-३६] : [श्रावण भाद्रपद १९६६]

ऋग्वेद संहिता

(वैदिकजीवनभाष्ययुता)

पदपाठ, शब्दार्थ, संस्कृत और भाषा अनुवाद
टिप्पणी और मन्त्रों के आशय पर
व्याख्यान से युक्त

जिसको मुल्तान निवासी प० शङ्करदत्त
शास्त्री की सहायता से शिवनाथ
आहिताग्नि ने सम्पादन किया

लाहौर

पञ्जाब एकादमीकल यन्त्रालय में प्रिण्टर खाला,
खालमन के अधिकार से छपा ।

१२ अंशों का अग्रिम मूल्य २)

पड़ले २४ अंशों का मूल्य ५।)

ऋषि को डूबने से बचाया, शीघ्रकारी इन्द्रके प्राचीन कर्मोंको नए स्तोत्रोंसे खूब कथन करना चाहिये जिससे वह हमारे शत्रुओंको खूब पीडित करें, मेधावी इन्द्रके रक्षण सामर्थ्य को बार बार कथन करने से तत्काल बल प्राप्त होता है जैसे नोधा ऋषि को हुआ, आर्य्य राजा स्वयं के सूर्य्य नामी पुत्र से स्पर्धा करने वाले एतश ऋषि की इन्द्र ने रक्षा की, गोतमवंशी इस प्रकार आकर्षण करने वाले मन्त्रों से इन्द्र की खूब स्तुति करते थे, उन्हींमें नोधा ऋषि एक थे।

इन्द्रो देवता निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः।११।११।११।१०

अस्माद्दुप्रतवसेतुराय प्रयोन-
हर्मिस्तोममाहिनाय । ऋचीषमा-
याऽधिगवञ्चिह मिन्द्रायब्रह्माणि-
राततमा ।१।

अस्मै	अस्मै	इसके लिये
इत्	(पूरणः)	-
ऊम्०	(पूरणः)	-
प्र	प्र+	-

तवसे	प्रवृद्धाय	बढे हुए के लिये
तुराय	स्वर्गमाणाय तुरस्वरणे)	शीघ्रकारीके लिये
प्रयः	अन्नम् (भा०को०)	अन्न
न	इव	की न्याई
हृर्मि	प्र + हर्मिन्, समर्प याम	अर्पण करता हूं
स्तोमम्	स्तोत्रम्	स्तोत्र को
माहिनाय	पूजनीयाय (महतेरिण् प्रत्ययः)	पूजनीय के लिये
ऋचीषमाय	ऋचासमाय, म- न्त्रोक्तगुणशालिन इत्यर्थः (निघं०४३)	मन्त्रोक्त गुण वाले के लिए
अधिऽगवे	अधुनगमनाय	न रोके जानेवाले के लिये
ओहम्	वहनीयम् (वहतेर्घञिसम्प्रसारणं छान्दसम्)	अर्पण करने योग्य को

इन्द्राय	इन्द्राय	इन्द्र के लिये
ब्रह्माणि	हवींषि (ब्रह्मोत्पन्ननाम निघं०२(७))	हवियों को
रातऽतमा	अतिशयेन दत्तानि (श्लो०५ः)	अतिशय करके दिये हुआं को

सस्कृतार्थः ।

(अहम्) प्रवृद्धाय, त्वरमाणाय, पूजनीयाय, मन्त्रोक्तगुणशालिनेऽप्रतिहतगमनायाऽस्माद्यिन्द्रायाऽन्नमिव वहनीयं स्तोत्रमतिशयेन दत्तानि हवींषि(च) समर्पयामि ॥१॥

भाषार्थः ।

मैं बड़े हुए, शीघ्रकारी, पूजनीय, मन्त्रोक्तगुण वाले, किसी से न रोके जाने वाले इस इन्द्रके लिये अन्न की न्याईं अर्पण करने योग्य स्तोत्र को (और) अतिशय करके दी हुई हवियों को अर्पण करता हूँ ॥१॥

(१) गोष्पाकृषि इन्द्र के ताई स्तोत्र अर्पण करते हैं जैसे कोई घर पर भाए हुए मिश्र को भन्न अर्पण करता है ॥

इन्द्रोदेवतात्रिष्टुच्छन्दः । ११।११।११।११।

अस्माद्दुप्रयद्भवप्रयंसि भराभ्या-
ङ्गुपंवाधेसुवृत्ति । इन्द्रायहृदामनसा-
मनीषा प्रतनायपत्येधियोमर्जयन्त

॥२॥

अस्मै	अस्मै	इसके लिये
इत्	(पूरणः)	-
ऊम्०	(पूरणः)	-
प्रयःऽद्भव	अन्नमिव	अन्न का न्याई
प्र	प्र+	-
यंसि	प्र + यंसि, प्रय- च्छामि (पुरुषव्यत्ययः)	मैं देता हूँ
भरामि	प्रापयामि	पहुँचाता हूँ

आङ्गुष्पम्

बाधे

सुष्ठुक्ति

इन्द्राय

हृदा

मनसा

मनीषा

प्रतनाय

पत्ये

धियः

मर्जयन्त

आघोषम्

(निघं०४।२)

(शत्रूणाम्)

बाधनाय

(भावे केन प्रत्ययः।)

सुष्ठुवाकर्षं रुम्

इन्द्राय

हृदयेन

मनसा

मनीषया

(सुषामितिवृत्तीयाया-
डादेशः।)

पुरातनाय

स्वामिने

स्तुतीः

(भा०फो०)

सज्जी कृतवन्तः

(भा०फो०)

नाद को

(शत्रुओं को)

र्षाडिन करन के
लिये

खूब आंकर्षण
करने वाले को

इन्द्र के लिये

हृदय से

मन से

बुद्धि से

प्राचीन के लिए

स्वामी के लिए

स्तुतियों को

सजाया है

संस्कृतार्थः ।

(अहम्) अस्मै (इन्द्राय) अन्नमिव (स्तोत्रम्)
 प्रयच्छामि [शत्रूगाम्] बाधनाय सुष्ठ्वाकर्षकं
 आघोषम् (च) प्रापयामि (ऋषयः) प्राचीनाय स्वामिन
 इन्द्राय हृदयेन मनसा मनीषया (च) स्तुतीः सज्जी-
 कृतवन्तः ॥ २ ॥

भाषार्थ ।

मैं इस (इन्द्र) के ताई अन्न की न्याई
 (स्तोत्रको) देता हूँ (और) [शत्रुओं को] पीड़ित करने
 के लिए खूब आकर्षण करने वाले नाद को पहुँचाता हूँ
 (ऋषयों ने) प्राचीन स्वामी इन्द्र के लिये हृदय से
 मनसे (और) वृद्धिसे स्तुतियों को सजाया है ॥ २ ॥

इन्द्रको हमारा स्तोत्र ऐसा प्रिय हो जैसे मित्र को मित्र का अन्न,
 इन्द्र के समीप खूब आकर्षण करने वाले स्तोत्र का उच्च शक्ति
 पहुँचानो चाहिये ।

इन्द्रो देवता विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । ११ । १० । १० । ११ ।

अस्माद्दुत्यम्पमंस्वर्षा भराभ्या-
 ङ्गुषमास्येन । मंहिष्ठमच्छोक्ति-

भिर्मतीनां सुवृत्तिभिः सूरिंवावृध-

ध्यै । ३ ।

अस्मै	अस्मै	इस के लिए
इत्	(पूरणः)	-
ऊम्०	(पूरणः)	-
त्यम्	तम्	उस को
उपऽमस्	उपमेयम्	उपमा के योग्य को
स्वऽसाम्	स्वर्गस्य दातारम् (पण्डाने, अनुनासिक- स्थाऽऽत्वम्)	स्वर्ग के देने वाले को
भरामि	प्रापयामि	में पहुंचाता हूं
आङ्गूषम्	आघोषम्	नाद को
आस्येन	मुखेन	मुख से
मंहिष्ठम्	अनिशयेन प्रवृद्धम्	बहुत बढ़े हुए को

अच्छोक्तिः	स्वच्छैर्वचोभिः	पवित्र वचनों से
ऽभिः		
मतीनाम्	स्तुतीनाम् (मा०फो०)	स्तुतियों के
सहक्तिऽभिः	सुष्ट्वाकर्षकैः	खूब आकर्षण करने वालोंसे
सूरिम्	विपश्चितम्	विद्वान को
बहुधै	पुनःपुनर्वर्ध- यितुम्	बारंबार बढ़ाने के लिये

संस्कृतार्थः ।

(अहम्) अतिशयेन प्रवृद्धं विपश्चितम् (इन्द्रम्)
सुष्ट्वाकर्षकैः स्तुतिनांस्वच्छैर्वचोभिःपुनःपुनर्वर्धयि-
तुमस्मा उपमेयं स्वर्गस्य दानारं तमाघोषं मुखेन
प्रापयामि । ३ ।

भाषार्थः ।

मैं बहुत बड़े हुए वृद्धिमान (इन्द्र) को खूब
आकर्षण करने वाले स्तुतियों के पवित्र वचनों से
बारंबार बढ़ानेके लिये उनके ताई उपमाके योग्य(और)
स्वर्गके देने वाले उस नादको मुखसे पहुंचाता हूं । ३ ।

“उस नाद को” जिसका पिछले मंत्र में कथन है ।

सं० मं०१ सू०६१ मं०४ (११२८)

इन्द्रो देवता विराट् त्रिष्टुप्छन्दः।१०।११।१०।११।

अस्माद्दुस्तीमसंहिनोमि रथं-

नतष्टेवततिसनाय। गिरप्रचगिवाह-

सेसुवृत्तीन्द्रायविप्रवमिन्वंमेधिराय

॥४॥

अस्मै	अस्मे	इस के ताई
द्वत्	(पूरणः)	-
ऊम्०	(पूरणः)	-
स्तोमम्	स्तोत्रम्	स्तोत्र को
सम्	सम् +	-
हिनोमि	सम् + हिनोमि. प्रेरयामि	प्रेरण करता हूँ
रथः	रथम्	रथ को

न-	इव	जैसे
तष्टाऽइव	(रथ) निर्मातेव	रथ बनाने वाले की न्याई
तत्सिनाय	तेन(रथेन)सिनम् अन्नंयस्य तस्मै रथिने (सिनमित्यन्तनाम निघं०२।७)	रथवान के ताई
गिरः	स्तुतीः	स्तुतियोंको
च	च	और
गिर्वाहसे	स्तुतिभिरुद्यमा- नाय	स्तुतियों से प्राप्त होन वाले के ताई
सुऽवृत्ति	सुष्ठ्वाकर्षकम्	खूब आकर्षण करने वाले को
इन्द्राय	इन्द्राय	इन्द्र के ताई
{ विप्रवम्	सर्वस्य चालकम् (लुगमायश्छान्दसः)	सब के हिलाने वाले को
{ इन्वम्		

मेधिराय | मेधाविने | मेधावी के ताई
(मत्वर्थीयइरन् प्रत्ययः)

संस्कृतार्थ ।

(अहम्)मेधाविन अस्मायिन्द्राय सुष्ठ्वाकर्षकं सर्वस्यचोलकं स्तेत्रं रथनिर्मातेव रथिनेरथमिव प्रेरयामि स्तुतिभिरुह्यमानाय स्तुतीः (च प्रापयामि)॥४॥

भाषार्थः ।

मैं इस मेधावी इन्द्र के ताई खूब आकर्षण करने वाले सबको हिलानेवाले स्तेत्रको प्रेरण करता हूँ जैसे रथकार रथवान के लिये रथ को (बनाता है और) स्तुतियों से प्राप्त होने वालेकेताई में स्तुतियों को (पहुंचाना हूँ) ॥ ४ ॥

(१) जैसे रथ बनाने वाला रथवान के लिये रथ बना कर देता है वैसे मेधा ऋषि इन्द्रके लिये स्तोत्र को देते हैं ।

(२) स्तुति सब को हिलाने वाली है देवता मनुष्य पशु वृक्ष सब को ।

इन्द्रोदेवता निचृत्रिष्टुष्टुन्दः ।११।११।११।१०।

अस्माद्दुसप्तमिवश्रवस्येन्द्रा-

या॒र्कै॒ जु॒ह्वा॒श्च॒स॒म॒ञ्जे । वी॒रं॒दा॒नौ॒क-
सं॒व॒न्द॒ध॒यै॑ पु॒रां॒गु॒र्त॒श्च॒व॒सं॒द॒स्मा॒गा॒मा॒शु॒ ।

अ॒स्मै	अस्मै	इसके ताई
इ॒त्	(पूरणः)	-
ऊ॒म्०	(पूरणः)	-
{ स॒प्ति॒म् ऽइ॒व	अश्वमिव (निघं० १।१४)	घोड़े की न्याई
अ॒व॒स्या	यशइच्छया (तृतीयायाद्वादेशः)	यश की इच्छा से
इ॒न्द्रा॒य	इन्द्राय	इन्द्र के ताई
अ॒र्क॒म्	ऋच्यतेस्तृयते येन तम् (स्तोत्रम्)	स्तोत्र को
जु॒ह्वा	आह्वानसाधन रूपया (जिह्वया)	जिह्वा से

सम्	सम्	मे सजाता हं
अञ्जे	सम् + अञ्जे प्रसाधयामि (हपरस्येनाऽऽन्मनेपद्म)	
वीरम्	वीरम्	वीर को
{ दानऽत्रो- कसम्	दानस्य गृहम्, मूलम्	दान के मूल को
वन्दध्वै	वन्दितुम्	पूजने के लिए
पुरासं	पुराणाम्	गदों के
गूर्तऽश्रवसेम्	गूर्तगेयंश्रवोय- शोयस्यतम्	गान करने योग्य यश वाले को
दुर्माणम्	विदारयितारम्	तोड़ने वाले को

संस्कृतार्थः ।

(अहम्)पुराणां विदारयितारं दानस्य मूलं गेय-

यशसं, वीरं वन्दितुं यश इच्छयाऽस्मायिन्द्रायाऽश्व-
मिव स्तोत्र जिह्वया प्रसाधयामि ॥५॥

भाषार्थ ।

मैं गहों के तोड़ने वाले, दान के मूल, गान करने योग्य यशवाले वीर को पूजने के लिये यश की इच्छा से इन्द्र के निमित्त घोड़े की न्याईं स्तोत्र को जिह्वा द्वारा सजाता हूँ । ५।

जिस प्रकार मनुष्य यश की इच्छा से घोड़े को सजाते हैं वैसे बोधा ऋषि इन्द्र के लिये स्तोत्र को सजाते हैं ॥

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११।११।११।११।

अस्माद्दुत्वष्टातक्षद्वजं स्वप-
स्तमं स्वर्थं शरणाय । वृत्रस्य चिद्विद
द्ये नमस्मै तु जन्नीशानस्तु जताकि-
ये धाः । ६।

अस्मै ।

अस्मै

इसके लिये

इत्	(पूरणः)	-
ऊम्	(पूरणः)	-
त्वष्टा	त्वष्टा	त्वष्टा ने
तच्चत्	रचितवान् (भङ्मायः)	रचा
वज्रम्	वज्रम्	वज्र को
स्वपःऽतमम्	अतिशयेनकर्म- क्षमम् (अपरातिकर्मनाम निघं० २।१)	अत्यन्त कार्य साधक को
स्वर्थम्	शब्दनीयम् (स्वृशब्दे)	शब्द करने योग्य को
रणाय	युद्धाय	युद्ध के लिये
वृत्रस्य	वृत्रस्य	वृत्र के
चित्	अपि	भी
विदत्	लब्धवान् (भङ्मायः)	प्राप्त किया

येन	येन	जिस से
मर्म	मर्मस्थानम्	जीवनके स्थानको
तुजन्	प्रहरन्	मारता हुआ
ईशानः	ऐश्वर्यवान्	ऐश्वर्य से युक्त
तुजता	हनन साधनेन	मारनेके साधनसे
कियेधाः	कियतः, अनव- धृतपरिमाणस्य [बलस्य] धाः, धारकः	अमित (बल) के धारण करने वाले ने

संस्कृतार्थः ।

त्वष्टा ऽस्मै (इन्द्राय) अनिशयेन कर्मक्षमं शब्दे-
नीयं वज्रं युद्धार्थं रचितवान् हनन साधनेन येन प्रहर-
न् ऐश्वर्यवानमित्तबलः (इन्द्रः) वृत्रस्य मर्मस्थानं
लब्धवान् ॥ ६ ॥

भाषार्थः ।

त्वष्टाने इस (इन्द्र के) लिये अत्यन्त कार्य साधक
शब्द करने योग्य वज्र को युद्ध के निमित्त घड़ा, मारने
के साधन रूप जिससे मारते हुए, ऐश्वर्य से युक्त,

आ० मं० १ सू० ६१ मं० ७ (१५३६)

अमित बल वाले (इन्द्र ने) वृत्र के मर्म स्थान को प्राप्त किया ॥ ६ ॥

“मर्म स्थान को प्राप्त किया” अर्थात् मर्म स्थान में मारा ।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११ ॥

अस्येदुमातुःसवनेषुसद्यो महः-

पितुंपपिवाञ्चार्वन्ना । मुषायद्वि-

ष्णुःपचतंसहीयान् विध्यद्वराहं-

तिरोअद्रिमस्ता । ७ ।

अस्य

अस्य

इसके

द्वत्

(पूरणः)

-

ऊम्

(पूरणः)

-

मातुः

मातुः

माता के

सवनेषु

सोमोत्सवेषु

सोमके उत्सवों में

सद्यः	सद्यः	तत्काल
महः	यज्ञस्य (आ०को०) (क्विप्प्रत्ययः)	यज्ञ के
पितुम्	अन्नम् (निघ० २।७)	अन्न को
पपिऽवान्	पीतवान्	पीया
चारु	रुच्यानि (शेसोपः)	रुचि करने वालों को
अन्ना	अन्नानि (शेसोपः)	अन्नों को
मुषायत्	अपहरन्	लूटता हुआ
विष्णाः	सर्वव्यापकः (वेवेष्टिव्याप्नोतीति, विष्लव्याप्तौ)	सर्व व्यापक
पचतम्	पक्वम् (चरुम्)	पके हुए (चरु) को
सहीयान्	महाबलः	महाबली
विध्यत्	वेधितवान् (व्यधताडने, अडभाषः)	धींधदिया

वराहम्

तिरः

अद्रिम्

अस्ता

वृत्रम्

(निघं०१।१०)

तिरः+

तिरः + अद्रिम्

पर्वतान्तरितम्

अस्त्रक्षेपकः

(असु क्षेपणे)

वृत्र को

-

पर्वत के बीच में से

अस्त्र चलाने
वाला

संस्कृतार्थः ।

सर्वव्यापको महाबलः (इन्द्रः) स्वमातुः सवनेषु रुच्यान्यन्नानि पक्वम् (चरुम्) (च)अपहरन्(सोम-रूपम्) यज्ञस्यान्नं सद्यः पीतवान् (पुनः)अस्त्र क्षेपकः (सः) पर्वतान्तरितं वृत्रं वेधितवान् ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

सर्वव्यापी महाबली (इन्द्र) अपनी माता के सवनों में रुचिकारी अन्नों (और) पके हुए (चरु) को लूटते हुए (सोम रूपी) यज्ञ के अन्न को तत्काल पी गए, (फिर उस) अस्त्र चलाने वाले ने पर्वत के बीच में से वृत्र को बाँध दिया ॥ ७ ॥

इन्द्र की माता भद्रिती (Infinite nature) हैं, जब भद्रिती ने यह यज्ञ रचा कि जिस से इस पृथिवी पर जल बरस कर समुद्र बने तो इन्द्र अपना बल बढ़ाने के लिये वर्षा की सामग्री रूप हवियों को लूट खसोट कर खा गए और तत्काल अर्थात् सवन से पहले ही सोम को पोगए, फिर प्राप्त बल इन्द्र ने काली घटा रूपी पर्वत के बीच में से धूलि कण रूपी वृत्र को बाँध दिया, और पृथिवी पर बरसने के लिए जलों को छुड़ाया।

इन्द्रोदेवता निचृत्त्रिष्टुप्लन्दः । १०।११।११।११

अस्माद्गुनाग्निचह्वेवपत्नी रि-
न्द्रायाऽकर्महिहत्यजवुः । परिद्या-
वापृथिवीजभ्रउर्वी नाऽस्यतेमहि-
मानंपरिष्टः । ८ ।

अस्मै	अस्मै	इस के लिये
इत्	(पूरण)	-
ऊम्०	(पूरणः)	-

गनाः	वाणीरूपाः	वाणी रूप
चित्	(निघं० १।११) अपि	भी
देवऽपत्नीः	देवपत्न्यः (प्रथमः, द्वितीया)	देव पत्नियों ने
इन्द्राय	इन्द्राय	इन्द्र के लिये
अर्कम्	स्तोत्रम्	स्तोत्र को
अहिऽहत्ये	वृत्रहनन(काले) (लिङ्गव्यत्ययश्छान्दसः)	वृत्रके मारने के (समय)
ऊवुः०	ऊवुः (घेम्तन्तुसन्ताने)	बुना
परि	परि +	-
{ द्यावा { पृथिवी०	द्यावापृथिव्यौ	द्युलोक (और) पृथिवी को
२ जम्भ्रे	परि+जम्भ्रे, परि- जहार, अति- चक्रामेत्यर्थः (ङ्ङम्हरणे लिटिरूपम्)	आगे निकल गया

उर्वी०	विस्तृते	विस्तार वालियों को
न	न	नहीं
अस्य	अस्य	इसकी
ते०	ते	वे दोनों
महिमानम्	महिमानम्	महिमा को
परि	परि+	-
स्तः०	परि+स्तः, परिभवतः	उल्लंघन करतीहैं

सस्कृतार्थः ।

वाणीरूपा अपि देवपत्न्यो वृत्रस्य हनन(काले)
अस्मायिन्द्राय स्तोत्रमूवुः (सच स्तुनइन्द्रः) द्यावा-
पृथिव्यावतिचक्राम ते (च) अस्य महिमानं न परि-
भवतः ॥ ८ ॥

भाषार्थः ।

वाणी रूप देवपत्नियों ने भी वृत्र के बध के
(समय) इस इन्द्र के लिए स्तोत्र का वुना, (स्तुति
किये गए वह इन्द्र)विस्तार वाले द्युलोक (और)पृथिवी

क्र० सं० १, सू० ११ सं० ९ (१५४२)

से भी आगे निकल गए (और) वे दोनों इसकी महिमा को उल्लंघन नहीं करते ॥ ८ ॥

(१) गायत्री आदि छन्द वाणी रूपी देव पत्नियाँ हैं, जिन्होंने ने वृत्र के वध के समय इन्द्र के लिये स्तोत्र को युना जैसे स्त्रियाँ सूरमा के लिये फूलों का हार बुनती हैं। १।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११।११।११।११।

अस्येदेवप्ररिचिमहित्वं दिव-
स्पृथिव्याः पठर्यन्तरिक्षात् । स्व-
राळिन्द्रोदमआविश्वगूर्तः स्वरिर-
मत्रोववक्षेरगाय । ९।

अस्य	अस्य	इस की
इत्	(पूरणः)	--
एव	खलु	सचमुच
प्र	प्र +	--

रि॒रि॒चे

प्र + रि॒रि॒चे, वृ॒ध्ने

बढी

म॒हि॒ऽत्त्वम्

महत्त्वम्

माहिमा

दि॒वः

द्यु॒लोकात्

द्युलोक से

पृ॒थि॒व्याः

पृथि॒व्याः

पृथिवी से

परि॑

अ॒ति॒शयेन

अतिशय करके

अ॒न्त॒रि॒क्षात्

अ॒न्त॒रि॒क्षात्

अन्तरिक्ष से

स्व॒ऽरा॒ट्

स्वतो॒राज॒मानः

स्वयं प्रकाशमान

इ॒न्द्रः

इन्द्रः

इन्द्र

द॒मे

गृ॒हे

घर में

आ

अ +

वि॒प्र॒व॒ऽगू॒र्तः

सर्व॑ प्रियः

सब को प्रिय

सु॒ऽअ॒रिः

शोभन॑ शत्रुकः

बलवान॑ शत्रु

रखने वाला

असन्नः ववक्षे	मात्रया-इयत्तया रहितः आ+ववक्षे, महत्त्वं प्राप्तवान् (पवक्षियेति महन्नाम निघं० ३।१)	असीम महत्त्व को प्राप्त हुआ
रणाय	युद्धाय	युद्ध के लिए

ससृष्टार्यः ।

अस्य खलु (इन्द्रस्य) महत्त्वं द्युलोकात्पृथिव्या
अन्तरिक्षात् (च) अतिशयेन ववृधे, स्वतोराजमानः
सर्व प्रियः शोभनशत्रुक इयत्तारहित इन्द्रो युद्धार्थं एहे
महत्त्वं प्राप्तवान् ॥ ९ ॥

भाषार्थः ।

सचमुच इस (इन्द्र) की महिमा द्युलोक, पृथिवी,
(और) अन्तरिक्ष से अत्यन्त बढ़ गई स्वयं प्रकाश-
मान, सब को प्रिय, बलवानशत्रु रखने वाले असीम
इन्द्र युद्ध के लिये घर में वृद्धि को प्राप्त हुए ॥ ९ ॥

बलवान शत्रु को जीतने के लिए युद्धसे पहिले अपने घर में
वृद्धि को प्राप्त होना चाहिये ॥

इन्द्रोदेवता विराट्स्थाना छन्द १०।१०।१०।१०।

अस्येदेवशवसाशुषन्तं विवृचद्

वज्रेणावृचमिन्द्रः । गानवाणाअवनीर-

मुञ्च द्भिश्चवोदावनेसचेताः ॥१०॥

अस्य	अस्य (इन्द्रस्य)	इस (इन्द्र) के
इत्	(पूरणः)	-
एव	खलु	सचमुच
शवसा	बलेन	बलसे
शुषन्तम्	शुष्यन्तम्	क्षीण होते हुए को
वि	वि +	-
वृचत्	वि + वृचत्, संछेदितवान्	खूब छिन्न भिन्न किया
वज्रेणा	वज्रेण	वज्र से

वृचम्	वृत्रम्	वृत्रको
इन्द्रः	इन्द्रः	इन्द्र ने
गाः	गाः	गौओंको
न	इव	जैसे
व्राणाः	आवृताः	रोकी हुईओं को
अवनीः	नदीः (निघ० १।१३)	नदियों को
अमुञ्चत्	मोचितवान्	छोड़ा
अभि	प्रति	की ओर
श्रवः	यशः	यश को
दावने	प्रदानाय (निघ ४।२)	दान के लिये
सऽचेताः	दत्तचित्तः	दत्तचित्त

सस्यतार्थः ।

अस्य (इन्द्रस्य) ऋषेण वलेन शुष्यन्तं वृत्रं इन्द्रो वज्रैण सऽपेदितवान्, (सऽव) यशः प्रति दानाय (च) दत्तचित्तः

(सन) (वृत्रेण) आवृता नदीः (चौरैरपहृताः) गाइव
मोचितवान् ॥१०॥

भाषार्थः ।

इन्द्र ने सचमुच अपने (अर्थात् इन्द्र के) बल से
क्षीण होते हुए वृत्र को वज्र द्वारा खूब छिन्न भिन्न
किया, यज्ञ के प्रति (और) दान के लिये दत्तचित्त
हुए २ (उन्होंने वृत्र से रोकी हुई नदियों को (चोर
से हरण की हुई) गौओं की न्याईं छुड़ा दिया ॥१०॥

(१) नदियों को अर्थात् जलों को जो वृत्र से छूट कर पृथिवी
पर नदी रूप से बहते हैं ।

इन्द्रोदेवता विराट्त्रिष्टुप् छन्दः ॥११॥१०॥११॥१०॥

अस्येदुत्वेषसारन्तसिन्धवः परि-

यइज्जासोमयच्छत् । ईशानकहाशु-

षेदशस्यं तुर्वीतयेगाधंतुर्वणिःकः ॥११॥

अस्य	अस्य	इसके
इत्	(पूरणः)	-

ऊम्०	(पूरणः)	-
त्वेषसा	दीप्त्या	दीप्ति से
रन्त	अरमन्त (रमुक्तीडायां,अडभावः, धातोरन्त्यलोपश्च च्छान्दसः)	रमण किया है
सिन्धवः	नद्यः (निघ० १।१३)	नदियों ने
परि	परि+	-
यत्	यतः	क्योंकि
वज्र॑ण	वज्रेण	वज्र द्वारा
सीम्	(पूरणः)	-
अयच्छत्	परि+अयच्छत् परिगतवान्	घेर लिया
ईशानऽकृत्	यः (शत्रुवधेनाऽऽ त्मानम्) ऐश्वर्य्य वन्तं करोति	ऐश्वर्य्य वाला
दाशुषे	(हविः) दत्तवते	(हवि) देने वाले के ताई

दशस्यन्	प्रयच्छन्	देता हुआ
तुर्वीतये	तुर्वीतये	तुर्वीति के लिये
गाधम्	तरणयोग्यं स्थानम्	पार उतरने के स्थान को
तुर्वणिः	शीघ्रकारी (निघं० ४।३)	शीघ्रकारी
कः०	अकार्षीत् (करोतेर्लुङि चलेर्लुक्, त लोपः, मडभावश्च)	बनाया

संस्कृतार्थः ।

अस्य (इन्द्रस्य) दीप्त्या नद्योऽरमन्त, यतः (अय-
मेताः) वज्रेण परिगतवान्, सः) शीघ्रकार्यैश्चर्यवान्
(इन्द्रः, हविः) दत्तवते (धनम्) प्रयच्छन् तुर्वीतये तरण
स्थानमकार्षीत् ॥ ११ ॥

भाषार्थः ।

इस (इन्द्र) की दीप्ति से नदियों ने रमण
किया है क्योंकि (इसने इनको) वज्र से घेर लिया,
(हवि) देने वाले के ताई (धन को) देते हुए शीघ्रकारी
ऐश्वर्यवान (इन्द्र ने) तुर्वीति के लिए पार उतरने के
योग्य स्थान को बनाया ॥ ११ ॥

तूर्धाति श्रुपि किसी नदी में डूबने लगे थे, उस समय इन्होंने इन्द्र का स्मरण किया तो इन्द्र ने पार उतरने को योग्य छोड़े, जल के स्थान में पहुँचा कर इनकी रक्षा की ॥

इन्द्रोदेवता निचृत्त्रिष्टुप्लन्दः ।११।११।१०।११

अस्माद्दुप्रभरातूतुजानो हत्राय-

वज्रमोशानःकियेधाः । गोर्नपर्वत्रिर-

दातिरप्रचे ष्यन्नर्णास्यपांचरधयै।१२।

अस्मै

अस्मै

इसके ताई

इत्

(पूरणः)

-

ऊम्

(पूरणः)

-

प्र

प्र+

-

भर

प्र+भर, प्रक्षिप

फैंको

तूतुजानः

त्वरमाणः

(निघं०२।१५)

शीघ्रताकरता हुआ

वृत्राय	वृत्राय	वृत्र के ताई
वज्रम्	वज्रम्	वज्र को
ईशानः	ईश्वरः	ईश्वर
कियेधाः	कियतः, अनवधृत परिमाणस्य (बल- स्य) धारकः	अपित्त (बल) के धारण करने वाला
गोः	पशोः (अमरः)	पशु के
न	इव	कीन्याई
पर्व	पर्वाणि (शैलोंपः)	जोड़ों को
वि	वि +	-
रद	वि + रद, छिन्धि	काटो
तिरश्चा	तिरश्चा	तिरछे से
इष्यन्	प्राप्नुवन्	प्राप्त होता हुआ
अर्णसि	नदीः (नि० १।१३)	नदियों को

अपाम्	अपाम्	जलों के
चरध्वै	गमनाय	प्राप्त होनेके लिए

संस्कारार्थः

(हे इन्द्र !) त्वरमाणोऽपरिमितबल ईश्वरः
 (त्वम्)अस्मैवृत्राय वच्चं प्रक्षिप(अन्तरिक्षस्थाः) नदीः
 (च) प्राप्नुवन् जलानां गमनाय (वृत्रस्य) पर्वाणि
 तिरश्चा (वज्रेण) छिन्धि यथा (मांसस्य विकर्तारः)
 पशोः (अवयवान् छिन्दन्ति) ॥ १२ ॥

भाषार्थः ।

(हे इन्द्र !) शीघ्रता करते हुए, अमित बलवाले
 ईश्वर आप इस वृत्रके ताई वच्च को फेंके(और अन्त
 रिक्ष की) नदियों को प्राप्न होकर जलों के गमन के
 लिये (वृत्र के) जोड़ों को तिरछे (वज्र) से काटें जैसे
 (कसाई) पशु के (जोड़ों को काटते हैं) ॥ १२ ॥

(१) उपमा का प्रयोजनशत्रु यधरूप मनोगत भाव को दृढ
 करने का है ।

इन्द्रोदेवता निचृच्चिष्टुच्छन्दः १११११११०१११॥

अस्येदुप्रब्रूहिपूर्वाणि तरस्य-

कर्मणि नव्युक्तैः। युधेयदिष्णा-
 न आयुधा न्यघायमाणो निरिणाति-
 श्चन् । १३।

अस्य	अस्य	इसके
इत्	(पूरणः)	-
ऊम्	(पूरणः)	-
प्र	प्र+	-
ब्रूहि	प्र+ब्रूहि, प्रकर्षेण कथय	खूब कथन करो
पूर्याणि	पुरातनानि	प्राचीनोंको
तुरस्य	त्वरमाणस्य	शीघ्रकारी के
कर्मणि	कर्मणि	कर्मों को

नव्यः	नवीनैः सुपामितितृतीयायाःसुः)	नयों से
उक्थैः	शस्त्रैः	स्तोत्रों से
युधे	युद्धाय	युद्ध के लिये
यत्	यतः	क्योंकि
दृष्टानः	पुनः पुनःप्रक्षिपन् (इपमाभीक्ष्णे, द्यत्ययेना ऽऽत्मने पदम्)	बारबार फेंकता हुआ
आयुधानि	आयुधानि	अस्त्रों को
क्रुधायमाणाः	क्रोधं कुर्वाणः (पा०को०)	क्रोध करता हुआ
निऽरिणाति	अतिशयेन व्यथ- यति (पा०को०)	अत्यन्त पीडित करता है
शत्रून्	शत्रून्	शत्रुओं को

संज्ञतार्थः ।

(हे आर्य्यगण!) त्वरमाणस्याऽस्य (इन्द्रस्य) पुरा-
तनानि कर्माणि नवीनैः शस्त्रैः प्रकथय यतः

क्रोधं कुर्वाणः (अयमिन्द्रः) युद्धाय पुनः पुनरायुधानि
प्राक्षपन् शत्रून्तिशयेन व्यथयति ॥ १३ ॥

भाषार्थः ।

(हे आर्य्यगण) इस शीघ्रकारी (इन्द्र) के प्राचीन
कर्मों को नए स्तोत्रों से खूब कथन करो क्योंकि
क्रोध करते हुए (यह इन्द्र) युद्धके निमित्त अस्त्रों को
बारंबार चलाते हुए, शत्रुओं को अत्यन्त पीड़ित
करते हैं ॥ १३ ॥

इस से यह उपदेश मिलता है कि हम भी इन्द्र के प्राचीन
कर्मों को जो ऋषियों ने मंत्रों में गाए हैं, अपनी भाषा में नए २
भजनों द्वारा खूब कथन करें, वैदिक धर्म तभी जीवित हो सकता
है जब हम ऐसा करें ।

इन्द्रो देवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११

अस्येदुभियागिरयश्चहृह्ला

द्यावाचभूमाजनुषस्तुजेते । उपांयेन-

स्यजोगुवानओणिं सदोभवहोठर्याय-

नोधाः । १४ ।

अस्य	अस्य	इसके
इत्	खलु	सच मुच
ऊम्०	(पूरणः)	-
भिया	भयेन	भय से
गिरयः	पर्वताः	पर्वत
च	अपि	भी
हृद्ळाः	हृदाः	निश्चल
द्यावा	द्यावा+	-
च	च	और
भूम	द्यावा+भूम, द्यावा पृथिव्यौ (अत्यंकाण्डसम्।)	थौ (और) पृथिवी
१ जनुपः	प्रादुर्भूतम्य	प्रकट हुए के

तुजते०	कम्पेते (सा०भा०)	दोनों कांपती हैं
उपो०	उपो+	-
वेनस्य	मेधाविनः (निघं० ३।१५)	मेधावी के
जोगुवानः	उपो + जोगुवानः पुनःपुनरुप- शब्दयन्	बार बार वर्णन करता हुआ
ओणिम्	ओणति अपनयति (दुःखम्)तं रक्षण- सामर्थ्यम्	रक्षणसामर्थ्य को
सद्यः	तत्क्षणे	तत्काल
भुवत्	अभवत् (भवतेलड धवडादेशो ऽडभावश्चच्छान्दसः)	हुआ
वीर्याः	वीर्याय	बल के ताई
२ नोधाः	नोधाः	नोधा

संस्कृतार्थः ।

प्रादुर्भूतस्याऽस्य (इन्द्रस्य) खलु भयेन दृढाः

ऋ०मं०१, सू०६१मं०१५ (१५५८)

पर्वता अपि (कम्पन्ते)द्यावापृथिव्यौ च कम्पेते, नोधाः
(अस्य) मेधाविनो रक्षणसामर्थ्यं पुनः पुनर्वर्णयं-
स्तत्क्षणे वीर्यवानभवत् ॥ १४ ॥

भाषार्थः ।

सचमुच प्रफट हुआ इस (इन्द्र) के भय से दृढ़
पर्वत भी (कांपते हैं) ओर द्यौ ओर पृथिवी कांपती हैं
(इस) मेधावी क रक्षण सामर्थ्य का बार बार वर्णन
करता हुआ नोधा तत्काल बलयुक्त हुआ ॥ १४ ॥

(१) जब से इस द्यौ और पृथिवी को मलग करके बीच में
इन्द्रदेव प्रकट हुए हैं, तब से इनके भय से पर्वत और द्यावा पृथिवी
सब कांपते हैं ।

(२) नोधा अपि इस सूक्त के द्रष्टा हैं जैसे वह इन्द्र के
रक्षण सामर्थ्य को बारंबार वर्णन करने से तत्काल वीर्यवान हुए
वैसे हम सब हो सकते हैं ।

इन्द्रोदेवता निचृत्त्रिष्टुपछन्दः १११०१११११

अ॒स्माद्दु॒त्यद॒नुदा॒य्ये॒षा मे॒को-

यद्व॒न्नेभू॒री॒शानः॑ । प्रै॒तशं॑सू॒र्ये॒पस्पृ-

धानं॑ सौ॒व॒र्ये॒सु॒ष्टि॒वमा॒वदिन्द्रः॑ । १५५ ।

अस्मै

अस्मै

इसके ताई

इत्

खलु

सच मुच

ऊम्०

(पूरणः)

-

त्यत्

तत्

वह

अनु

अनु+

-

दायि

अनु+दायि
अन्वदायि
(अडभायः)

अर्पण किया गया

एषाम्

एषाम्

इन के

एकः

अद्वितीयः

अद्वितीयने

यत्

यत्

जो

ववने

ययाचे

मांगा

भरेः

प्रभूतस्य

बहुतों का

ईशानः

स्वामी

स्वामी

प्र	प्र+	-
एतशम्	एतशम् (ऋषिम्)	एतश (ऋषि) को
सूर्ये	सूर्ये	सूर्य में
स्पर्धमानम्	स्पर्धमानम् (लिटः कानच्)	स्पर्धा करते हुए को
सौवर्ष्ये	स्वर्ष्व-(राज्ञः) पुत्रे	(राजा) स्वर्ष्व के पुत्रमें
सुस्विम्	(सोमस्य) अभिषोतारम् (पुत्रमभिषवे)	(सोमके) निचोड़ने वाले को
भावत्	प्र+भावत्, प्रकर्षेण	खूब रक्षित किया
इन्द्रः	रक्षितवान् इन्द्रः	इन्द्र ने

संस्कृतार्थः ।

प्रभूतसंघे (धनस्य) स्वामी, अद्वितीयः (इन्द्रः) एषाम् (पदार्थानां मध्ये) यद्यथाचे तदस्माअन्वदायि, इन्द्रः सूर्यनाम्नि स्वर्ष्व-(राज्ञः) पुत्रे स्पर्धमानम् (सोमस्य) अभिषोतारमेतशम् (ऋषिम्) प्रकर्षेण रक्षितवान् ॥ १५ ॥

भाष्यार्थः ।

बहुत (धन) के स्वामी अद्वितीय (इन्द्र) ने इनके
(पदार्थों में से) जो सांगा वही इनके ताड़ अर्पण
किया गया, इन्द्र ने (राजा) स्वश्व के सूर्य्य नामी
पुत्र में स्पर्धा करनेवाले (सोम के) निचोड़ने वाले
पतश (ऋषि की) खूब रक्षा की ॥ १५ ॥

(१) सब पदार्थ इन्द्र के हैं इन में से जो कुछ इन्द्र ने सांगा
वह हवि रूप में उनको दिया गया ।

(२) भाष्य राजा स्वश्व के सूर्य्य नामी पुत्रसे किसी विषय में
स्पर्धा होनेपर इन्द्र ने सोम निचोड़ने वाले पतश ऋषिको रक्षा की थी ।

इन्द्रो देवता त्रिष्टुप्छन्दः ११११११११११ ।

एवातेहारियोजनासुवृत्ती न्द्र-

ब्रह्माणिगोतमासोअक्रन् । एषुवि-

प्रवपेशसंधिर्यधाः प्रातर्मक्षधियाव-

सुर्जगम्यात् । १६ ।

एव खलु

ते तुभ्यम्

सच मुच

तरे लिष्

हारिऽयोजन

हे अश्वयोर्योज-
यितः !

हे दो घोड़ों के
जोड़ने वाले

सुऽवृत्ति

सुऽवृत्वाकर्षिणीः
(शेर्लोपः)

खूब आकर्षण
करनेवालियोंको

इन्द्र

हे इन्द्र !

हे इन्द्र

ब्रह्माणि

मन्त्ररूपाः स्ततीः

मन्त्ररूप स्तुतियों
को

गोतमासः

गोतमवंशोयाः

गोतम वंशियों ने

अक्रन

आ + अक्रन,

कियां

धा

कृतवन्तः

आ +

-

एषु

एषु

इन में

विप्रवऽ

विप्रवरूपाम्
(लिङ्गन्यायः)

सवरूप वाली को

पेशसम्

धियम्

वृद्धिम्

वृद्धि को

धाः

स्थापय
(छोड़ेंलुट्) (भट्टभाषः)

स्थापन कर

प्रातः	प्रातः	प्रातः, काल में
मच्छु	शीघ्रम्	शीघ्र
धियाऽवसुः	ध्यानेन धनवान्	ध्यान द्वारा धन वाला
जगम्यात्	आगच्छतु	आवे

संस्कृतार्थः ।

हे अश्वघोषो जयितः! हे इन्द्र! गोतमवंशीयास्त्वदर्थं सुष्ठ्व। कर्षिणोर्मन्त्ररूपाः स्तुती कृतवन्तः (त्वम्) एषु विश्वरूपां बुद्धिं स्थापय ध्यानमात्रेण धनवान् (भवान्) शीघ्रं प्रातरागच्छतु ॥ १६ ॥

भाषार्थः ।

हे दो घोड़ों के जोड़ने वाले हे इन्द्र! गोतम वंशियों ने आप के लिये खूब आकर्षण करने वाली मंत्र रूप स्तुतियों को किया है आप इन में सब रूप वाली बुद्धि को स्थापन करें, ध्यान मात्र से धनवान् (आप) प्रातःकाल में शीघ्र आवें ॥ १६ ॥

(१) नोधा ऋषि गोतम वंशी हैं ।

(२) सब रूपवाली बुद्धि अर्थात् ऐसी बुद्धि जो सम्पूर्ण विषयों के साथ तादात्म्य रूप हो कर प्रत्येक रूपवाली हो सके ।

इत्येकपण्डितमं सूक्तम् ।

श्रु०मं० १ सू० ६२

नोधऋषिः

विनियोग—"तदुप्रयक्षतमं-" इस छठे मंत्र से प्रवर्ग्य इष्टि में स्तुति की जाती है (भा० श्रौ०सू० ४।७।४)

शेष मंत्रों का लैङ्गिक विनियोग है

इस सूक्त में नोधऋषि जो पिउले ऋषियों में से हैं प्राचीन ऋषियों की भावनाओं को नये स्तोत्र में वर्णन करते हैं अङ्गिरा, नवग्वा, दशग्वा ये उस समय के ऋषि हैं जय मनुष्यों में प्रथम और अमरगण्य यह अर्थ्यजाति युद्धि की इस काटिको प्राप्त होगई थी कि सृष्टि की अद्भुत घटनाओं का कारण को प्रिचार सके। सब से पहिली दुःख वार्ई घटना मेरुदेश की लग्यो रात्रि थी, अन्धकार रूपी असुर जिनको बल पणि इत्यादि नामोंसे वर्णन कियाइ सूर्य्य की किरण रूपी गोमों को हरण करके छिपा लेने थे इसो लिये रात्रि का अग्रसान नई होता था इस अवस्था में अङ्गिरा आदि ऋषियों ने इन्द्रको स्तुति करके उन का बल बढाया जिस से वह असुरों से युद्ध करके गोमों को छुड़ाये, इन्द्र उपा रूपी देवताओं का कृतिया को जिस को सरमा नाम से वर्णन किया है गोमों को छिपाने के स्थान को ढूँढने के लिये भजने हैं—यह जय उनका पना लगाकर लैटनी हे तब इन्द्र बल को मार कर पणि रों से गोमों को छुडाते हैं. सरमा अर्थात् उपा अ गेर चलती है और कुछ काल पोडे सूर्य्य रूपी इन्द्र किरण रूपी गोमों को साथ लिये हुए आते ह और रात्रि का अग्रसान होता है।

[ऋषि की यह कल्पना "कि जिस प्रकार हमारी अभीष्टसिद्धि के लिये स्तुति द्वारा इन्द्र के बल को बढानेकी आवश्यकता है इसो प्रकार सूर्य्य उदय होने के लिये हमारे प्राचीन पितर अङ्गिरा आदि

ऋषियों की स्तुति की भावश्यकता थी” हमें अनोखी प्रतीत होती है परन्तु उपासककी किसी कामना का पूर्ण होना ऐसाही नियमसे बरहै कि जैसा सूर्य का उदय होना । वेदका आशय यह है कि स्तुति से आत्मा(और आत्मा ही इन्द्रआदि देवता है)का बल बढ़ता है चाहे वह स्तुति किसी मित्र से कीजाय (१)अपनी कामना पूर्तिके लिये वा(२) जाति को उन्नतिके लिये वा (३)मनुष्यमात्र के उपकार के लिये (४) वा देवताओं को सृष्टि क्रम के चलाने में सहायता देने के लिये — ये कामनाएँ उत्तरोत्तर क्रम से श्रेष्ठ हैं और अन्तिम (४)कामना करने की योग्यता रखनेके कारण अगिला अथवा इत्यादि ऋषि देवताओं की तुलना में गिने जाते हैं, यह याद रखना चाहिये कि योग्यता क्रम पूर्वक उन्नति करने से होता है—हमारे लिये अन्तिम कामना करना निरर्थक है वर्तमान अवस्था में तो साधारण मनुष्यों के लिये पहिली,और उत्तम पुरुषोंके लिये पहिली और दूसरी कामना ही उन्नति के मार्ग पर डालने वाली हैं—जो स्वयं उन्नत और उनकी जाति उन्नत है उनको तीसरी कामना के लिये स्तुति करना योग्य है और जब इस पृथिवी की सब जातियाँ उन्नति के शिखर को पहुँच जायें तब चौथी कामना के लिये स्तुति करना असंगत नहीं होगा]

इन्द्रो देवता त्रिष्टुच्छन्दः १११११११११

प्रमन्महेशवसानायशुभ मङ्गलं

गिर्वणसे अङ्गिरस्वत् । सुवृत्तिभिः

स्तुवतः ऋग्मियाया ऽर्वा मा ऽर्कं न रे-
विश्रुताय । १ ।

प्र	प्र+	-
मन्महे	प्र+मन्महे प्रकर्षेण चिन्तयामः	हम खूब चिन्तन करते हैं
शवसानाय	(शवो बलं तदिवा- ऽऽव्रते) बलवते	बलवान के लिए
शुषम्	बलम् (निघं० २।९)	बल को
आपङ्गम्	स्तोत्रम् (निघं० ४।२)	स्तोत्र को
गिर्वृणसे	गीभिःस्तुतिभिः सम्भजनीयाय (पनसम्भनौ)	स्तुतियोंसे सेवन करने योग्य के लिये
अङ्गिरस्वत्	अङ्गिरस इव	अङ्गिराओं की न्याईं
सवृत्तिऽभिः	सुपुत्राकर्षकैः (वचोभिः)	सुधआकर्षण करने वाले (वचनों) से

२ स्तवते	स्तुतिकुर्वता (सुपाप्रितिविभक्तैः शै नादेशः)	स्तुति करने वाले से
२ ऋग्मियाय	अर्चनीयाय (ऋग्ममर्हतीति, अर्हाय घच्)	पूजनीय के लिए
अर्चाम	नमस्कारेणोच्चारयाम	हम नमस्कार के साथ उच्चारण करें
अर्कम्	मन्त्रम् (अर्चयतेऽनेनेतियास्क)	मन्त्र को
नरे	नराय (गुणरत्नान्दस)	नर के लिए
विश्रुताय	विख्याताय	प्रसिद्ध के लिए

संस्कृतार्थः ।

अङ्गिरस इव (वयम्) बलवते बलं स्तुतिभिः
सम्भजनीयाय (च) स्तोत्रं प्रकर्षेण चिन्तयामः, स्तुति
कुर्वता सुष्ट्वाकर्षकैः (वचोभिः) ऽर्चनीयाय विख्या-
ताय नराय नमस्कारेण मन्त्रमुच्चारयाम ॥ १ ॥

भाषार्थः ।

अङ्गिराओं की न्याईं हम बलवान के लिये बल
को (और) स्तुतियों से सेवन करने योग्य के लिये

अ० मं० १ सू० ६२ मं० २ (१५६८)

स्तोत्र को चिन्तन करते हैं, स्तुति करने वाले से खुश आकर्षण करनेवाले (वचनों द्वारा पूजने योग्य प्रसिद्ध नर के लिए हम नमस्कार के साथ मन्त्र को उच्चारण करें ॥ १ ॥

(१) अङ्गित, अङ्गितपियों में से हैं जिन आर्यजाति उत्तर में रहने समीप रहती थी, और नोधा पिछले क्रमों में से हैं। मन्त्र का तात्पर्य यह है कि जैसे अङ्गितों ने इन्द्र के लिये थल और स्तोत्र को चिन्तन किया वैसे ही हम पिछले स्तोत्र लोग भी करते हैं ॥

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११ ।

प्रवो॑म॒हेम॒हि॒न॒मो॑भ॒र॒ध॒व॒ साङ्ग॑प्य॒

श॒व॒सा॒ना॒य॒साम॑ । ये॒ना॒नः॒पूर्वे॑पि॒तरः॑

प॒द॒ज्ञा अ॒र्च॑न्तो॒अङ्गि॑र॒सो॒गा अ॒वि॑-

न्दन् । २ ।

प्र

| प्र +

| -

वः	यूयम् (प्रथमार्थे द्वितीया)	तुम सब
महे	महते	महान के लिए
महि	महत	परम को
नमः	नमस्कारम्	नमस्कार को
भरध्वम्	प्र + भरध्वम्, प्रापयत	पहुँचाओ
आङ्गुष्ठ्यम्	आघोपयोग्यम्	उच्चस्वर से गाने योग्य को
श्वसानाय	वलवते	बलवान के लिए
साम	सामगानम्	साम गान को
येन	येन	जिसके द्वारा
नः	अस्माकम्	हमारे
पूर्व	पुरातनाः	प्राचीन
पितरः	पितरः	पितरों ने

१ पदऽज्ञाः	मार्गस्य ज्ञातारः	रस्ते के जानने वालों ने
अर्चन्तः	पूजयन्तः	पूजन करते हुए
अङ्गिरसः	अङ्गिरसः	अङ्गिराओं ने
गाः	गाः	गौओं को
अविन्दन्	अलभन्त (विदललान्ने)	प्राप्त किया

ससृत्तार्यः ।

(हे आद्यर्गण!) महते (इन्द्राय) महन्नमः प्राप-
यत, बलयुक्तायाऽऽघोपयोग्यं साम-(गानं कुरुत)
येन मार्गस्यज्ञातारः पूजयन्तोऽस्माकं पुरातनाः
पितरोऽङ्गिरसः (किरण रूपाः) गा अलभन्त ॥ २ ॥

भाषार्थः ।

(हे आद्यर्गण!) महान (इन्द्र) के लिये परम
नमस्कार को पहुंचाओ, बलवान के लिए
उच्च स्वर से गाने योग्य साम (गान को करो) जिस
के द्वारा रस्ते के जानने वाले पूजन करते हुए हमारे

प्राचीन पितर अङ्गिराओं ने (किरण रूपी) गौओं को प्राप्त किया था ॥ २ ॥

(१) रस्ते के जानने वाले अर्थात् गोओं को खोजने के लिये इन्द्र की स्तुति रूप उपाय को जानने वाले ।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः ११११११११११॥

इन्द्रस्याऽङ्गिरसांचिष्टौ विदत्स-
रमातनयायधासिम् । बृहस्पतिभि-
नदट्रिंविदङ्गाः समुस्त्रियाभिर्वावश-
न्तनरः । ३ ।

इन्द्रस्य	इन्द्रस्य	इन्द्र की
अङ्गिरसाम्	अङ्गिरसाम्	अङ्गिराओं की,
च	च	और
इष्टौ	इच्छायाम् (सत्याम्)	इच्छाके होने पर

विदत्	अलभत (अडभावः)	प्राप्त किया
१ सरमा	सरमा	सरमा ने
२ तनयाय	सन्तानाय	सन्तान के लिये
२ धासिम्	अन्नम् (निघं० १२।७)	अन्न को
वृहस्पतिः	वृहनां देवानां पतिः(इन्द्रः)	इन्द्र ने
भिनत्	व्यदारयत् (अडभावः)	चीर डाला
अद्रिम्	पर्वतम्	पर्वत को
विदत्	अलभत (अडभावः)	प्राप्त किया
गाः	गाः	गौओं को
सम्	सम्+	-
उस्त्रियाभिः	गोभिः	गौओं के साथ

३ वावश्चन्त	पुनः पुनर्हर्ष- शब्दमकुर्वन् (घाञ्शब्दे, यङ्)	धारधारहर्षयुक्त शब्दको क्रिया
नरः	नेताराः (देवाः)	देवताओं ने

संस्कृतार्थः ।

इन्द्रस्याऽङ्गिरसाञ्चेच्छायाम् (सत्याम्) सरमा
(निज) सन्तानायाऽन्नमलभत, इन्द्रः (तमोरूपम्)
पर्वतं व्यदारयत् (किरणरूपाः) गाः (च) लब्धवान्
(ताभिः) गोभिः (सह) देवाः पुनःपुनर्हर्षशब्द-
मकुर्वन् ॥ ३ ॥

भाषार्थः ।

इन्द्र और अङ्गिराओं की इच्छा के होने पर
सरमा ने (अपनी) सन्तान के लिए अन्न को
प्राप्त किया, इन्द्र ने (अन्धकाररूपी) पर्वत को
चीर डाला (और किरण रूपी) गौओं को पाया
(उन) गौओं के साथ देवताओं ने आनंद का
शब्द किया ॥ ३ ॥

(१) सरमा, देवशुनी का नाम है, जिस प्रकार छिपे शिकार
को अपनी घाणशक्ति से ढूँढ कर कुतिया अपने स्वामी को घाँ
लेजाती है इसी प्रकार देवशुनी उपा छिपे हुए किरण समूह को
ढूँढ कर इन्द्र को निवेदन करती है - इस भलंकार का मूल यह है

कि रात्रि होने से पहिले सायंकाल की उषा अंधेरे के पीछे २ जाती है, और प्रातः काल में सूर्य के आगे २ अर्थात् पहिले आती है।

(२) सरमा की सन्तान उषा के जोड़ले पुत्र हैं जो दिन रात्रि के रूपमें उत्पन्न होने रहते हैं मेघ देवों की महीना लम्बी रात्रि के पीछे कुछ काल तरु साधारण ६० घड़ी के दिन रात्रि होते हैं यह सरमा के युगल पुत्र हैं फिर लंबा दिन आरम्भ हो जाता है, जब सरमा ने किरण रूपी गौओं को ढूँढ लिया तो उस की सन्तान के पालन के लिये गौओं का दूध रूपी अन्न मिल गया क्योंकि गौओं की खोज को आरम्भ करने से पहिले सरमा ने इन्द्रसे यह नियम कर लिया था कि यदि मैं गौओं का खोज लगा दूँ तो मेरी अहोरात्र रूपी सन्तान के लिये श्वेत किरण रूपी दूध मिले जिस से उन का पालन हो ॥

(३) जब इन्द्र ने सूर्य रूप में किरणों को प्राप्त किया तो सब देवताओं ने किरणों के साथ मिल कर हर्ष ध्वनि को किया जैसे प्रमात के समय अथ भी देखा जाता है ॥

इन्द्रो देवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११ ।

ससुष्टुभासस्तुभासप्तविप्रैः स्व-

रेणाऽद्रिस्वयोर्योश्नवग्वैः । सरण्युभिः-

फालिगमिन्द्रशक्र वलं रवेण दरयो-

दशग्वैः । ४ ।

सः	सः	वह
सु०स्तुभा ^१	शोभनस्तोभ युक्तेन (पूरणः)	सुन्दर स्तोभ वाले से
सः		-
स्तुभा	स्तोत्रेण (स्तोमतिःस्तुतिकर्मा)	स्तोत्र से
सुप्त	सप्तभिः (सुपामिति विमल्लोर्लुक्)	सातों से
४ विप्रैः	ऋषिभिः	ऋषियों से
स्वरेण ^१	नादेन	नाद से
१ अद्रिम ^१	पर्वतम्	पर्वत को
स्वर्ग्यैः ^१	कीर्त्तनीयः (स्वृशब्दे)	कीर्त्तनकरनेयोग्य
२ नव०ग्वैः ^१	नवभिः(मासैर्यज्ञ- समाप्य)गतेर्नव- ग्वाख्यैर्ऋषिभिः	नौमहीनेमेंसत्रको समाप्तकरनेवाले नवग्व नामी ऋषियों के साथ

३ सरयुऽभिः	त्वरमाणैः (ऋ० १०।६१।२४)	शीघ्रता करने वालों से
१ फ़ालिऽगम्	मेघम् (निय०।१।१०)	मेघ को
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
शक्र	हे शक्तिमन् !	हे शक्ति वाले
१ वलम्	वलम्	वल को
रवेणा	गर्जनेन	गर्ज के साथ
दरयः	विदारितवान् (भडभाय.)	चीरडाला
२ दशऽग्वैः	दशभिः(मासैर्यजं समाप्य) गतैर्दश- ग्वारयैर्ऋषिभिः	दसमहीने में सत्र को समाप्त करने वाले दशग्वर्षपि- पियों के साथ

ससृताथः ।

हे शक्तिमन्निन्द्र ! शोभन स्तोत्र युक्तेन स्तोत्रेण
नादेन(च)कीर्तनीयः सः(त्वम्) त्वरमाणैर्नवग्वैर्दशग्वैः
सप्तर्षिभिः(त्र सह) पर्वत (सदृशम्) मेघ(सदृशं च)
वल गर्जनेन विदारितवान् ॥ ४ ॥

भाषार्थः ।

हे शक्तिवाले इन्द्र ! सुन्दर स्तोत्र वाले स्तोत्रसे (और) नाद से कीर्तन करने योग्य उस आपने शीघ्रता करते हुए नवग्व दशग्व (और) सात ऋषियों के साथ पर्वत (सदृश और) मेघ (सदृश) बल को गर्ज के साथ चीर डाला ॥ ४ ॥

(१) अद्रि, फलिंग, बल ये सब मेघ के नाम हैं परन्तु यहा जलका मेघ नहीं किन्तु अंधकार के मेघ से तात्पर्य है ।

(२) नवग्व के लिये देखो पृष्ठ ०८०२, और जहा दो महीने की रात्रि होती थी वहा दस महीने में सत्र को समाप्त करने वाले दशग्व ऋषि कहलाते थे ।

(३) "शीघ्रता करते हुए" अर्थात् स्तोत्रों द्वारा इन्द्र को बल के साथ युद्ध करने में सहायता देनेके लिये शीघ्रता करते हुए ।

(४) नवग्व दशग्व और सात ऋषियों के साथ अर्थात् इन को सहायता से जो वे स्तोत्रों द्वारा इन्द्र को देते थे ।

(५) "स्तोत्र" गीत आदि स्वर को पूरा करने के लिये शब्द विशेष (जिस का अर्थ कुछ नहीं) का नाम है जैसे सामयेद में 'हुम्मा' 'होर्' इत्यादि शब्द ॥

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११११११११११ ॥

गुणानो अङ्गिरोभिर्दस्मविवरुषसा,
सूट्येणगोभिरन्धः । विभूम्याञ्चप्रथ-

यद्ब्र॒न्द्र॒सानु॑ दि॒वीर॒ज॒उ॒पर॒मस्त॑-
भायः ।५।

ग॒णानः॑	स्तू॒य॒मानः॑	स्तु॒ति॒ क॒िया॒ हुआ
अ॒ङ्गि॒रः॑ऽभिः	अ॒ङ्गि॒रो॒भिः॑	अ॒ङ्गि॒राओं॑ से
द॒स्म	हे अ॒द्भु॒त (भा०को०)	हे अ॒द्भु॒त
वि	वि +	-
वः	वि+वः, अ॒पा॒वृ॒त॒- वान् (अ॒ड॒मा॒व॒द॒ष्टा॒न्द॒सः)	हटा॒ दिया
उ॒प॒सा	उ॒प॒सा	उ॒पा॒ से
सू॒र्ये॑ण	सू॒र्ये॑ण	सू॒र्य से
गो॒भिः॑	कि॒रणेः॑ (निघ०१।५)	कि॒रणों॑ से
अ॒न्धः॑	अ॒न्ध॒का॒रम् निघ०५।१)	अ॒न्ध॒का॒र को
वि	वि +	-

भू॒र्याः	पृथिव्याः	पृथिवी के
अ॒प्र॒थ॒यः	वि+अप्रथयः, विस्तारितवान्	फैला दिया
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
सानु	शिखरम्	शिखर को
दिवः	द्युलोकस्य	द्युलोक के
रजः	अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्ष को
उपरम्	तलेभवम् (भा०को०)	नीचे होने वालेको
अस्तभायः	अस्तभ्नाः, हृदी- कृतवान् (अप्राययेन दनाप्राययस्य शायजादेशः)	हड़ किया
	संश्रुतार्थः ।	

हे अश्रुतेन्द्र ! अङ्गिरोभिः स्तूयमानः (त्वम्) उपसा,सूर्येण, किरणैः (च) अन्धकारमपावृतवान्, पृथिव्याः शिखरं विस्तारितवान्, द्युलोकस्य तले-
भवमन्तरिक्षम् (च) हृदी कृतवान् ॥ ५ ॥

भाषार्थः ।

हे अद्भुत इन्द्र ! अङ्गिराओं से स्तुति किए गए आपने उषा सूर्य (और) किरणों द्वारा अन्धकार को हटा दिया आपने पृथिवी के शिखर को फैलाया (और) द्युलोक के नीचे होने वाले अन्तरिक्ष को दृढ़ किया ॥ ५ ॥

जब रात्रि थी, तो अन्धकार से ढके हुए होने से पृथिवी के शिखर अर्थात् हिमालय आदि पर्वत और अन्तरिक्ष में कुछ भेद नहीं प्रतीत होता था, अन्धकार के दूर होने से पर्वतों को श्रेणियों अन्तरिक्ष में फैली हुई देखने लगी और घी और पृथिवी के बीच में अन्तरिक्ष को स्थिरता प्राप्त हुई ॥

... इन्द्रो देवतां त्रिष्टुप्छन्दः । ११११११११११ ।

तदुप्रयच्चतममस्यकर्मदस्मस्य-

चारुतममस्तिदंसः । उपह्वरेयदुपरा-

अपिन्वन्मध्वर्णसीनद्यश्चतस्रः । ६ ।

तत् । तत् । वह

ऊम्	(पूरणः)	-
प्रयत्नतमम्	अतिशयेन पूज्यम् (यक्षपूजायाम्)	अत्यन्त पूजनीय
अस्य	अस्य	इसका
कर्म	कर्म	कर्म
द्वन्द्वस्य	अद्भुतस्य (भा०को०)	अद्भुत का
चारुतमम्	अतिशोभनम्	अत्यन्त सुन्दर
अस्ति	अस्ति	है
दंसः	कर्म (निघं० २११)	कर्म
उपह्वरे	रहः स्थाने	गुप्त स्थानमें
यत्	यत्	जो
उपराः	तलेभवाः	नीचेहोने वालियों को
अपिन्वत्	आपूरितवान् (भा०को०)	खूब पूर्ण करदिया

मधुऽअर्णसः	मधुरोदकाः (अर्ण इति जलनाम, निघं०।१।१२)	मीठे जल वालियों को
नद्यः	नदीः (द्वितीयार्थे प्रथमा)	नदियों को
चतस्रः	चतस्रः	चार को

संस्कृतार्थः ।

अद्भुतस्याऽस्य (इन्द्रस्य) तत्कर्मणाऽतिशयेन पूज्य-
मतिशोभनम् (च) अस्ति, यत्तलेभवा मधुरोदकाश्च-
तस्रो नद्यो रहः स्थान आपूरितवान् ॥ ६ ॥

भाषार्थः ।

अद्भुत इस (इन्द्र) का वह कर्म अत्यन्त पूज-
नीय (और) अति सुन्दर है जो नीचे होनेवाली मीठे
जल की चार नदियों को गुप्त स्थान में खूब पूर्ण
कर दिया ॥ ६ ॥

मीठे जलकी चार नदियां गौ फे स्तन हैं, यह इन्द्रका अत्यन्त
भाश्चर्य जनक कर्म है, कि इन नदियों को गुप्त स्थान में दुग्ध से
पूर्ण कर देते हैं, ये नदियां वत्स की समीप आने से बहती हैं ॥

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११। ११ । ११ । ११ ।

द्वि॒ता॒वि॒व॒स्व॒न॒जा॒स॒नी॒ले॒ अ॒बा॒स्यः॒

स्तवमानेभिरकैः । भगोनमेनेपरमे-
व्योमन्नधारयद्रोदसीसुदंसाः । ७ ।

द्विता	द्विधा (धकारस्यतकारश्छा- न्दसः)	दो भागों में
वि	वि+	-
वत्रे	वि+वत्रे, विवृतवान् भेदेनस्थापितवान्	अलगकिया
सुनऽजा	पुराणोद्भवे (पूर्वपदस्यञ्जस्था, विभक्ते- राकारश्च)	पुरानेजन्मवाली दोनों को
सऽनीळे०	समाननीडंनिवा- सस्थानं ययोस्त परस्परं संलग्ने इत्यर्थः	मिली हुईओं को
अथास्यः	अनायासेन भवः (यत् प्रयत्ने, माघे यत्)	बिना प्रयत्न के होने वाला
स्तवमानेभिः	स्तुतिं कुर्वद्भिः	स्तुतिकरनेवालोंसे

अकैः	मन्त्रैः	मन्त्रों के द्वारा
भगः	सूर्यः	सूर्य
न	इव	की न्याई
मेने०	स्त्रियो (निघ० ३।२१)	दो स्त्रियों को
परमे	उत्कृष्टे	ऊंचे में
विऽओमन्	आकाशे (सप्तम्यालुक्)	आकाश में
अधारयत्	अधारयत्	धारण किया
२ रोदसी०	द्यावापृथिव्यो	दो (ओर) पृथिवी को
सुऽदंसाः	शोभनकर्मा	सुकर्मा ने

रुद्रतार्थः ।

मन्त्रैः स्तुतिं कुर्वद्भिरनायासेन भवः (इन्द्रः)
पुराणोद्भवे, परस्परसंलग्ने द्यावापृथिव्यौ द्विधा

विवृतवान्(पुनः सः) शोभनकर्मा (ते) स्त्रियावुत्कृष्ट
आंकाशे सूर्य्य इवाऽधारयत् ॥ ७ ॥

भाषार्थः ।

मन्त्रोंसे स्तुति करते हुए ऋषियोंके द्वारा बिना
प्रयत्न के होने वाले (इन्द्र) ने परस्पर मिली हुई
पुराने जन्मवालो द्यौ(और) पृथिवी को अलग अलग
किया, (फिर उस) सुकर्मा ने (उन) दोनों स्त्रियों को
ऊँचे आकाशमें सूर्य्य की न्याईं धारण किया ॥ ७ ॥

(१) जब स्तोता, मन्त्रों से इन्द्र की स्तुति करते हैं, तब यह बिना
परिश्रम के ही अपने सृष्टि व्यवस्थापक कर्मों को करते हैं ॥

(२) द्यौ और पृथिवी दोनों शब्द स्त्रीलिंग होने से स्त्री कही
गई हैं इन दोनोंको सुकर्मा इन्द्र ने महान आकाश में सूर्य्य की न्याईं
धारण किया हुआ है जैसे एकपति दो स्त्रियों को धारण करता है ।

राज्युपसोदेवते निचृत्रिष्टुप्लन्दः १११।१११०।११।

सनाह्विवपरिभूमाविरूपे पुनर्भुवा-

युवतीस्वेभिरेवैः । कृष्णेभिरक्तोषा-

रुग्निर्वपुर्भिराचरतो अन्यान्या । द्वा

स॒नात्	प्राचीनकालात्	प्राचीनकाल से
दि॒वम्	दुलोकम्	दुलाक को
प॒रि	परि+	-
भूम॑	भूमिम् (द्वितीयायाडादेशः, छस्वदञान्दसः)	पृथिवी को
विऽरूपे॑	भिन्नवर्णे	भिन्नरूप वालीं
पुनःऽभुवा॑	पुनःपुनर्जायमाने	बारंबार उत्पन्न होनेवालीं
यु॒वती॑	तरुण्यो	दो स्त्रियें
स्वेभिः॑	स्वकीयेः	अपनी
ए॒वैः	गमनैः (रण्गती पन प्रत्ययः)	गतिर्यो से
कृ॒ष्णोभिः॑	कृष्णवर्णेः	काले वर्णी से

अर्त्ताः	रात्रिः (नवेतिराधिनाम निघं० १।७ नलोपदञान्दसः)	रात्रि
उषाः	उषाः	उषा
रुशत्ऽभिः	दीप्यमानैः	दीप्तिवालों से
वपुःऽभिः	शरीरैः	शरीरों से
आ	आ+	--
चरतः	आ+चरतः, पर्य्या वर्त्तते	दोनों घूमती हैं
अन्याऽअन्या	परस्परंव्यतिहारेण (व्यतिहारे सर्वनाम्नो- हे मतः)	अलग२ क्रम से

संस्कृतार्थः ।

कृष्णवर्णैरात्रिः, दीप्यमानैःशरीरैरुषाः भिन्नवर्णं
(उभे)युवती स्वकीयैर्गमनैःपुनःपुनर्जायमाने (सत्यो)
प्राचीनहालात् अलोकं पृथिवीम् (च) परस्परं व्यति-
हारेण पर्य्यावर्त्तते ॥ ८ ॥

भाषार्थः ।

ले वर्णों से रात्रि, (और) दीप्तिवकाले शरीरों

क्र० मं०१ सू०६२ मं०९ (१५८८)

से उपा, दोनों भिन्न रूपवाली स्त्रियां अपनी रगतियों द्वारा चारंवार उत्पन्न होती हुई प्राचीनकाल से द्युलोक (और) पृथिवी के चारों ओर अलग २ क्रम से घूमती हैं ॥ ८ ॥

(१) यहां पर उपा से दिन का तात्पर्य है ।

इन्द्रोदेवता त्रिष्टुप्छन्दः १११११११११

सनेमिसख्यं स्वपस्यमानः सुनु-
र्दाधारश्वसासुदंसाः । आमासुचि-
द्वधिषेपक्वमन्तः पयःकृष्णासुरु-
शद्रोहिणीषु । ९३

सनेमि	पुरातनम् (निर्घ०३१२७)	पुरानी को
सख्यम्	मित्रत्वम्	मित्रता को
{ सुऽअप- स्यमानः	शोभनं कर्माऽऽ- चरन्	श्रेष्ठ कर्म का आचरण करता हुआ

सुनुः	पुत्रः	पुत्र ने
दाधार	धारितवान्	धारण किया है
शवसा	बलेन	बल से
सुऽदंसाः	सुकर्मा	सुकर्मा ने
आमासु	अपरिपक्वासु	कच्चियोंमें
चित्	अपि	भी
दधिषे	धारयति (लडर्थ लिट)	स्थापन करते हो
पक्वम्	परिपक्वम्	पके हुए को
अन्तः०	मध्ये	बीच में
पयः	दुग्धम्	दूध को
कृष्णासु	कृष्णवर्णासु	काले रंग वालियों में

रुशत्	श्वेतवर्णम् (धा०को०)	श्वेत रंग वाले को
रोहिणीषु	लोहितवर्णासु	लालरंग वालियों में

संस्कृतार्थः ।

सुकर्मा पुत्रः शोभनं कर्माऽऽचरन् पुरातनं सख्यं
बलेन धारतवान् (अस्ति) (हे इन्द्र!) (त्वम्) अपरिपन्ना
स्वपिमध्ये परिपन्नं दुग्धं स्थापयसि (त्वम्) कृष्णवर्णा-
सु लोहितवर्णासु (च) श्वेतवर्णम् (दुग्धं स्थापयसि) ॥९॥

नापार्थः ।

श्रेष्ठ कर्म का आचरण करते हुए सुकर्मा पुत्र
ने पुरानी मित्रता को बल से धारण किया है
(हे इन्द्र) आप कच्चियों के बीच में भी पके हुए
दूध को स्थापन करते हो आप काले (और) लाल रंग
वालियों में श्वेत रंग के (दूधको स्थापन करते हो) ॥९॥

(१) "पुत्र" द्यावापृथिवी के पुत्र इन्द्र ने पुरानी मित्रता को
जो हमारे पितरोंके और हमारे साथ उसको है बल से धारण किया
हुआ है, इसी लिए हमारे शत्रु इस मित्रता को तोड़ नहीं सकते ॥

(२) यद्यपि गौए कच्ची हैं अर्थात् बाहर से ठंडी हैं परन्तु उन
में से दूध पका हुआ अर्थात् फीसा निम्नता है ।

कृशत्	श्वेतवर्णम् (भा०को०)	श्वेत रंग वाले को
रोहिणीषु	लोहितवर्णासु	लाल रंग वालियों में

संस्तरार्थः ।

सुकर्मा पुत्रः शोभनं कर्माऽऽचरन् पुरातनं सख्यं बलेन धारतवान् (अस्ति) (हे इन्द्र!) (त्वम्) अपरिपन्ना स्वपिमध्ये परिपक्वं दुग्धं स्थापयसि (त्वम्) कृष्णवर्णासु लोहितवर्णासु (च) श्वेतवर्णम् (दुग्धस्थापयसि) ॥१॥

भाषार्थः ।

श्रेष्ठ कर्म का आचरण करते हुए सुकर्मा पुत्र ने पुरानी मित्रता को बल से धारण किया है (हे इन्द्र) आप कच्चियों के बीच में भी पके हुए दूध को स्थापन करते हो आप काले (और) लाल रंग वालियों में श्वेत रंग के (दूधको स्थापन करते हो) ॥१॥

(१) "पुत्र" आत्रापृथिवी के पुत्र इन्द्र ने पुरानी मित्रता को जो हमारे पितरोंके और हमारे साथ उनको है बल से धारण किया हुआ है, इसी लिए हमारे शत्रु इस मित्रता को तोड़ नहीं सकते ॥

(२) यद्यपि गौप कच्ची है अर्थात् बाहर से ठडी है परन्तु उन में से दूध पका हुआ अर्थात् कोला निकलता है ।

इन्द्रो देवता त्रिष्टुच्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११ ।

सनात्सनीळाश्वनीरवाता व्रता

रक्षन्ते अमृताः सहोभिः । पुरुसंह-

स्त्राजनयोनप्रतनी दुवस्यन्ति स्वसा-

रो अक्रयाणस् ॥१०॥

सनात्

चिरकालात्

चिरकाल से

सनीळाः

समाननिधास-
स्थानाः

एक स्थान में
रहने वालों

श्वनीः

अङ्गुलयः
(त्रिषं० १५ सुपोमिति
पूर्वं अरुषंशीर्षत्यम्)

अङ्गुलियां

शवाताः

वातंगमनं
तद्रहिताः

गमनं से रहिते

व्रता

व्रतानि
(शेषेणः)

व्रतों को

रचन्ते	पालयन्ति (व्यत्ययेनाऽऽत्मनेपदम्)	पालन करती हैं
अतम्याः	देव्यः	देवियां
सहऽभिः	वलैः	वलों से
पुरु	बहूनि (श्लो० पः)	बहुत
सहस्रा	सहस्राणि (,)	हजारों को
जनयः	कुटुम्बिन्यः (भा०को०)	कुटुम्बवालीं
न	इव	जैसे :
पत्नीः	पत्न्यः (पूर्वसवर्णदीर्घत्वम्)	स्त्रियां
दुवस्यन्ति	परिचरन्ति (दुवस्परिचरणे)	सेवा करती हैं
स्वसारः	स्वसारः	बहनें
अक्रयाणाम्	अलज्जितगतिम् (निघं०४।२)	न लज्जासे चलने वाले को

संस्कारार्थः ।

चिरकालात् समान निवास स्थानां गमनरहिता
 देव्योऽङ्गुलयः (निज-) बलैर्वहूनि सहस्राणि (यज्ञादि-)
 व्रतानि पालयन्ति, (इमाः) स्वसारः कुटुम्बिन्यो
 पत्न्य इवाऽलज्जितगतिं (स्वामिनमिन्द्रम्) परि-
 चरन्ति ॥ १० ॥

मापार्थः ।

चिरकाल से एक स्थान में रहनेवालीं गमन से
 रहित देवी अंगुलियां (अपने) बलों से बहुत हजारों
 (यज्ञआदि) व्रतों का पालन करती हैं (ये सारी) बहनें
 कुटुम्बवाली स्त्रियों की न्याईं न लज्जा से चलने
 वाले (अपने स्वामी इन्द्र की) सेवा करती हैं ॥ १०

(१) अंगुलियां गमन से रहित इसलिये हैं कि सदा हाथ में
 रहती हैं हाथ को छोड़ कर कहीं नहीं जातीं ।

(२) जिस में पुंस्त्व की न्यूनता है, यह लज्जा से चलना है
 पूर्ण पुंस्त्व से युक्त होने से इन्द्र अलज्जित गति हैं ।

(३) जिस प्रकार गृहिणी स्त्रियां अपने पति की सेवा करती हैं
 इसी प्रकार मनुष्यों की अंगुलियों सोम निचोड़ने भादि कर्म द्वारा
 अपने स्वामी इन्द्र की सेवा करती हैं ॥

इन्द्रो देवता त्रिष्टुप्छन्दः ११११११११११

सनायुव्रीनमसानव्यो अर्के वसूय-

कोम॒तयो॑द॒स्मद॒द्रुः । पति॑नप॒त्नी-

रु॒शती॑रु॒शन्तं॑ स्पृ॒शन्ति॑ त॒त्वाश॑वसा-

वन्म॒नीषाः । ११ ।

१. सनाऽयुवः

नमसा

नव्यः

अकैः

वसुऽयवः

मतयः

दस्म-

प्राचीनधर्म-
मिच्छन्तः

(घर्णप्यत्ययेनोत्वम)

नमस्कारेण

नवीनैः

(सुणामिति विभक्ते सुः)

स्तं त्रैः

धनकामाः

मेधाविनः

(निघं० १।१५)

= अद्भुत !

प्राचीन धर्म की
इच्छा करते हुए

नमस्कार के साथ

नवीनों र

स्तोत्रों से

धन की कामना
वाले

ऋषी,

हे अद्भुत

द॒द्रुः	त्वरितवन्तः (मा०को०)	शीघ्रता से गए हैं
पति॑स्	पतिम्	पति को
न	इव	जैसे
पत्नीः	पत्न्यः (षाछन्दसंति पूर्व- सवर्णदीर्घः)	पत्नियां
उ॒श॒तीः	कामयमानाः (॥)	प्रेम से भरी हुईं
उ॒श॒न्त॑म्	कामयमानम्	कामना करते
स्पर्श॑न्ति	स्पर्शन्ति	हुए को स्पर्श करती हैं
त्वा	त्वाम्	तुझको
श॒व॒सा॒ऽव॒न्	हे बलवन् ! (म।पथीयभादेनिप् प्रत्ययः)	हे बलवाले
म॒नी॒षाः	स्तुतयः (मा०को०)	स्तुतियां

संहृत्तार्थः ।

हे अद्भुत ! प्राचीनधर्ममिच्छन्तो धनकामा मे धा

विनो नवीनेः स्तोत्रैर्नमस्कारेण (त्वां प्रति) त्वरित-
वन्तः, हे बलवन् ! (तत्कृताः) स्तुतयस्त्वां कामयमानं
पतिं कामयमाना पत्न्य इव स्पृशन्ति ॥ ११ ॥

भाषार्थः ।

हे अद्भुत ! प्राचीन धर्मकी इच्छा करते हुए धन
की कामनावाले ऋषी नए स्तोत्रों द्वारा नमस्कार
के साथ (आपकी ओर) शीघ्रता से गए हैं हे बलवाले !
(उनसे की हुई) स्तुतियां आप को ऐसे स्पर्श करती
हैं जैसे कामना करते हुए पति को प्रेम से भरी हुई
पत्नियां ॥ ११ ॥

(१) यद्यपि नए ऋषि नए स्तोत्रों द्वारा इन्द्र की स्तुति करते
हैं, तथापि प्राचीन धर्म की इच्छा करने वाले होने से उन के साथ
प्राचीन ऋषियों के भावों से विरक्त नहीं हैं ॥

इन्द्रो देवता त्रिष्टुच्छन्दः ॥ ११ ॥ ११ ॥ ११ ॥ ११ ॥

स॒ना॒दे॒व॒त॒व॒रा॒यो॒ग॒भ॒स्तौ॑ न॒क्षी-
य॑न्ते॒ नो॒प॒द॒स्य॑न्ति॒ तद॒स्म। द्यु॒माँ॑ अ॒सि-
क्र॑तु॒माँ॑ इन्द्र॒धीरः॑ शि॒क्षा॑श्चि॒व॒स्त-

वनःशचीभिः । १२ ।

सुनात्	चिरकालात्	चिरकाल से
एव	एव	ही
तव	तव	तेरे
रायः	धनानि	धन
गभस्तौ	हस्ते	हाथ में
न	न	नहीं
क्षीयन्ते	विनश्यन्ति	नाश होते हैं
न	न	नहीं
उप	उप +	-
दृश्यन्ति	उप + दृश्यन्ति, न्यूनतां- प्राप्नुवन्ति	कम होते हैं

दस्म	हे अद्भुत!	हे अद्भुत
द्व्यऽमान्	दीप्तिमान्	दीप्ति वाला
असि	असि	तू है
क्रातुऽमान्	ज्ञानयुक्तः	ज्ञानवान
इन्द्र	हे इन्द्र !	हे इन्द्र
धीरः	दृढनिश्चयः	दृढ़ निश्चयवाला
शिक्ष	देहि (निघं०१३०)	दो
शचीऽवः	हे धलवन्	हे धलवाले
तव	तव	तेरे
नः	अस्मभ्यम्	हमारे ताई
शचीभिः	बलैः	बलों से

सुदृढतायैः

हे अद्भुत ! तव हस्ते चिरादेव (विद्यमानानि)

धनानि न विनश्यति न- (च) न्यूनतां प्राप्नुवन्ति,
हे इन्द्र ! (त्वम्) । दीप्तिमान्, ज्ञानयुक्तो दृढनिश्चयः
(च) असि, हे बलवान् ! त्वदीयैर्बलैस्मभ्यम् (बलम्)
देहि ॥ १२ ॥

भावार्थः ।

हे अद्भुत ! आप के हाथ में चिरकाल से (विद्य-
मान) धन न नाश होते हैं (और) न कम होते हैं हे इन्द्र !
आप दीप्तिवाले, ज्ञान से युक्त (और) दृढ़ निश्चय
वाले हैं, हे बलवान ! अपने बलों द्वारा हमारे ताई
(बल को) दीजिये ॥ १२ ॥

इन्द्रो देवता त्रिष्टुप्छन्दः । ११ । ११ । ११ । ११ ॥

सनायते गोतम इन्द्र न व्यमत क्षुद्

ब्रह्महरियो जनाय । सुनीथाय नः शव-

साननोधाः प्रातर्मक्षुधियावसुर्जग-

भ्यात् । १३ ।

सनायते | सनातन इवाऽऽ- | सनातन के लिये
चरते

गो॒त॒मः	गो॒त॒म॒वंशी॒यः	गो॒त॒म॒ वंशी
इ॒न्द्र	हे इ॒न्द्र !	हे इ॒न्द्र !
न॒व्य॒म्	नू॒त॒न॒म्	नवी॒न को
अ॒त॒च्च॒त्	र॒चि॒त॒वा॒न्	रचा॑ हैं
ब्र॒ह्म	स्तो॒त्र॒म्	स्तो॒त्र को
ह॒रि॒ऽयो॒-	हरी, अ॒श्वो॑ यो॒ज॒-	दो घो॒ड़ों को (रथ
ज॒ना॒य	य॒ति(रथे) तस्मै॑	में) जोड़॑ने वाले के लिये
सु॒ऽनी॒था॒य	सु॒ष्टु॒ ने॒त्रे	अच्छे॑ नेताके लिये
नः	अस्मा॑कम्	हमारे
श॒व॒सा॒न	हे व॒लय॑न् !	हे व॒ल॒वा॒ले
नो॒धाः	नो॒धाः	नो॒धा ने

प्रातः	प्रातः	प्रातःकाल में
मञ्चु	शीघ्रम्	शीघ्र
धियाऽवसुः	ध्यानेन धनवान्	ध्यानसे धनवाला
जगम्यात्	आगच्छतु	आवे

संस्कृतार्थः ।

हे इन्द्र ! सनातनायाऽस्माकं सुष्टुनेत्रे हृद्योर्यो-
जयित्रे (च तुभ्यम्) गोतमवंशीयो नोधा नूतनं स्तोत्रं
रचितवान् हे बलवन् ! ध्यानेन धनवान् (भवान्)
शीघ्रं प्रातरागच्छतु ॥ १३ ॥

भाषार्थः ।

हे इन्द्र ! सनातन, हमारे अच्छे नेता (और) दोनों
घोड़ों को जोड़ने वाले (आप के लिए) गोतमवंशी नोधा-
ने नवीन स्तोत्र की रचा है हे बलवाले ! ध्यान से
धन वाले (आप) शीघ्र प्रातःकाल में आवें ॥ १३ ॥

यद्यपि स्तोत्र गया है । परन्तु भाव यही है जो सनातन काल
से प्राचीन नेता इन्द्र के लिए पूर्ण क्रियया के मन में रहे हैं ।

इति द्वापष्टितमं सूक्तम् ॥

ऋ०सं०३३-३४ अङ्गयोः शुद्धयशुद्धिपत्रम्

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१४२५	२०	लड)	लुड्)	१४८१	८	गणन्त	गृणन्त
१४३२	१६	गृहेप	गृहेपु	१४८२	१२	सुनो०	सुनो०
१४३३	४	इयति	इयति	१४८३	२	पुःऽभि	पुःऽभिः
१४३५	६	वृहत्	वृहत्	१४८४	०	प्राक्य	प्रकाग
१४३५	५	रिप	रिपः	१४८४	१३	वचाऽ	वचाओ
१४४५	१५	रफुति	रफुति	१४८६	१५	देवतो	देवतो
१४४६	४	(यरय	(यरय	१४८६	१०	धोपधियो	धोपधियो
१४४६	१५	(येलापः)	(यसोलक्				
१४४९	११	हिरण्ययः	हिरण्यय	१४८८	२०	जमे	जमे
१४५०	५	पृथिवी	पृथिवी	१४८५	१२	सुनय	सुनवे
१४९८	१३	सोपा-	सोप-	१४८७	१८	चिष्ट	चिष्ट
१४९८	३	वज्रिन्	वज्रिन्	१४८७	२०	लुष्टो-	लुष्टी-
१४९८	५	चक्रतिय	चक्रतिप	१४८८	१२	हेजाताना	हेजातानी
१५०८	०	चमज	चमजः	१५००	१५	जघन्ता	जघन्ता
१५६५	१३	युवमानः	युवमानः	१५०४	११	पञ्चनीय	पञ्चनीय
१५६८	११	चायुष	चायुषु	१५०४	८	पुद्गुमीये	पुद्गुमीये
१५७४	८	ममह	ममह	१५०४	१०	याधुतो	याधुतो
१५०८	२	प्रयसा	प्रयसा	१५०५	११	यह मरु	यह मरु
				१५०६	१३	प्रथयेव	प्रथयेव
				१५०८	१०	शाम	शामु
				१५१६	८	पर म	पर म

विज्ञापन ।

इस अंक के साथ तीसरा साल पूरा होगया है—जिन स्वाध्याई ब्राह्मणों ने चौथे साल के लिए स्वाध्याय करने के लिए प्रतिज्ञा पत्र नहीं भेजे हैं वे कृपा पूर्वक शीघ्रता करें, जिससे उनके नाम चौथे साल के रजिस्टरमें लिखे जावें—अंक १ से १० तक दूसरी बार छप गए हैं जिनकी पुस्तक अपूर्ण हो वे पत्र लिखें; तो जो अंक न्यून है वे भेज दिये जावेंगे ॥

मुन्शीजयराम,

मैनेजर ऋग्वेद

संहिता, मलतान